नई शिक्षा नीति के अनुसार

2024

VVP (Regd.)

TM

विश्वविद्यालय प्रकाशन (रजि.)
ग्वालियर
द्वारा प्रकाशित

20 प्रश्न

(परीक्षोपयोगी महत्वपूर्ण मॉडल प्रश्नोत्तर)

इतिहास

VVP (Regd.)

विश्व इतिहास की प्रमुख धारायें
(1453 से 1870 CE तक) इतिहास (ग्रुप-बी)

(प्रथम प्रश्न-पत्र)

बी. ए. तृतीय वर्ष

नया पाठ्यक्रम

विश्व इतिहास की प्रमुख धारायें (1453 से 1870 CE तक)

इकाई–1. भारत में भक्ति आन्दोलन, यूरोप में नवीन युग का प्रारम्भ– भारत में भक्ति आन्दोलन और उसके सन्त– कबीर, नानक एवं मीराबाई, यूरोप में सामन्तवाद का पतन एवं पुनर्जागरण। धर्म–सुधार एवं धर्म–सुधार आन्दोलन। आधुनिक पश्चिम की आर्थिक क्रान्ति– वाणिज्यवाद और व्यापारिक क्रान्ति।

इकाई–2. औद्योगिक क्रान्ति एवं उपनिवेशवाद का प्रारम्भ– इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के कारण और समाज पर प्रभाव। अन्य देशों में औद्योगिकीकरण– अमेरिका, जर्मनी, रूस और जापान। उपनिवेशवाद का प्रारम्भ।

इकाई–3. प्रसिद्ध क्रान्तियाँ और उनका प्रभाव– इंग्लैण्ड की गौरवपूर्ण क्रान्ति में (1688 CE), अमेरिका का स्वतंत्रता संघर्ष (1776 CE) एवं फ्रांसीसी क्रान्ति (1789 CE)- क्रान्तियों की प्रकृति, कारण, घटनायें, परिणाम, प्रभाव।

इकाई–4. नेपोलिनय, मैटरनिख एवं पूर्वी समस्या– नेपोलियन बोनापार्ट–उसकी नीतियाँ एवं पतन। वियना कांग्रेस (1815 CE)। मेटरनिख–गृह एवं विदेश नीतियाँ। 1830 CE और 1848 CE की क्रान्तियाँ एवं यूरोप पर उनका प्रभाव। पूर्वी प्रश्न–कीमिया युद्ध तक।

इकाई–5. इंग्लैण्ड 1832 CE का अधिनियम, चार्टिस्ट आन्दोलन एवं 1867 CE का अधिनियम। नेपोलियन तृतीय। इटली का एकीकरण। जर्मनी का एकीकरण।

कृपया ध्यान दें

❑ नई शिक्षा नीति स्नातक तृतीय वर्ष में लागू की गई है। परीक्षा के नये पैटर्न में वस्तुनिष्ठ प्रश्न, लघुउत्तरीय प्रश्न तथा दीर्घउत्तरीय प्रश्न पूछे जायेंगे। कुछ लघुउत्तरीय प्रश्नोत्तर इस पुस्तक में दिये गये हैं। दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर में ही लघुउत्तरीय प्रश्नों के उत्तर निहित हैं। इस हेतु आप लघुउत्तरीय प्रश्न में जितना पूछा जावे, दीर्घउत्तरीय प्रश्न के उत्तर का उतना ही भाग लिखें।

अनुशंसित मूल्यांकन विधियाँ

अनुशंसित सतत् मूल्यांकन विधियाँ
(अधिकतम अंक : 100)
सतत् व्यापक मूल्यांकन (CCE) अंक : 30 विश्वविद्यालयीन परीक्षा (UE) अंक : 70

आंतरिक मूल्यांकनः सतत् व्यापक मूल्यांकन (CCE)	क्लास टेस्ट असाइनमेंट/प्रस्तुतिकरण (प्रजेंटेशन)	कुल अंकः 30
आंकलनः विश्वविद्यालयीन परीक्षा समयः 03.00 घंटे	अनुभाग (अ): अति लघुउत्तरीय प्रश्न अनुभाग (ब): चार लघु उत्तरीय प्रश्न अनुभाग (स): दो दीर्घ उत्तरीय प्रश्न	कुल अंक 70

इतिहास

(प्रथम प्रश्न-पत्र)

इकाई-1

दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न–1. भक्ति आन्दोलन की सृजनात्मकता के महत्व को समझाइये तथा प्रमुख संतों का परिचय दीजिये।

अथवा

भक्ति मार्ग की विशेषतायें और परिणाम बताइये।

अथवा

भक्ति आन्दोलन पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

उत्तर– मध्य काल में भारत के ऊपर बर्बर तुर्कों के आक्रमण हुये। ये आक्रमणकारी इस्लाम को मानने वाले धर्मान्ध तथा निर्दयी थे। इनके आक्रमण तक भारत राजनीतिक एवं सामाजिक रूप से कमजोर हो चुका था। हिन्दू समाज अपनी ही दुर्बलताओं से ग्रस्त था। इसी समय विदेशी आक्रमण होने से उनमें गहन निराशा व्याप्त हो गई। इस परिस्थिति में भारत माता ने ऐसे संतों, साधुओं तथा विद्वानों को जन्म दिया जिन्होंने एक साथ अन्धविश्वास, कुरीतियों, धर्मान्धता, जाति-पांति का विरोध करते हुये स्वधर्म, एकेश्वरवाद, समाज की एकता और समन्वय, आत्म-विश्वास, आत्म-निर्भरता तथा आशावाद को जागृत किया। इसके लिये भी उन्होंने भारत में उत्पन्न प्राचीन भक्ति मार्ग को अपनाया जो ऐतिहासिकता में प्राचीन परन्तु भावना, विचार, कार्य-शैली, भाषा ज्ञान आदि में अभिनव था।

भक्ति–मार्ग– 'भक्ति' का प्रादुर्भाव मानव जन्म के साथ ही हुआ प्रतीत होता है परन्तु दर्शन–वेद, उपनिषद् महाभारत, रामायण और गीता में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। आराध्य या इष्ट के प्रति पूर्ण समर्पण और तटस्थ भाव से कर्त्तव्य कर्म करने को ही 'भक्ति' कहा गया है। मोक्ष के तीन मार्ग बताये गये हैं- (1) कर्म मार्ग (2) ज्ञान मार्ग और (3) भक्ति मार्ग।

भारत की प्राचीन परम्परा में उपनिषद, दर्शन और जगद्गुरू शंकराचार्य की भाषा, दर्शन, व्याख्या सामान्य जनता के लिये कठिन हो गई। इसका कारण यह था कि राजपूत राज्य और तुर्कों के आक्रमण के कारण सामान्य जनता में शिक्षा तथा ज्ञान का ह्रास हो गया। इस कारण उसने प्राचीन दर्शन को छोड़कर भक्ति मार्ग अपनाया। भक्त संतों ने प्राचीन दार्शनिक और वैज्ञानिक धरोहर को सरल भाषा में और अनुकरणीय तरीके से जनता के सम्मुख रखा।

भक्ति आन्दोलन के प्रमुख कारण– मध्यकालीन भारत में भक्ति आन्दोलन के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे–

1. जगतगुरु शंकराचार्य के ज्ञान–मार्ग से अब जनता ऊब चुकी थी तथा वह एक सुगम तथा सरल मार्ग की खोज में थी।

2. मध्य काल में जाति-व्यवस्था बहुत जटिल हो चुकी थी। निम्न जातियों पर अत्याचार हो रहे थे। भक्ति-मार्ग वर्ण-व्यवस्था तथा अन्य भेद भावों को नहीं मानता था, अतः इसे सफलता मिलना अनिवार्य था।
3. हिन्दुओं की जाति-व्यवस्था से तंग आकर अछूत लोग मुसलमान होते जा रहे थे। अतः समाज-सुधारकों ने जाति-व्यवस्था को भक्ति-मार्ग के रूप में ढीला कर दिया तथा इस प्रकार भक्ति-मार्ग द्वारा अछूतों के लिये भी मुक्ति का मार्ग खोल दिया गया।
4. मुसलमानों ने अधिकांश मन्दिरों को नष्ट कर दिया था, अतः बिना मन्दिरों तथा मूर्तियों के ईश्वर की उपासना करने के लिये लोगों को भक्ति-मार्ग का आश्रय लेना पड़ा था।
5. **सरदार के.एम. पन्निकर** के अनुसार, इस आन्दोलन के प्रसार में सहायक होने वाली एक बात यह भी थी कि हिन्दू जनता मुसलमानों के अत्याचारों से बचने का मार्ग खोज रही थी, जिसके लिये केवल ईश्वर ही उनका सहायक हो सकता था।
6. प्रसिद्ध इतिहासकारों **डॉ. ताराचन्द्र, अहमद निजामी** तथा डॉ. कुरेशी जैसे विद्वानों के अनुसार "भक्ति आन्दोलन के प्रारम्भ होने के कारण-मुस्लिम सम्पर्क का प्रभाव था, किन्तु यह तथ्य पूर्ण रूप से सत्य न होकर केवल आंशिक सत्य ही है; क्योंकि इस्लाम धर्म भी विश्व-बन्धुत्व का सन्देश देता है और मूर्ति-पूजा का विरोध करता है; धर्म में सादगी का समर्थन करता है। वह जाति के भेद-भाव को नहीं मानता तथा एकेश्वरवाद में विश्वास करता है।"

चूँकि भक्ति आन्दोलन के सन्त नेता इन्हीं सब बातों को मानते थे, इसलिये भक्ति आन्दोलन का प्रारम्भ भी इस्लाम के प्रभाव से हुआ, यह नहीं कहा जा सकता है। सच तो यह है कि इन बातों से हिन्दू लोग प्रारम्भ से ही परिचित रहे हैं। वेदों में एकेश्वरवाद को माना गया है। मूर्ति पूजा का प्रचलन भी भारत में प्राचीन काल से लेकर काफी समय तक नहीं रहा है। वैदिक काल में भारतीयों का धर्म बहुत सादा था तथा जाति के भेदभाव को वे नहीं मानते थे। **आर.जी. भण्डारकर** के अनुसार- "भक्ति आन्दोलन श्रीमद्भगवद् गीता की शिक्षाओं पर आधारित था। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि इस्लाम ने भक्ति आन्दोलन को प्रोत्साहित किया।" अनेक आधुनिक विद्वानों का भी यही मत है। इस विषय में डॉ. सेन का कथन है- "एक ब्रह्म की उपासना जो मुस्लिम धर्म का प्राण थी और इसी ने इस आन्दोलन में जान डाल दी, जो कि भारतीयों को ज्ञात नहीं थी।"

विशेषतायें- भक्ति आन्दोलन एक प्रदेश तक ही सीमित नहीं था। पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, दक्षिण भारत, बंगाल, मद्रास आदि सभी प्रान्तों में यह लहर फैल गयी। इसकी निम्नलिखित विशेषतायें थीं-

1. **आडम्बरों को छोड़कर ईश्वर के प्रति आस्था-** इस आन्दोलन में आडम्बरहीनता और सरलता का विशिष्ट महत्व था। भक्तिकालीन सन्तों ने कर्मकाण्ड को समाप्त करके ईश्वर के प्रति सच्ची आस्था और भक्ति प्रकट की। भक्तिकालीन सन्तों ने लोगों को यह विश्वास दिलाया कि ईश्वर मन्दिर और मस्जिद में नहीं, मनुष्य के हृदय में है, बस व्यक्ति में उसके दर्शन के लिये क्षमता होनी चाहिये। अतः उन्होंने पवित्रता एवं सदाचार पर बल दिया। सन्तों का

विश्वास था कि ईश्वर सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान दयालु है। जो व्यक्ति शुद्ध हृदय से उसकी शरण में जाता है उसका वह अवश्य ही उद्धार करता है, चाहे व्यक्ति कितना ही पापी क्यों न हो।

2. **मूर्ति-पूजा का विरोध-** भक्ति काल की दूसरी बड़ी विशेषता यह थी कि उसने मूर्ति-पूजा का विरोध किया। सन्तों का विश्वास था कि मूर्ति-पूजा करना तो व्यर्थ है क्योंकि ऐसी मूर्ति जिसे बनाते समय जाने कितनी बार शिल्पी उसकी छाती पर चढ़ा था और उस मूर्ति में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह अपनी रक्षा कर सके तो वह दूसरों की रक्षा कैसे कर सकती है, अतः उन्होंने पत्थर के देवता की तुलना में भक्ति पर अधिक बल दिया।

3. **एकेश्वरवाद पर विश्वास-** भक्ति आन्दोलन के साथ एकेश्वरवाद एवं विश्व-बन्धुत्व की भावना पर ज्यादा बल दिया। सन्तों का विश्वास है कि संसार में सर्वशक्तिमान और सर्वोपरि ईश्वर है। इन सन्तों में कुछ राम के, कुछ कृष्ण के, कुछ खुदा के भक्त हैं। किन्तु वे राम, कृष्ण, खुदा में कोई भेद नहीं मानते थे। वे ईश्वर को एक मानते थे। सन्तों में कबीरदास ने कहा कि मूलतः ईश्वर एक है और उसे विभिन्न धर्म के लोग वैसे ही अलग समझते हैं एवं अलग-अलग नाम से पुकारते हैं जैसे सोने से निर्मित विभिन्न आभूषण चूड़ियाँ, अंगूठी, कर्णफूल आदि हैं तो एक ही चीज और सोने से बने हैं, उसी प्रकार ईश्वर एक है उसे भक्त अलग-अलग नाम से पुकारते हैं।

4. **जाति-व्यवस्था का विरोध-** भक्ति आन्दोलन के सन्तों ने जाति-भेद पर कठोर प्रहार किया। उनका कहना था कि सब जीव ईश्वर के अंश हैं, इसलिये जन्म से कोई छोटा या बड़ा नहीं हो सकता, सब समान हैं। यही कारण है कि भक्ति काल के सन्त रामानन्द ने कबीर जुलाहा, रैदास चमार और सेना नाई को अपना शिष्य बनाया। इसी प्रेरणा से चैतन्य ने हरिदास अछूत को तथा नामदेव ने चौखमेला अछूत को अपना शिष्य बनाया। वस्तुतः रामानन्द ने वैष्णव धर्म के द्वार सभी धर्म, जाति, सम्प्रदाय के लिये खोल दिये।

5. **हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जोर-** कबीर तथा नानक ने हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का भी प्रयत्न किया। उन्होंने सिखाया कि राम तथा रहीम में कोई बुनियादी भेद नहीं है, सभी धर्म ईश्वर तक पहुंचने के मार्ग हैं, इसीलिये लोगों को एक-दूसरे के धर्म का आदर करना चाहिये। कबीर को हिन्दू-मुस्लिम एकता का आदि-प्रवर्तक कहा गया है। इस्लाम के आने के समय से ही हिन्दू तथा मुसलमानों के बीच धार्मिक विद्वेष चला आया था।

6. **जनभाषा का प्रयोग-** भक्ति आन्दोलन की यह विशेषता थी कि इस आन्दोलन के सन्तों ने जनभाषा का प्रयोग किया जिससे दोहरे लाभ हुये। एक ओर तो इस आन्दोलन को लोकप्रियता मिली क्योंकि जनसाधारण पर जनभाषा का व्यापक प्रभाव पड़ा तथा दूसरी ओर प्रादेशिक भाषाओं का विस्तार और भारतीय साहित्य निधि विपुल होती गयी। साथ ही भक्तिकालीन आध्यात्मिक काव्य परम्परा से साहित्य सृजन को विशेष सम्बल मिला। उन्होंने हिन्दी, मराठी, गुजराती, पंजाबी, तमिल, बंगाली आदि भाषाओं में उपदेश दिये जिससे साधारण लोग उनकी बात समझ सकते थे।

7. **मनुष्य की सेवा ही ईश्वर-सेवा है-** सन्तों का उपदेश था कि मनुष्य की सेवा करना ईश्वर को प्रसन्न करने का सबसे अच्छा मार्ग है, इसी से मनुष्य को मोक्ष प्राप्त हो सकता है। सन्तों का विचार था कि मोक्ष प्रत्येक जाति, सम्प्रदाय, लिंग आदि के व्यक्ति को प्राप्त हो

सकता है किन्तु उसको सभी भेदभाव भुलाकर मानव की सेवा करनी होगी। भक्ति आन्दोलन के सन्त पक्के मानवतावादी थे। उनके विचारों में आध्यात्मिक समाजवाद है।

प्रश्न–2. भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्तों तथा उनके विचारों का संक्षेप में परिचय दीजिये तथा भक्ति आन्दोलन के प्रभाव एवं परिणामों का वर्णन कीजिये।

उत्तर– भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्त

1. आचार्य रामानुज– भक्ति आन्दोलन के प्रथम प्रतिपादक महान वैष्णव सन्त रामानुज थे जो बारहवीं सदी के प्रारम्भिक काल में हुये थे। रामानुज (1017–1137) ने दक्षिण वैष्णववाद में दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जो विशिष्ट अद्वैतवाद के रूप मे ज्ञात है। उनके अनुसार मोक्ष का मार्ग 'कर्म', 'ज्ञान' और 'भक्ति' में निहित है। बिना किसी स्वार्थ के कर्तव्य-पालन से मन पवित्र होता है, इससे 'जीव' स्वयं चिंतन करने में समर्थ होता है। इस प्रकार 'जीव' को स्वयं तथा ईश्वर पर निर्भर होने का ज्ञान मिलता है, उसमें ईश्वर के प्रति प्रेम जगता है। भक्ति में चिंतन समाहित है। इस प्रकार भक्ति में ज्ञान का योग होता है। चिन्तन में ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण की भावना का अनुभव होता है। इस प्रकार उन्होंने ईश्वर-भक्ति का मत चलाया और कहा कि केवल इसी से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। रामानुज ने बताया कि शूद्र तथा जाति से बाहर के लोग भी अपने गुरु की इच्छा के आगे पूर्ण समर्पण कर मुक्ति प्राप्त कर सकते थे। उन्होंने उन्हें एक निश्चित दिन तक कुछ मंदिरों में आने की अनुमति दे दी और गुरु के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण और अधीनता की भावना रखने का उपदेश दिया। रामानुज के विचार उत्तर और दक्षिण दोनों में ही जनप्रिय हो उठे और इस प्रकार उन्होंने लोक-कल्याण के एक शक्तिशाली सार्वजनिक आन्दोलन की नींव रखी।

2. निम्बार्काचार्य– भक्ति आन्दोलन के दूसरे प्रमुख सन्त निम्बार्क थे। ये रामानुज के समकालीन थे। इनका जन्म मद्रास में हुआ था। इन्होंने अद्वैतवादी दर्शन का खण्डन किया। वे राधा और कृष्ण के उपासक थे। इन्होंने 'भेदाभेद' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। इनका मानना था कि ब्रह्म सर्वशक्तिमान है। सगुण ब्रह्म ही ईश्वर है। जीव, जगत, परमात्मा इनकी दृष्टि में एक होते हुये भी विभिन्न थे।

3. रामानन्द– भक्ति आन्दोलन को उत्तर में लाने का श्रेय रामानन्द को है। उन्होंने सम्पूर्ण देश में भ्रमण किया तथा उसी दौरान मुसलमानों सहित सभी धर्मों के विद्वान संतों से उनका सम्पर्क हुआ। उनका दृष्टिकोण बहुत व्यापक था तथा उन्होंने सभी जातियों, धर्मों यहाँ तक कि मुसलमानों को भी बिना किसी भेद-भाव के अपना शिष्य बनाया। बाद में विख्यात होने वाले उनके बारह शिष्यों में जाट धन्ना, नाई सेना, चमार रामदास और मुसलमान कबीर मुख्य थे। आप राम के उपासक थे तथा जो भी उनके निकट आया उन्होंने उसे रामभक्ति की सीख दी। "कोई भी किसी से उसकी जाति या वह किसके साथ भोजन करता है– यह नहीं पूछे, यदि कोई ईश्वर से प्रेम करता है तो वह हरि (ईश्वर) का हो गया।" संभवतः वे पहले वैष्णव उपदेशक थे जिसने हिन्दी में उपदेश दिये।

4. कबीर– रामानन्द के सभी शिष्यों में कबीर का महत्व सर्वाधिक है। कबीर विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे तथा उनका लालन-पालन वाराणसी के एक मुसलमान जुलाहा परिवार में हुआ था, उन्होंने अपना अधिक समय योगियों, संतों तथा सूफियों के साथ व्यतीत किया।

उनके विचार क्रांतिकारी तथा समता पर आधारित हैं और सामाजिक कुरीतियों पर कठोर प्रहार करते हैं। कबीर संभवतः लाग-लपेट की बातें नहीं जानते थे, इसीलिये उन्होंने जो कुछ भी कहना चाहा खुले शब्दों में कहा। कबीर ने किसी धर्म, सम्प्रदाय का मार्गदर्शन नहीं किया। वे सम्पूर्ण समाज के हित-चिंतक थे। कबीर की मृत्यु के पश्चात् उनके विचारों से प्रभावित कुछ लोगों ने कबीर की शिक्षाओं एवं विचारों पर आधारित 'कबीर पंथ' की स्थापना की।

कबीरदास का पूरा चिंतन समाज के हित के लिये था। दरअसल जब कबीर का जन्म हुआ तब समाज में साम्प्रदायिक भेद-भाव बहुत बढ़ गया था तथा हिन्दू और मुसलमान दोनों में कट्टर-पंथ बढ़ रहा था। कबीर ने अपने चिंतन से समाज को सुधारने का प्रयास किया।

कबीर का चिन्तन विश्व प्रेम का चिन्तन है, वे सम्पूर्ण समाज की भलाई चाहते हैं। उन्होंने स्वयं लिखा है कि उनकी किसी से मित्रता नहीं है और न ही किसी से बैर। किन्तु वे अक्रियाशील भी नहीं हैं। वे सभी की खैर (शुभ) चाहते हैं। कबीर समाज को सुधारने के लिये अपना सर्वस्व बलिदान करने को भी कहते हैं। उनका कथन है कि जो व्यक्ति अपना सब कुछ छोड़कर चलने को तैयार है, वह उनके साथ चले और समाज-सुधार के लिये कार्य करे। कबीरदास समाज-सुधार के लिये सन्यास लेने का विरोध करते हैं। वे गृहस्थों के द्वारा ही समाज से सन्यास लेने का विरोध करते हैं। वे गृहस्थों के द्वारा ही समाज की भलाई चाहते हैं तथा कर्मवादिता को चाहते हुये अधिक धन कमाने या जमा करने के विरोधी थे। भूख और गरीवी को सामाजिक बुराई मानते हुये भी वे इतना ही कमाने की सलाह देते हैं जिसमें समाज में भेद-भाव न बढ़ सके।

5. गुरु नानक– नानक का जन्म लाहौर से 30 मील दूर तलवंडी नामक ग्राम में 1269 ई. में हुआ था। इन्होंने अपने उपदेशों का प्रचार समस्त भारत में घूमकर किया। वे मक्का भी गये थे। उनकी दृष्टि में हिन्दू और मुसलमान एक समान थे। यात्रा करते हुये जब वे हरिद्वार आये, तो उनके सिर पर मुसलमान कलन्दरों की पगड़ी थी और मस्तक पर हिन्दुओं की भाँति टीका लगा हुआ था। उनकी वेशभूषा को देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि वे मुसलमान हैं अथवा हिन्दू। उनके दो शिष्य सदा उनके साथ रहते थे, जिनमें से एक मुसलमान था। हिन्दुओं और मुसलमानों में अभेद की स्थापना करते हुये उन्होंने कहा था– "बन्दे इक्का खुदाय दे हिन्दू मुसलमान। दावा राम रसूल कर, लड़दे बेईमान।"

6. रैदास– स्वामी रामानन्द के बारह प्रमुख शिष्यों में 'रैदास' भी एक थे। यह जाति से चमार थे। तीर्थ-यात्रा, जाति-भेद, उपवास आदि के यह भी विरोधी थे। आप हिन्दू तथा मुसलमानों में भेद नहीं मानते थे। आप भी 'निर्गुण भक्ति' में विश्वास रखते थे। इन्होंने ईश्वर के प्रति आत्म-समर्पण का प्रचार किया। उनका कहना था कि, "दृष्टि सब में है। जिस प्रकार नदी समुद्र में विलीन हो जाती है, उसी प्रकार अपने आपको ईश्वर-भक्ति में विलीन कर दो।" उनकी भक्ति-निष्ठा से लोग बहुत ही प्रभावित हुये और अनेक ब्राह्मण भी उनके सामने श्रद्धा-भाव से सिर झुकाने लगे। रैदास से ही 'रैदासी सम्प्रदाय' प्रारम्भ हुआ। आज भी प्रायः सभी हिन्दू चमार उसी सम्प्रदाय के अनुगामी हैं।

7. वल्लभाचार्य– दक्षिण भारत के प्रमुख वैष्णव सन्तों में 'वल्लभाचार्य' भी एक थे। यह जाति के ब्राह्मण थे। इन्होंने लोगों को श्रीकृष्ण-भक्ति का उपदेश दिया, जिसमें मनुष्य को सब

कुछ श्रीकृष्ण को अर्पित कर देना पड़ता था। वल्लभाचार्य के सिद्धान्त आध्यात्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत थे। वल्लभाचार्य की मृत्यु के पश्चात् इनके अनुयायियों ने इनके सिद्धान्तों का गलत अर्थ लगाया और इस प्रकार उनमें कई दोषपूर्ण बातें घर कर गईं।

8. **दादू**– भक्ति आन्दोलन के नेताओं में 'दादू' का नाम भी विशेष महत्व रखता है। इनका जन्म गुजरात में हुआ था, किन्तु इनका अधिकांश जीवन राजस्थान में व्यतीत हुआ। गुरु नानक और कबीर की भाँति इन्होंने भी अंधविश्वासों, मूर्ति-पूजा, जाति-बन्धन, तीर्थ-यात्रा, उपवास आदि का विरोध किया और जनता को सीधा व सच्चा जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया। धर्म-प्रचारक के साथ-साथ यह एक कवि भी थे। इनकी रचनाओं से लोग बहुत प्रभावित हुये। आपने एक नया सम्प्रदाय भी चलाया जिसके अनुयायी 'दादूपंथी' कहलाते हैं। दादू की मृत्यु के पश्चात् उनके शिष्य गरीबदास और माधोदास उनके उपदेशों का प्रचार करते रहे।

9. **नामदेव**– महाराष्ट्र में 'नामदेव' भक्ति आन्दोलन के प्रमुख नेता थे। अन्धविश्वास, तीर्थ यात्रा, उपवास तथा धर्म के भेदभाव को यह नहीं मानते थे। उनके शिष्यों में अनेक मुसलमान भी थे। यह एक कवि भी थे। इनकी रचनायें हिन्दी तथा मराठी दोनों भाषाओं में मिलती हैं। 'आचरण' तथा 'चरित्र' की शुद्धता पर आपने बहुत बल दिया। इनकी रचनाओं से ज्ञात होता है कि यह भक्ति-मार्ग द्वारा 'सगुण ब्रह्म' की उपासना करते थे परन्तु किसी-किसी रचना में 'निर्गुण ब्रह्म' की उपासना का आभास भी मिलता है।

भक्ति आन्दोलन के प्रभाव एवं परिणाम– भक्ति आन्दोलन के तात्कालिक एवं दूरगामी प्रभाव हुये एवं महत्वपूर्ण परिणाम निकले–

1. **वर्णभेद का शमन**– भक्ति आन्दोलन ने ब्राह्मणों के गर्व को चूर्ण कर दिया और इससे उनके जातीय अभिमान को भी गहरा आघात पहुंचा। इस आन्दोलन ने यह स्पष्ट बता दिया कि मोक्ष-प्राप्ति का रास्ता ऊंचा-नीचा तथा राजा-रंक सब के लिये खुला है। इस प्रकार इस आन्दोलन ने ब्राह्मणों और शूद्रों को एक श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया।
2. **बाह्यआडम्बरों का बहिष्कार**– कर्मकाण्ड तथा बाह्य आडम्बरों को भी धक्का लगा। मूर्ति-पूजा कम हो गई। कुछ सन्तों द्वारा सामाजिक कुरीतियों पर भी कुठाराघात किया गया। सती-प्रथा, शिशु-वध आदि के विरुद्ध आवाज उठाई गई।
3. **धार्मिक सहिष्णुता का उदय**– सभी जातियों तथा धर्मों के लोगों में धार्मिक सहिष्णुता का उदय हुआ जिससे देश में शान्ति, समृद्धि तथा सांस्कृतिक उन्नति हुई। दोनों धर्मों ने एक-दूसरे की अच्छी बातों को अपनाया।
4. **दलितोद्धार**– नीच जाति के हिन्दुओं को ऊपर उठने का अवसर मिला। यह आन्दोलन सामाजिक विषमता, जनसाधारण का शोषण तथा उसकी दुःखद दशा को दूर करने में भी सहायक सिद्ध हुआ।
5. **हिन्दुओं का नैतिक आलम्बन**– इस आन्दोलन ने हिन्दुओं को मुसलमान बनने तथा नैतिक पतन के गर्त में गिरने से रोका। इस विषय में एक लेखक का कथन है– "भक्ति आन्दोलन मुस्लिम आधिपत्य काल में उत्तरी भारत में हिन्दू धर्म की घायल आत्मा के लिये एक प्रकार का मरहम था।"
6. **'सिक्ख' सम्प्रदाय का जन्म**– इस आन्दोलन ने आगे चलकर सिक्ख जैसी लड़ाकू जाति को जन्म दिया क्योंकि सिक्खों के प्रथम गुरु नानक जी भक्ति आन्दोलन के प्रमुख नेताओं में से थे। 'महाराष्ट्र धर्म' (जो महाराष्ट्र स्वराज्य का प्राण माना जाता है) उत्थान का कारण यही धर्म था।
7. **साहित्य की समृद्धि**– भक्ति आन्दोलन का सबसे अधिक प्रभाव साहित्य पर पड़ा। इसके कारण प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य की बहुत उन्नति हुई। रामानन्द, कबीर, जायसी, तुलसी आदि ने हिन्दी साहित्य के भण्डार को भरा।
8. मूर्ति-पूजा के प्रभाव में कमी आई यद्यपि मूर्ति-पूजा का लोप तो नहीं हुआ परन्तु भक्ति मत ने मूर्ति-पूजा के प्रभाव को कम अवश्य कर दिया।
9. **पुरोहितवाद तथा ब्राह्मणवाद को धक्का**– इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप पुरोहितवाद तथा ब्राह्मणवाद को धक्का लगा। इस मत के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह चमार हो या अछूत, भगवान को प्राप्त कर सकता है। इससे पूर्व मोक्ष का अधिकार केवल उच्च वर्ण को ही था।

राजस्थानी साहित्य का श्रीगणेश मीराबाई ने किया और गुरुमुखी का सृजन नानक ने। विद्यापति ने 'मैथिली' में रचना की। चैतन्य तथा चण्डीदास ने 'बँगला' में, नरसी मेहता ने 'गुजराती' में तथा नामदेव और तुकाराम ने 'मराठी' में पद लिखे। इसी प्रकार द्रविड़ भाषाओं में भी कई सन्तों ने अपनी रचनायें लिखीं।

निष्कर्ष– यूरोप और भारत में धार्मिक पुनर्जागरण की लहर आरम्भ हो चुकी थी और इसका दोनों देशों में प्रमुख कारण इस्लाम का आक्रमण और इससे अपनी धर्म संस्कृति की रक्षा करना था। इस्लाम के धर्मान्ध शासकों ने मंदिरों पर आक्रमण किये, धर्मान्तरण किये तथा हिन्दू समाज कुछ न कर सका क्योंकि वह स्वयं अपनी ही विकृतियों के कारण निर्बल और निराश था। भक्त संतों ने आडम्बर त्याग, मूर्ति-पूजा का विरोध, एकेश्वरवाद, जाति-व्यवस्था की आलोचना, हिन्दू जाति में एकता, लोकभाषा और मानव सेवा आदि विशेषताओं को अपनाकर भारतीय समाज को शक्तिशाली बनाने में सफलता प्राप्त की। भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्त रामानुजाचार्य, रामानन्द, चैतन्य, कबीर, वल्लभाचार्य आदि थे। भक्ति धारा न केवल उत्तर भारत में बल्कि दक्षिण भारत में भी व्यापक रूप से बहने लगी।

प्रश्न–3. कबीर का परिचय देते हुये कबीर के विचारों का मूल्यांकन कीजिये।

अथवा

कबीर और कबीर की शिक्षा की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

उत्तर– भक्तिकालीन सन्तों में कबीर का नाम सबसे ऊपर आता है। कबीर एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से पैदा हुये थे। ब्राह्मणी ने लज्जा के कारण बनारस के तालाब के पास इन्हें डाल दिया। एक मुसलमान जुलाहे ने उठाकर अपने पास रख लिया था और बड़े लाड़-प्यार से इनका लालन-पालन किया। कबीर की जन्म-तिथि के विषय में भी मतभेद हैं। अधिकांश विद्वानों के अनुसार इनका जन्म सन् 1440 के लगभग हुआ था। बड़े होने पर वे रामानन्द के शिष्य हो गये। इस विषय में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि 'काशी हम प्रगट भये, रामानन्द

चेताये। कुछ विद्वान शेख तकी को इनका गुरु मानते हैं परन्तु इस कथन के ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलते। प्रायः विद्वान् रामानन्द को ही कबीर का गुरु मानते हैं। इस पर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अपने जीवन के आरम्भिक दिवसों में वे बनारस के सन्त गोसाई अष्टानन्द की शिक्षाओं से अत्यधिक प्रभावित थे।

वास्तव में किवदन्तियों और परम्परागत वृत्तान्तों के अतिरिक्त कबीर के जीवन पर कोई भी ऐतिहासिक प्रमाण नहीं प्राप्त होता। उनके विषय में सर्वप्रथम उल्लेख गुरू नानक की 'जन्म-साखी' में आया है। कबीर के विषय में विस्तृत वृत्तान्त 17वीं शताब्दी में मुगल इतिहासकार मुहसिन फानी ने दिया है। उसने अपने ग्रन्थ में कुछ प्राचीन परम्पराओं का भी उल्लेख किया है, उसका यह उद्धरण उल्लेखनीय है- "यह कहा जाता है कि ब्राह्मण विद्वानों का एक दल गंगा तट पर बैठा हुआ उस पवित्र नदी के जल की स्तुति कर रहा था जो पापों को धो देता है। बातचीत के बीच में, उनमें से एक को प्यास लगी। कबीर अपनी जगह से उठा और अपने पास के एक लकड़ी के प्याले में जल भरकर उस ब्राह्मण के पास ले गया। कबीर के जुलाहा और निम्न वर्ण का आदमी होने के कारण उस जल को स्वीकार नहीं किया गया।" कबीर ने कहा, "तुमने घोषणा की थी कि गंगाजल आत्मा और शरीर दोनों के हर प्रकार के पापों को नष्ट कर देता है, किन्तु जब यह इस प्याले को भी पवित्र करने योग्य नहीं है तो यह जल भी तुम्हारी प्रशंसा का पात्र नहीं है।" मुहसिन फानी आगे लिखता है- "एक दूसरे दिन कबीर एक मालिन को देख रहा था, जो मूर्ति पर चढ़ाने के लिये फूलों को जमा कर रही थी। उसने (कबीर ने) उससे कहा, फूलों की पंखुड़ियों में वनस्पति की आत्मा होती है। जिस मूर्ति को तुम पुष्प चढ़ाने जा रही हो, उसमें न तो प्राण हैं और न ही अनुभव। वनस्पति इससे कहीं बढ़-चढ़कर है। यदि मूर्ति में चेतना होती तो वह मूर्तिकार को दण्डित करती, जिसे तराशते समय उसे उसकी छाती पर पैर रखने पड़ते थे। जाओ, उसकी पूजा करो जो बुद्धिमान, कुशाग्रबुद्धि और परिपूर्ण है।"

जनश्रुति के आधार पर कहा जाता है कि कबीर के एक पुत्र और एक पुत्री थी जिनके नाम कमाल और कमाली थे। कबीर की स्त्री का नाम लोई कहा जाता है। कबीर को अपने परिवार के पालन के लिये कपड़े बुनने का काम करना पड़ता था, परन्तु अपने व्यवसाय में भी उन्हें आनन्द आता था और वे अपने पदों में दार्शनिकता के साथ-साथ अपने व्यवसाय से सम्बन्धित प्रतीकों का भी प्रयोग करते थे। उनके शब्दों में- "उस जुलाहे के विषय में कोई नहीं जानता जिसने इस संसार में आने के पश्चात् अपने ताने-बाने को फैला दिया है। धरती और आकाश दो छिद्र हैं। सूर्य और चन्द्रमा दो सरकियाँ हैं। यह जुलाहा अपने कर्मों के अनुसार अच्छे और बुरे ताने और बाने बुनता है।"

1. **शिक्षा-** क्या कबीर ने क्रमबद्ध रूप में किसी विद्यालय या पाठशाला में शिक्षा प्राप्त की थी? इस विषय में कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। उन्होंने स्वयं लिखा है, 'मसि कागद छुयो नहीं, कलम गह्यो नहीं हाथ।' इस पर भी यह स्वीकार तो करना ही पड़ेगा कि कबीर ने चाहे नियमित रूप से शिक्षा प्राप्त न की हो, परन्तु अनुभव तथा चिन्तन द्वारा उन्होंने जो भी ज्ञान प्राप्त किया, वह उच्च कोटि का था।

2. **कबीर एक समाज-सुधारक के रूप में-** कबीर का महत्व एक कवि या साहित्यिक की अपेक्षा एक सुधारक के रूप में अधिक है। वे सम्पूर्ण जीवन भर हिन्दू और मुसलमानों की कुरीतियों और आडम्बरों के विरुद्ध आवाज उठाते रहे।

(1) **समानता-** कबीर के युग में सामाजिक समानता की बात करना एक अनोखापन था। प्रारम्भ में अवश्य ही उन्हें बड़े विरोध का सामना करना पड़ा होगा, परन्तु वे अपने विचारों में दृढ़ रहे और मानव-समानता पर जीवन भर बल देते रहे। उनके शब्दों में-

'एक ही रक्त से बने हैं को ब्राह्मण को सूद्रा।'

तथा 'कोई हिन्दू कोई तुरक कहावै एक जमीं पर रहिये।'

कबीर के धार्मिक विचार

(2) **ब्रह्म के निराकार रूप की उपासना-** कबीर ब्रह्म के निराकार रूप की उपासना में विश्वास करते थे। इस निराकार ब्रह्म को प्राप्त करने के लिये ही उन्होंने भक्ति साधना को अपनाया था।

(3) **एकेश्वरवाद का समर्थन-** कबीर बहुदेववाद में विश्वास नहीं करते थे। उनका विश्वास था कि ईश्वर एक है और हमें उसकी सर्वोच्च सत्ता में विश्वास करना चाहिये।

(4) **गुरु का महत्व-** कबीर गुरु को सर्वोच्च स्थान देने के पक्ष में थे। गुरु के कारण ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है, अतः उसका महत्व अत्यधिक है। उनके शब्दों में-

'गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पाँय।
पालागूँ वा गुरु के, जिन गोविन्द दिये बताय॥'

(5) **धार्मिक आडम्बरों की आलोचना-** कबीर ने धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझाने का प्रयास किया तथा तत्कालीन बाह्य आडम्बरों तथा कुरीतियों की खुलकर आलोचना की। वे मूर्ति पूजा को व्यर्थ समझते थे। उनके अनुसार, "केवल मूर्ति-पूजा से ही मुक्ति नहीं मिल सकती, जब तक कि अन्तर का प्रकाश नहीं जागता।"

'पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार।
ताते यह चाकी भली, पीस खाय संसार॥'

दूसरे शब्दों में-

'पाहन केरा पूतला, करि पूजें करतार।
इही भरोसे जे रहें, ते बूड़े कलि चार॥'

यदि कबीर हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा के विरोधी थे तो वे मुसलमानों के नमाज पढ़ने के ढंग की भी आलोचना करते थे-

'काँकर पाथर जोरि के, मस्जिद लई चुनाय।
ता चढ़ मुल्ला बाँग दे, बहरा भया खुदाय॥'

कबीर के अनुसार माला जपना, सिर मुड़वाना आदि व्यर्थ के आडम्बर हैं, इनसे ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। ईश्वर-प्राप्ति के लिये तो चिन्तन-मनन की आवश्यकता है। उनके शब्दों में-

'माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो चहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं॥'

(6) प्रेम और वास्तविक ज्ञान पर बल– उपर्युक्त उद्धरणों के पढ़ने से ज्ञात होता है कि कबीर व्यर्थ के आडम्बरों में विश्वास नहीं करते थे। उनके जीवन का मूल उद्देश्य सीधे-सच्चे मार्ग पर चलते हुये भगवान को प्राप्त करना था। अपने इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये ही उन्होंने प्रेम और साधना पर विशेष बल दिया। कबीर का कथन था कि ईश्वर को प्राप्त करने के लिये पुस्तकीय ज्ञान की आवश्यकता नहीं। जो व्यक्ति भगवान के प्रेम में लीन है, वही सच्चा पण्डित या ज्ञानी है–

'पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
एकै आखर प्रीत का, पढ़ै सु पण्डित होय॥'

कबीर ने बार-बार इस बात पर बल दिया कि सच्चा ज्ञान हमारे हृदय में है जिसके माध्यम से ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। इधर-उधर भटक कर ईश्वर-प्राप्ति की चेष्टा व्यर्थ है–

'कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूंढे वन जाय।
ऐसे दुनिया राम को, घट-घट ढूंढन जाय॥'

(3) कबीर का समन्वयवादी दृष्टिकोण– कबीर किसी विशेष धर्म की ओर झुके नहीं थे। उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों की बुराईयों की आलोचना की तथा अच्छाईयों पर प्रकाश डाला।

अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही कबीर ने बिना किसी संकोच के दोनों धर्मों की बुराईयों की खुलेआम आलोचना की। यदि वे हिन्दुओं पर प्रहार करते थे तो मुसलमानों को भी नहीं छोड़ते थे–

अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करै बड़ाई, सागर छुवन न देई।
वेस्या के पायन तरे सोवे, यह देखो हिन्दुआई॥
मुसलमान के पीर औलिया, मुरगी मुरगा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं, घरहि करैं सगाई॥
बाहर से एक मुरगा लाये धोये धाय चढ़वाई।
सब सखियाँ मिल जेंवन बैठीं, घर भर करै बड़ाई॥
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहे कबीर सुनो भाई साधो कौन राह है जाई॥

(4) हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रयास– कबीर हिन्दू और मुसलमानों में जो भेद की दीवार खड़ी थी, उसे मिटाने के लिये दोनों को उपदेश देते थे कि राम और अल्लाह में कोई भेद नहीं, दोनों के नाम अलग-अलग हैं जबकि वास्तव में वे एक ही हैं–

'भाई रे दुई जगदीश कहाँ ते आया, कहु कवने भरमाया।
अल्लाह-राम करीमा केसो, हरि हजरत नाम धराया॥
गहना एक कनक ते गढ़वा, इनि मँह भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुर करि पापिन, इक निमाज एक पूजा॥
वही महादेव वही मुहम्मद ब्रह्मा आदम कहिये।

को हिन्दू को तुरुक कहावे, एक जमीं पर रहिये।'

स्पष्ट है कि कबीर के विषय में यह विश्वास करना कठिन था कि वे हिन्दू थे अथवा मुसलमान। ऐसी दशा में उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि उनका शव-दाह कैसे किया जाये? मुसलमान उन्हें अपनी परम्परा के अनुसार दफनाना चाहते थे और हिन्दू जलाना। कहा जाता है कि कबीर का शव विलीन हो गया और कफन के नीचे मुट्ठी भर फूलमात्र रह गये जिन्हें हिन्दू और मुसलमानों ने आपस में बाँट लिया। मुसलमानों ने अपने भाग के फूलों को मगहर में दफना दिया और हिन्दुओं ने अपूर्व श्रद्धा के साथ दाह-संस्कार किया।

निष्कर्ष– कबीर अपने युग के भक्त संत ही नहीं, वरन् महान् क्रान्तिकारी थे। उनकी क्रान्ति केवल सामाजिक या धार्मिक क्षेत्र में ही नहीं थी वरन् विभिन्न क्षेत्रों में थी। जैसा कि एक विद्वान कहते हैं, ''कबीर का व्यक्तित्व क्रान्तिकारी था। उनका यह व्यक्तित्व ही भक्त, प्रेमी तथा शुद्ध मानव की विभिन्न धाराओं में बहा है। उनके व्यक्तित्व में सर्वत्र एक प्रखरता, निश्छलता तथा स्पष्टता है।'' इसी प्रकार श्री दिनकर लिखते हैं- ''कबीरदास भारत के अत्यन्त महान् क्रांतिकारी पुरुष हुये हैं। उनकी बड़ाई केवल इसी बात के लिये नहीं है कि उन्होंने साहसपूर्वक हिन्दुओं और मुसलमानों की आँखों में उंगली डालकर उन्हें यह समझाया कि मन्दिर और मस्जिद के सवाल पर झगड़ने से बढ़कर मूर्खता का कोई और काम नहीं हो सकता अपितु इसलिये भी है कि संस्कृत के विरुद्ध उन्होंने भारत में नवीन भाषा की पताका फहरायी और संस्कृत का जो नेतृत्व ब्राह्मणों के हाथ में था, उसे उन्होंने निम्न वर्ग के लोगों के हाथ में पहुंचा दिया। कबीर की परम्परा में जो अनेक सन्त और महात्मा जन्मे उनमें नानक, रैदास, धन्ना, सुन्दरदास, दादूदयाल, रज्जब, मलूकदास और धरणीदास के नाम अत्यन्त विख्यात हैं और उनमें से कोई भी सन्त ब्राह्मण वंश में नहीं जन्मा।''

प्रश्न–4. गुरु नानक का परिचय देते हुये उनकी शिक्षाओं पर प्रकाश डालिये।

उत्तर– नानक का जन्म 1469 ई. में तालबन्दी नामक गाँव में हुआ था। तालबन्दी का वर्तमान नाम 'ननकाना' है। यह लाहौर से 35 मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। नानक ने प्रारम्भिक शिक्षा पाठशाला में पाई थी परन्तु वे बचपन से ही चिन्तनशील थे। प्रारम्भ से ही वे शिक्षा के प्रति उदासीन थे तथा पाँच वर्ष की आयु से ही वे जीवन के उद्देश्य के बारे में प्रश्न करने लगे। जब वे बारह वर्ष के थे तभी उनके पिता ने उनका विवाह एक खत्री कन्या से कर दिया। कुछ काल तक वे अपने श्वसुर के साथ काम करते रहे परन्तु उनका वहाँ मन नहीं लगा और वे भजन-कीर्तन में लीन रहने लगे। जब उनकी आयु केवल 29 वर्ष की थी तब उन्हें एक रहस्यानुभूति हुई और वे नौकरी छोड़कर सर्वसाधारण को उपदेश देने लगे। उनके समस्त कार्यक्रम की प्रमुख घोषणा थी- 'न कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान'। कबीर के विपरीत नानक एक सुशिक्षित सन्त थे। पंजाबी के अतिरिक्त उन्होंने हिन्दी और फारसी का भी ज्ञान प्राप्त किया था। सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करने के पश्चात् वे मध्य एशिया के कुछ देशों तथा अरब भी गये।

1. जाति-प्रथा का विरोध– कबीर के समान नानक जाति-प्रथा के विरोधी थे, उनका कहना था, ''याद रखो कि कर्म ही जाति को निश्चित करते हैं। मनुष्य अपने स्वयं के कार्यों से

श्रेष्ठ और पतित बनता है।...जाति-भेद की चिन्ता न करो। याद रखो कि ईश्वर का प्रकाश सब व्यक्तियों में है और उसके यहाँ जाति भेद नहीं।'' नानक के अनुसार जाति की उच्चता के आधार पर गर्व करना अपने को ईश्वर से दूर ले जाना है।

2. **हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल**– नानक हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे। वे दोनों को एक परम पिता परमेश्वर की सन्तान मानते थे। उनके इस दोहे से यह बात स्पष्ट होती है– 'बन्द इक्का खुदाय दे हिन्दू मुसलमान। दावा राम रसूल कर, लड़दे बेईमान॥'

वे ईश्वर की सर्वोच्चता में विश्वास करते थे। उनका कथन था कि, ''संसार भर का ईश्वर एक है, समस्त भेद-भाव मानवकृत है।'' ईश्वर की प्राप्ति प्रेम और भक्ति के द्वारा ही की जा सकती है। वे कबीर के समान हिन्दू और मुसलमान दोनों में घुसे हुये अन्धविश्वासों का खण्डन करते थे। उनके शब्दों में–

3. **आदर्श मार्ग-दर्शक**– नानक केवल आलोचक ही नहीं थे, वरन् वे मार्ग दिखाने वाले भी थे। वे मुसलमानों को सलाह देते हैं–

''तू दयालुता को अपनी मस्जिद बनाले,
निष्कपटता को नमाज का गलीचा बनाले।
जो न्यायपूर्ण हो उसे अपनी कुरान बनाले,
नम्रता को अपना सुन्नत बनाले॥
शिष्टाचार को अपना व्रत (रोजा) बनाले,
इस प्रकार तू मुसलमान बन जायेगा।।''

4. **पवित्रता पर बल**– जीवन की पवित्रता तथा विचारों की उच्चता में नानक का अगाध विश्वास था। इस विषय में **कनिंघम** लिखते हैं– ''जगदीश्वर ही सब कुछ है। मानसिक पवित्रता ही सब कुछ है। मानसिक पवित्रता ही प्रथम धर्म है और श्रेष्ठ प्रार्थनीय तथा साधन-योग्य वस्तु है। नानक जी आत्मो सर्ग और आराधना का उपदेश देते थे। वे अपने को अन्य प्रवर्तकों की अपेक्षा श्रेष्ठ और असाधारण गुणी तथा शक्तिशाली नहीं समझते थे। उनका कथन था कि दूसरों के समान वे भी एक प्राणी हैं। अपने स्वदेशवासियों को पवित्र जीवन व्यतीत करने का वे सदा उपदेश देते थे।''

5. **वेदों और मूर्ति-पूजा में अविश्वास**– कबीर के समान नानक वेदों में विश्वास नहीं करते थे तथा मूर्ति-पूजा को भी वे व्यर्थ समझते थे। वे सर्वशक्तिमान ईश्वर में दृढ़ विश्वास करते थे तथा उनका विश्वास था कि ईश्वर के चरणों में आत्म-समर्पण करके ही मुक्ति सम्भव है। नानक का कर्म के सिद्धान्त में विश्वास था तथा वे पुनर्जन्म के सिद्धान्त को भी मानते थे। उनके अनुसार संसार के प्रत्येक प्राणी का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है।

6. **एकेश्वरवाद में विश्वास**– कबीर के समान नानक ने भी एकेश्वरवाद में अपना विश्वास प्रकट किया, उनके शब्दों में–

''इक दू जीभउ लख होय लख होय लख बीस।
लख लख गेड़ा आखिये एक नाम जगदीश॥''

नानक के अनुसार ईश्वर के हम चाहें अनेक नाम रख दें परन्तु वह एक है। नामों की भिन्नता के कारण भ्रम में पड़ना तथा झगड़ना मूर्खता है। ईश्वर सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान,

अतुलनीय और अगम्य है। वे कहते हैं, ''हमें ईश्वर के किसी विशेष नाम की खोज और उसे निर्धारित करते समय सबसे पहले यह समझ लेना चाहिये कि विश्व में या इससे बाहर कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है। जितनी भी सृष्टि है, वह उसका नाम ही है।''

7. **गुरु का महत्व**– नानक के अनुसार सच्चे मार्गदर्शन के लिये गुरु का विशेष महत्व है। इस विषय में **खुशवंत सिंह** लिखते हैं, ''नानक ने गुरु को धार्मिक व्यवस्था का केन्द्र बनाया। बिना गुरु के मोक्ष प्राप्त करना असम्भव है। गुरु सत्य के संकरे और सीधे पथ पर चलने में सहायता करता है। वह उस अंकुश की भाँति है, जो पागल हाथी रूपी मनुष्य को इधर-उधर बहकने से रोकता है।

8. **नाम का महत्व**– नानक के विचार में 'नाम' के स्मरण का विशेष महत्व है। नाम का स्मरण करने से पापों का शमन होता है और अहंभाव नष्ट होता है। अहंभाव का विनाश ही 'जीवन-मुक्ति' है। ऐसी दशा में नाम का स्मरण करना परम आवश्यक है। नाम मार्ग के लिये तीन वस्तुओं की आवश्यकता है– हृदय ज्ञान, मुक्त भक्ति और वर्तन वैराग। प्रातः व सायं एवं सोते समय प्रार्थना इसी उद्देश्य से की जाती है।

9. **जन्म, मरण और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों में विश्वास**– नानक हिन्दुओं के जन्म, मरण और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों में आस्था रखते थे, उनके अनुसार–

जैसे हरहर की माला टिंड लागत है, इक सखनी होर फेरि भरीयत है,
तैसी ही एह खेल खसम का जिऊ उसकी बडियाई।

अर्थात् रहट की ढेकलियाँ नीचे की तरफ जाती हैं और पानी से भरकर ऊपर आती हैं और फिर खाली होकर नीचे चली जाती हैं, ऐसा ही हमारा जीवन है।

10. **नानक का प्रभाव**– नानक के उपदेशों और विचारों का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वे किसी एक सम्प्रदाय या धर्म से प्रभावित नहीं थे वरन् उनके धर्म या सिद्धान्तों में हिन्दू धर्म, कबीर मत, सूफी दार्शनिकता तथा इस्लामी एकेश्वरवाद का सुन्दरतम समन्वय हुआ था जैसा कि खुशवन्त सिंह लिखते हैं– ''उनके पदों को सरसरी तौर पर पढ़ने पर ही पता लगता है कि वे कठोपनिषद् और कुछ हद तक भगवद्गीता से कितने प्रभावित रहे होंगे। एक युवक के रूप में वे उस समय प्रचलित भक्ति मार्ग के सीधे सम्पर्क में आये। कबीर ने उन्हें काफी प्रभावित किया और पंजाब की यात्रा करते समय उनका कई मुसलमान सूफी सन्तों से भी साबका पड़ा।...सूफी शेख फरीद के जीवन दर्शन ने उन्हें बहुत ज्यादा प्रभावित किया।''

अपनी स्वतंत्र विचारधारा के कारण नानक के विषय में यह निर्णय करना कठिन है कि उनका किस विशेष धर्म के प्रति झुकाव था। इनमें विभिन्न धर्मों की अच्छाईयों का इतना सम्मिश्रण हो गया था कि वे किसी स्वतंत्र धर्म के जन्मदाता प्रतीत नहीं होते थे।

11. **सच्चा धर्म**– वास्तव में नानक ने कबीर के समान पक्षपात-रहित दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया। उन्हें किसी एक विशेष धर्म से बाँधना पूर्णतया अनुचित लगता था। अतः उनके अनुसार यह परमावश्यक है कि हम धर्म के उद्देश्यों को समझें। धार्मिक कट्टरता और अन्धविश्वास किसी भी धर्म का हो, उन्हें अप्रिय था और वे उसका बिना किसी हिचक के विरोध करते थे।

निष्कर्ष– मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् हिन्दुओं का नैतिक पतन होता जा रहा था। हिन्दू धर्म के मूल रूप को न समझकर आडम्बरपूर्ण जीवन में विशेष श्रद्धा रखते थे तथा अहं की भावना ने उन्हें आक्रांत कर रखा था। नानक के शब्दों में– "हिन्दुओं में से कोई भी वेद-शास्त्रादि को नहीं मानता, अपितु अपनी ही बड़ाई में लगा हुआ रहता है। उनके कान व हृदय सदा तुर्कों की धार्मिक शिक्षाओं द्वारा भरते जा रहे हैं और मुसलमान कर्मचारियों के निकट एक-दूसरे की निन्दा करके लोग सबको कष्ट पहुंचा रहे हैं। वे समझते हैं कि रसोई में चौका लगा लेने मात्र से ही हम पवित्र बन जायेंगे।" नानक ने अपनी रचना 'जपुजी' में संकेत किया है कि उनके जीवन का मूल उद्देश्य मनुष्य को व्यर्थ के आडम्बरों से मुक्त करना है। वे केवल हिन्दू और मुस्लिम धर्म के ही आलोचक नहीं थे वरन् उन्होंने वैष्णव, शैव, नानक पंथी सिद्ध आदि की भी आलोचना की तथा स्वयं को सम्प्रदाय से नहीं बांधा।

प्रश्न–5. 'मीराबाई अपने मन, वचन और कर्म से पक्की कृष्ण भक्त थीं।' इनका जीवन परिचय देते हुए समझाइये।

उत्तर– मीराबाई– कृष्ण भक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करने वाली मीराबाई का जन्म मारवाड़ के कुड़की नाम के गाँव में 1498 ईस्वी में एक राज परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम रतन सिंह राठौर था जो मेड़ता के शासक थे वह एक वीर योद्धा थे। मीराबाई अपने माता-पिता की इकलौती संतान थीं। उनके पिता रतन सिंह का अधिक समय युद्ध में व्यतीत होता था।

जब मीराबाई छोटी थीं तब उनकी माता का निधन हो गया था। उनका लालन-पालन उसके दादा राव दूदा जी की देखरेख में हुआ था। जो यौद्धा होने के साथ-साथ भगवान विष्णु के बड़े उपासक व भक्ति भाव से ओतप्रोत थे।

एक दिन राजमहल के सामने से एक बारात निकली। मीरा तब छोटी थीं। दूल्हा बहुत ही आकर्षक वस्त्र पहने हुए था। मीरा ने उसे देखा तो आकर्षित हो गईं और अपने दादा जी से कहा मुझे भी ऐसा एक दूल्हा ला दीजिए मैं उसके साथ खेलूंगी। मगर बालिका मीरा को दूल्हे के बारे में कुछ पता नहीं था। मीरा के दादा जी ने श्रीकृष्ण की एक मूर्ति मीरा को देते हुए कहा देखो यही तुम्हारा दूल्हा है, इसकी अच्छी देखभाल करना। अब मीरा को जो चाहिए था उसे वह मिल गया। मीरा ने प्रसन्न होकर उसे स्वीकार कर लिया। वह उस मूर्ति के साथ हमेशा खेलती रहती और उससे ऐसा व्यवहार करती मानो श्रीकृष्ण ही उसके पति हों।

मीराबाई के गुरु कौन थे? एक कहानी के अनुसार मीराबाई के दादा जी साधु संतों का बहुत सम्मान करते थे। उनके महल में हमेशा कोई न कोई साधु संत या कोई अतिथि आता रहता था। एक बार रैदास नामक एक संन्यासी महल में आया।

रैदास संत रामानंद के शिष्यों में से प्रमुख थे जिन्होंने उत्तर भारत में वैष्णव सम्प्रदाय का प्रचार किया। उसके पास श्रीकृष्ण की एक सुंदर मूर्ति थी वह उस मूर्ति की स्वयं पूजा करते थे। मीराबाई ने उसे उस मूर्ति को देख लिया और उसे मांगने लगी। संन्यासी कुछ देर पश्चात् महल से चले गए मगर मीरा उस मूर्ति के लिए हठ करती रही यहाँ तक कि उसने उस मूर्ति को पाने के लिए भोजन करना छोड़ दिया था। किन्तु अगले दिन सुबह रैदास वापस राजमहल में लौट आए और उन्होंने श्रीकृष्ण की मूर्ति मीरा को दे दी। रैदास ने कहा पिछली रात

श्रीकृष्ण मेरे सपने में आए और कहने लगे मेरी परम भक्त मेरे लिए रो रही है, जाओ उसे यह मूर्ति दे दो। यह मेरा कर्तव्य है कि मैं अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करूँ। इसलिए मैं यह मूर्ति मीरा को देने आया हूँ, मीरा एक बहुत बड़ी कृष्ण भक्त थीं। कुछ विद्वानों का मत है कि यह कहानी केवल कल्पना नहीं अपितु सत्य घटना है, मीरा ने स्वयं अपने गीतों में कहा है।

मेरा ध्यान हरि की ओर है और मैं हरी के साथ एकरूप हो गई हूँ। मैं अपना मार्ग स्पष्ट देख रही हूँ। मेरे गुरु रैदास ने मुझे गुरु मंत्र दिया है। हरी नाम ने मेरे हृदय में बहुत गहराई तक अपना स्थान जमा लिया है।

मीराबाई का मानना था कि परमात्मा ज्ञान अथवा भोग से नहीं बल्कि भक्ति और प्रेम से प्राप्त होते हैं। वे अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण को प्रियतम अथवा पति मानती थीं। मीराबाई ने अनेक भक्ति गीतों को लिखा जिनकी भाषा ब्रज तथा कहीं-कहीं इसमें राजस्थान की भी झलक दिखती है। मीराबाई ने गुजराती भाषा में भी साहित्य में लेखन कार्य किया। उनके भक्ति गीतों को 'पदावली' कहा जाता है। 16वीं सदी के भारत की संस्कृति की छवि हमें उनके गीतों में देखने को मिलती है। मीराबाई को इन गीतों के कारण ही 'गीत शैली की कविता की देवी' का सम्मान प्राप्त है।

मीराबाई न केवल राजस्थान में बल्कि सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध हुईं। दयाबाई, फूलीबाई, समानबाई, सहजोबाई आदि कितनी ही ऐसी कवियत्रियाँ हुईं जिन्होंने मीराबाई व उनके साहित्य से प्रेरणा लेकर संत साहित्य को समृद्ध किया। यद्यपि व्याकरण व साहित्य की दृष्टि से ये महिलाएँ विदूषी नहीं थीं किन्तु सरल लोकभाषा में इन्होंने अपने विचार व्यक्त कर जनमानस में भक्ति का संदेश दिया। मीराबाई ने बरसी का मायरा, राग गोविंद, राग सोरठ एवं गीत गोविंद पर टीका लिखी। मीराबाई की 1546 ईस्वी में मृत्यु हो गई।

प्रश्न–6. यूरोप में आधुनिक युग से आप क्या समझते हैं? उसके महत्वपूर्ण तत्वों का उल्लेख कीजिये।

अथवा

यूरोप में आधुनिक युग की प्रमुख विशेषताओं का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये। (या विवेचना कीजिये)

अथवा

यूरोप में आधुनिक युग का उदय कब हुआ? उसकी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

अथवा

यूरोप में आधुनिक युग के आविर्भाव (उदय) से आप क्या समझते हैं? इसकी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

अथवा

आधुनिक यूरोप का इतिहास कब से आरम्भ होता है? इसकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिये।

अथवा

पन्द्रहवीं सदी के मध्य के बाद का युग 'आधुनिक युग' क्यों माना जाता है?

उत्तर– मानव सभ्यता और संस्कृति के विकासक्रम को इतिहास प्रतिबिम्बित करता है। यूरोप के इतिहास में प्राचीन, मध्य और आधुनिक कालों का क्रमागत विकास का वर्णन इतिहास उपलब्ध करवाता है। आरम्भ से 500 ई. तक प्राचीन, 500 ई. से 1500 ई.

तक मध्यकाल और 1500 के पश्चात् आधुनिक काल माना जाता है। यद्यपि यह विभाजन अथवा काल परिवर्तन के वर्ष सुनिश्चित नहीं हैं। फिर भी इनमें परिवर्तन की प्रवृत्ति और विशेषतायें प्रथमतः संकेत रूप में और फिर स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होने लगती हैं।

आधुनिक युग का अर्थ– जीवन के विकास और परिवर्तन का स्वरूप अविरल धारा का होता है। फिर भी दो युगों के मध्य कुछ युगान्तरकारी घटनायें घट जाती हैं। यहीं से एक युग की विदाई और दूसरे का आगमन माना जाता है। यूरोप में पन्द्रहवीं शताब्दि में कुछ ऐसी ही युगान्तरकारी घटनायें घटीं जिन्होंने आधुनिक युग का आरम्भ कर दिया।

पुनर्जागरण, धर्म-सुधार आन्दोलन, राष्ट्रवाद की उत्पत्ति, सामन्तवाद का पतन तथा नवीन सामुद्रिक मार्गों की खोज एवं वैज्ञानिक अनुसंधानों ने समस्त यूरोप को तथा विश्व को प्रभावित किया वहीं मध्यकाल और आधुनिक काल में विभाजक रेखा स्थापित की।

आधुनिक युग का आरम्भ– यूरोप के इतिहास में 1453 का वर्ष सर्वाधिक युग-परिवर्तनकारी, विस्तृत और अति व्यापक दूरगामी परिणामों वाली घटना है। इसने यूरोप और विश्व के इतिहास पर प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभाव डाले। 'ऑटोमन तुर्को' (टर्की का इस्लामी) ने अपनी साम्राज्यलिप्सा को पूर्ण करने के लिये 1453 में पूर्वी रोमन साम्राज्य की राजधानी 'कुस्तुनतुनियां' पर न केवल आक्रमण किया बल्कि विजय प्राप्त की और अपना राज्य स्थापित किया।

कोलम्बस की यात्रा और धर्म-सुधार आन्दोलन दोनों ही टर्की के आक्रमण के परिणाम थे। इसके पूर्व यूरोप में यूनानियों का कुस्तुनतुनियां से जाना, उनके द्वारा बौद्धिक जागरण करना, अन्धविश्वासों का दूर होना आदि नये युग के प्रादुर्भाव के लिये अनिवार्य घटनायें थीं। इस कारण इतिहासज्ञ ग्रान्ट का विचार है कि, 'पुनर्जागरण ने मनुष्यों में आलोचना की भावना पैदा की, जीवन के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण दिया और मध्यकालीन परम्पराओं को चुनौती देने के लिये उन्हें शक्तिशाली बनाया।' **रोबिल** ने लिखा कि 1454 में छापेखाने के आविष्कार से विचारों का आदान-प्रदान अत्यन्त तीव्र गति से हुआ जिसके कारण 'बौद्धिक और सामाजिक क्रान्ति हुई।' **लार्ड एक्टन** ने लिखा कि, 'आधुनिक यूरोप का इतिहास उस्मानी तुर्कों की विजय के भारी दबाव के कारण आरम्भ हुआ।' अतः आधुनिक युग का आरम्भ वर्ष 1453 है।

आधुनिक युग की विशेषतायें– पुनर्जागरण, धर्म-सुधार, सामन्तीय व्यवस्था पतन और राष्ट्रीय भावनाओं के उदय के परिणामस्वरूप यूरोपीय समाज में अनेक परिवर्तन हुये जिनकी प्रमुख विशेषतायें निम्नांकित हैं–

1. **बौद्धिक जागरण–** तुर्कों के कुस्तुनतुनियां पर आक्रमण के कारण ग्रीक विद्वानों को पलायन कर यूरोप के विभिन्न देशों में शरण और जीविका के लिये जाना पड़ा। उनके ज्ञान ने यूरोप की शिक्षा, विज्ञान, विचार-प्रणाली, कला, साहित्य, गणित आदि में अत्यन्त महत्वपूर्ण परिवर्तन और सुधारों के आयाम जोड़े। इससे मध्ययुगीन धर्माडम्बर, अन्धविश्वास और कुरीतियों के बादल छँटने लगे और इनके खिलाफ प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई। बौद्धिक जागरण ने मानव सभ्यता में भौतिक क्रान्ति भी की। विज्ञान की बौद्धिकता ने अनेक अनुसंधानों के द्वारा सभ्यता के विकास के साधन उपलब्ध करवाये तथा उद्योग, व्यापार आदि की नवीन प्रणालियों

को भी जन्म दिया। आर्थिक, सामाजिक चिंतन में और जीवन-शैली में नवीन प्रवृत्तियों की उत्पत्ति की।

2. **साम्प्रदायिक सुधारों का आरम्भ–** सम्पूर्ण यूरोप में किसी समय सर्वाधिक नैतिक, पवित्र, सर्वस्पर्शी, सर्वकल्याणकारी, सार्वभौम प्रभुत्व सम्पन्न संस्था 'कैथोलिक चर्च' थी। यह एक असम्भव बात थी कि कोई व्यक्ति या व्यक्ति समूह चर्च के बिना रह सकता था अथवा उसे किसी भी प्रकार की चुनौती दे सकता था। जन्म से मृत्यु तक मानव का सम्पूर्ण जीवन चर्च के द्वारा नियंत्रित होता था। इसका सर्वोच्च अधिकारी पोप था तथा उसकी राजनैतिक और भौतिक शक्ति 'पवित्र रोमन सम्राट' थी। पवित्र रोमन सम्राट किसी सैनिक शक्ति और साम्राज्य का स्वामी हुआ करता था।

कालान्तर में कैथोलिक चर्च के पोप, पादरी, विशप और सम्पूर्ण संस्थायें अनैतिक, स्वार्थी, धन की लोभी, चरित्रहीन, अन्यायी, मानव सेवा के आदर्श से विमुख और विलासी हो गईं। नवयुग के आगमन के साथ कुछ आदर्श व्यक्तियों ने ईसाई धर्म के मूल आदर्शों की स्थापना की माँग की तथा चर्च में सुधार के लिये आन्दोलन किये जिन्हें सफलता भी मिली।

3. **नवीन मार्गों का आविष्कार–** तुर्कों के आक्रमण, अत्याचार, मिस्त्र आदि में विस्तार के कारण ईसाई व्यापारियों और यात्रियों को अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। अतः उन्होंने व्यापार के लिये नवीन देशों और नवीन मार्गों की खोज इसी युग में आरम्भ की। भारत तथा पूर्वी देशों से यूरोप पहुँचने वाला माल और उससे होने वाला मुनाफा रुक गया था। अतः कोलम्बस ने 1492 में अमेरिका की और वास्कोडिगामा ने भारत के नवीन मार्ग की खोज की। इसी काल में कुतुबनुमा समुद्री चट्टानों का संकेत देने वाले प्रकाश स्तम्भों का आविष्कार हुआ जिससे जलयान में भारी सुविधा हुई और यात्रियों को प्रोत्साहन मिला। हॉलैण्ड, फ्रांस, इंग्लैण्ड, पुर्तगाल आदि ने सामुद्रिक यात्रियों को प्रोत्साहित किया।

4. **सामन्तशाही का पतन–** मध्ययुग में राजा से अधिक शक्तिशाली सामन्त होते थे। राजा उन्हीं के समर्थन से नियुक्त होता था तथा इसके बदले में राजा उन्हें जागीरें, अधिकार देता था। युद्ध के समय सामन्त राजा को सैनिक सहायता भी देते थे। कालान्तर में राजा और राजसत्ता पर अधिकार रखने, उससे अधिकार और सुविधा पाने के लिये सामन्तों में परस्पर प्रतियोगिता और संघर्ष होने लगे। इनके संघर्षों में राजा दुविधा में पड़ जाते थे। किसी एक गुट से सहायता लेना और अधिक सुविधा देना दूसरे सामंतीय गुट की नाराजी और षड्यन्त्र का कारण होता था। इसी संघर्ष को गोला-बारूद के आविष्कार ने और अधिक बढ़ा दिया। इससे जहाँ सामन्तों की शक्ति टूटने लगी वहीं नवीन शक्ति (राष्ट्रीय राजतंत्रों) का उदय हुआ।

5. **राष्ट्रीय राज्यों का उदय–** सामन्त वर्ग अत्यन्त विलासी, परस्पर विद्वेषी, राजसत्ता का लोभी और इन सबके लिये परस्पर संघर्षशील था। जैसे इंग्लैण्ड में 'गुलाबो का युद्ध' हुआ। इन संघर्षों में से राजाओं ने अपनी शक्ति को बढ़ाने का निश्चय किया तथा सामन्तों के आश्रय और सहायता को त्यागने के लिये तत्पर हुये। उन्होंने इनके स्वार्थों, संघर्षों और फूट का लाभ उठाया। उन्होंने मध्यम-वर्ग और मध्यमवर्गीय व्यापारियों से धन लेना और उन्हें सुविधायें देना आरम्भ किया। उन्होंने अपनी सेना, शस्त्र और सैन्य व्यवस्था तथा युद्ध-प्रणाली को विकसित किया तथा धन सम्पन्न होकर गोला-बारूद, तोप आदि पर एकाधिकार कर लिया।

शक्तिशाली होकर राजाओं ने सामन्तों पर आर्थिक, सैनिक और सामाजिक नियंत्रण लगाना आरम्भ किया। इसमें राजाओं को सामन्तों द्वारा उत्पीड़ित निर्धन जनता, मध्यम–वर्ग और व्यापारियों ने पूरी सहायता प्रदान की। इस प्रकार इस युग में सामन्तीय व्यवस्था के स्थान पर निरंकुश राष्ट्रीय राजतंत्रों की स्थापना हुई।

6. **उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का उदय**– इस युग की यह नवीन प्रवृत्ति थी। व्यापारिक मार्गों की खोज तथा कुतुबनुमा के आविष्कार ने उपनिवेश स्थापित करने की प्रतियोगिता को आरम्भ किया। उपनिवेशों की संख्या और साम्राज्य विस्तार, प्रतिष्ठा, शक्ति और धन सम्पन्नता का आधार समझे जाने लगे। इसके लिये यूरोपीय देशों ने औपनिवेशिक बस्तियों की जनता की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक बुराइयों व कमजोरियों से लाभ उठाया। उनमें फूट डाली, उन्हें परस्पर लड़ाया, उन्हें पराजित किया और उनकी भूमि पर अधिकार किया। पुर्तगाली, फ्रेंच, डच तथा इंग्लैण्ड ने उपनिवेशों में कारखाने स्थापित किये, शासन स्थापित किये। भारत, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, अमेरिका आदि उपनिवेश बने। इस कारण **ट्रेवेलियन** ने लिखा कि, 'पन्द्रहवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में यूरोपीय देशों का साम्राज्य–प्रसार यूरोप की आधुनिकता का एक विशेष लक्षण था।'

7. **नवीन नगरों का विकास**– नवीन वैज्ञानिक और भौगोलिक आविष्कारों तथा औपनिवेशिक विस्तार के कारण व्यापार, यातायात, कच्चे माल की प्राप्ति में पर्याप्त वृद्धि हुई। इस कारण बड़े–बड़े कारखाने स्थापित हुये और इनके कारण औद्योगिक नगरों की स्थापनायें हुईं। इन नगरों के कारण यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के केन्द्र बन गये। **शेविल** ने लिखा कि, 'बड़े–बड़े नगरों के विकास के कारण यूरोप में न केवल आधुनिकता ही आई वरन् इसने अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं के विकास को भी प्रोत्साहन दिया।'

8. **साहित्य, कला और विज्ञान का प्रसार**– बौद्धिक जागरण के परिणामस्वरूप इस काल में साहित्य सृजन भी प्रचुर मात्रा में हुआ। जिसे छापेखाने के आविष्कार ने सर्व सुलभ करवा दिया। अब कोई ज्ञान, विद्वान या विचारधारा किसी देश, व्यक्ति और समाज की नहीं रही वह यूरोपियन और फिर विश्व की विचार–गंगा में मिली। साहित्यकारों, वैज्ञानिकों, कलाकारों और दार्शनिकों ने स्वतंत्रता, मानवता, सत्यान्वेषण, समानता, राष्ट्रीयत्व आदि के विचारों का प्रचार–प्रसार किया तथा संस्कृति और सभ्यता में भी परिवर्तन किये। दाँते, पेट्रार्क, एंजिलो, लियोनार्डो दी विन्शी, शेक्सपियर, फ्रांसिस बेकन, केपलर, गेलीलियो, ग्रीवो, हार्वे आदि साहित्यकार, वैज्ञानिक और कलाकार इस युग में हुये।

इस्लाम से संघर्ष और राष्ट्रीय भावना– टर्की द्वारा ईसाई प्रदेशों पर अधिकार कर लेने के कारण ईसाई जनता ने टर्की के खिलाफ संघर्ष करने के लिये परस्पर एकता और सहयोग से टर्की से संघर्ष किये। इस प्रकार के तीन संघर्ष हुये इन्हें 'धर्मयुद्धों' की संज्ञा दी गई।

इस संगठन और एकता के लिये राष्ट्रीय भावनायें जगाई गईं। शक्तिशाली राजाओं ने अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिये देशभक्ति, देश की विजय, राष्ट्रीय गौरव को बढ़ाया तथा सामान्य और मध्यम जनता के हित राजाओं के साथ जुड़ने से राष्ट्रीय राजतंत्र भी स्थापित हुये। इस प्रकार सभी ईसाई देशों ने इस्लाम के खिलाफ अखिल ईसाई एकता को प्रोत्साहित

किया। फिर राष्ट्रीय चर्चों की स्थापनायें भी हुईं। दो देशों के मध्य युद्ध इस काल में धार्मिक कम और राष्ट्रीय अधिक होता था।

निष्कर्ष– लार्ड एक्टन, फिशर और इरगैंग आदि इतिहासकार इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निम्नलिखित घटनायें और परिवर्तन आधुनिक युग के आगमन और विशेषताओं की सूचक हैं– 'आधुनिक यूरोपीय इतिहास का आगमन 1453 ई. में कुस्तुनतुनियाँ की पराजय और तुर्की की विजय से हुआ था। आधुनिक इतिहास का तात्पर्य पन्द्रहवीं शताब्दि से लेकर आगामी चार शताब्दियों तक उस युग से है, जो पूर्वगामी युग की विशेषताओं और धाराओं से स्पष्टतः भिन्न है....उद्घोषित हुये बिना ही इस युग ने नये परिवर्तनों के बीच नई संस्था बनाकर प्राचीन पद्धति की निरन्तरता समाप्त कर दी। आधुनिक काल के आरम्भ में कोलम्बस ने पृथ्वी के सम्बन्ध में प्रचलित विचारधारा में आमूल परिवर्तन कर दिया। इस काल में उत्पादन, धन तथा शक्ति की आवश्यकताओं में काफी परिवर्तन हुये। मैकियावली ने सरकार को कानूनी नियंत्रणों एवं बन्धनों से मुक्त कर दिया। एरसमस ने प्राचीन विद्या को नई दिशा में चालित किया। लूथर ने परम्पराओं और अधिकारों की जंजीरों को तोड़ दिया। कोपरनिकस ने अजेय और अभेद्य शक्ति का संचार किया। इस प्रकार आधुनिक काल नव–जीवन की जागृति, नई शक्तियों की उत्पत्ति तथा नये आदर्शों, विचारों व सिद्धान्तों से परिपूर्ण है।'

प्रश्न–7. पुनर्जागरण का क्या अभिप्राय है? आधुनिक यूरोप पर इसके महत्व और प्रभावों का वर्णन कीजिये।

अथवा

पुनर्जागरण से आप क्या समझते हैं? इस काल में हुई वैज्ञानिक प्रगति का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

अथवा

पुनर्जागरण से क्या अभिप्राय है? इसकी प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

अथवा

सांस्कृतिक (पुनर्जागरण) जागरण के काल में कला, विज्ञान और साहित्य की जो प्रगति (विकास) हुई, उसका वर्णन कीजिये।

अथवा

पुनर्जागरण के स्वरूप एवं महत्व का वर्णन कीजिये। (या विवेचना कीजिये)

उत्तर– पन्द्रहवीं शताब्दि विश्व में पुनर्जागरण की शताब्दि थी। यूरोप के विभिन्न देशों में भी पुनर्जागरण की लहर चली तथा उसने प्रत्येक देश में पहुँच कर जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया।

अर्थ– 'पुनर्जागरण' का अर्थ है फिर से जागना। यहां 'जागरण' का अर्थ राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक ज्ञान के प्रसार से है। वास्तव में मध्यकाल में प्राचीन आदर्श एवं जीवन मूल्यों को भुला दिया गया था या उनको रुढ़ियों, अन्धविश्वासों, धार्मिक और राजनैतिक नेताओं के स्वार्थों की परतों ने ढँक लिया था, जिसे आधुनिक काल में कुरेदकर झकझोर दिया गया। जिससे प्राचीन आदर्शों का स्मरण, वैज्ञानिक चिंतन व उपयोगिता का स्मरण हुआ तथा उन्होंने नवीन रूप धारण किया। अतः इसे 'पुनर्जागरण' कहा गया। कुछ विद्वानों ने इसे 'सांस्कृतिक पुनरोत्थान' भी कहा है।

आरम्भ– सामान्य रूप से इतिहासकार इसका आरम्भ मई, 1453 में मानते हैं। जब तुर्कों ने ग्रीक साम्राज्य की राजधानी कुस्तुनतुनियां पर आक्रमण करके वहां के नागरिकों को यूरोप के विभिन्न देशों में भागने के लिये विवश कर दिया। ग्रीक धर्म, संस्कृति, भाषा, साहित्य कला और विज्ञान में बहुत उन्नत थे। अतः इनके कारण यूरोप में इनका प्रचार–प्रसार हुआ।

पुनर्जागरण काल की विशेषतायें– पुनर्जागरण काल की प्रमुख विशेषताओं का विवरण निम्नलिखित है–

(1) साहित्य– यूरोप में साहित्य के क्षेत्र में अनेक साहित्यकार और काव्य, निबन्ध, नाटक, कहानी, चरित्र, इतिहास, विज्ञान आदि उत्पन्न हुये। पेट्रार्क, इरास्मस, चौसर, सरवून्टीज, सर टामसमूर, जॉन फिशर, फ्रांसिस रेबेल आदि प्रसिद्ध लेखक एवं कवि आदि हुये।

(2) कला (स्थापत्य, चित्र और संगीत)– इस काल में स्थापत्य कला में मूर्ति, भवन–निर्माण, चर्च निर्माण कलायें बहुत विकसित हुईं। इसी प्रकार चित्रकला भी अपने सबसे ऊँचे शिखर पर पहुँची। इनमें अनेक शैलियों, तकनीक और विज्ञान का प्रयोग किया गया। संगीत और वाद्ययन्त्रों में भी क्रांति हुई तथा आविष्कार हुये। इस काल में पोप निकोलस पंचम, जूलियस द्वितीय, पोपलियो दशम कलाओं के संरक्षक और प्रशंसक थे। इन्होंने इनके प्रचार के लिये पुस्तकालय और विद्यालय खोले।

पुनर्जागरण काल की विशेषतायें

1. साहित्य
2. कला (स्थापत्य, चित्र और संगीत)
3. चित्र, मूर्ति और स्थापत्य के कलाकार
4. विज्ञान
5. धर्म–सुधार आन्दोलन का उदय

(3) चित्र, मूर्ति और स्थापत्य के कलाकार– इस काल में चित्रकला और मूर्तिकला का विश्व–विख्यात कलाकार 'लियानार्डो दी–विन्शी' था जो महान भवन–निर्माता, इन्जीनियर और वैज्ञानिक था, जिसने विख्यात 'मोनालिसा' के चित्र के रूप में चित्रकला को उच्चतम बिन्दु तक पहुँचाया। इसी प्रकार माइकेल ऐंजिलो एवं राफेल विख्यात कलाकार हुये। फ्लोरेंस नगर, वेनिस व रोम आदि में चर्च, मूर्तियां तथा विशाल भवनों में इन्होंने निर्माण कार्य का मार्गदर्शन किया।

(4) विज्ञान– अन्धविश्वासों, धूर्त और चालाक धर्म के ठेकेदारों तथा उनके द्वारा निर्मित अनैतिक, अनुचित सिद्धान्त, विचार और व्यवहार की पोल खोलने का कार्य वैज्ञानिकों ने किया। विज्ञान से समाज के चिंतन, विचार, साहित्य, परम्परा, आदर्श राजनीति और संस्कृति में भी परिवर्तन हुये। इसी काल में जहां गोलाबारूद के आविष्कार से सामंतों का पतन हुआ वहीं कुतुबनुमा के आविष्कार से नाविकों को सफलतायें मिलीं। छापेखाने के आविष्कार से ज्ञान का प्रसार हुआ वहीं ज्योतिष और गणित के द्वारा जल, पृथ्वी, आकाश और ब्रह्माण्ड के रहस्य खुलने लगे। 'दूरबीन', थर्मामीटर, बैरोमीटर, भौतिक–तुला, पेण्डुलम घड़ी, चुम्बक, वाष्प–शक्ति और भौतिक, रसायन तथा जीवशास्त्रों की खोज ने जीवन, स्वास्थ्य की सुरक्षा, रोगों के कारण और निदान, पृथ्वी के खनिज से परिचय तथा अनेक यन्त्रों से परिचय करवाया और इन्हें मूर्तरूप दिया। इस काल के प्रमुख वैज्ञानिकों में कोपरनिकस, टालेमी, ग्रीवो, कैपलर, गेलीलियो, स्टीफन, लियोनार्डो और न्यूटन आदि बहुत प्रसिद्ध थे।

(5) धर्म–सुधार आन्दोलन का उदय– कैथोलिक चर्च में इस समय तक अनेक दोष उत्पन्न हो चुके थे। पोप और पादरियों ने अपनी असीमित प्रभाव वृद्धि और जनता को अपने आधीन बनाये रखने के लिये अनेक झूठे व अनैतिक तरीके अपना रखे थे। उन पर बाइबिल पढ़ने के लिये भी प्रतिबन्ध था। जनता को इनके चाहे आदेश सत्य हों या असत्य, सभी का पालन श्रद्धा से करना पड़ता था। शिक्षा, ज्ञान, तर्क एवं विज्ञान के प्रसार ने सामान्य जनता को सत्य से परिचित करवाया जिससे यूरोप के सभी देशों में धर्म–सुधार की मांग होने लगी तथा इसके लिये आन्दोलन और संघर्ष होने लगे। अनेक देशों में प्रोटेस्टेंट चर्च बनने लगे और इसी की प्रतिक्रिया में धर्म–सुधार आन्दोलन भी हुआ।

निष्कर्ष– पुनर्जागरण का अर्थ ही पूर्व के ज्ञान, विज्ञान और जीवन–दर्शन की वास्तविकता का पुनः उदय होना था, जो मध्य काल में चर्च, राजा और समाज के स्वार्थी और चालाक लोगों के कारण लुप्त हो गया। परन्तु उसकी पुनः जाग्रति के साथ–साथ पुनर्जागरण काल में साहित्य, कला और विज्ञान की प्रगति से धर्म–सुधार भी हुआ तथा समाज और विभिन्न देशों में सभी दिशाओं में क्रांतिकारी परिवर्तन हुये।

प्रश्न–8. पुनर्जागरण से आप क्या समझते हैं? इसके कारणों की विवेचना कीजिये।

अथवा

पुनर्जागरण के कारणों को संक्षेप में लिखिये।

अथवा

'यूरोप में पुनर्जागरण की पृष्ठभूमि वर्षों से तैयार हो रही थी।' इस कथन की पुष्टि में पुनर्जागरण के कारणों को समझाइये।

उत्तर– पुनर्जागरण का अर्थ– उत्थान एवं पतन प्रकृति के नियम हैं। अज्ञानता, अंधविश्वास से निकलकर लोग एक आंदोलन के लिये उत्प्रेरित हो उठे, इसी आंदोलन को इतिहासकारों ने नाम दिया है– 'पुनर्जागरण'। इस तरह आमतौर पर चौदहवीं शताब्दि के आरंभ को पुनर्जागरण काल के नाम से पुकारा गया है।

'पुनर्जागरण' का शाब्दिक अर्थ है–'फिर से जागना'। पं. नेहरू के शब्दों में, 'पुनर्जागरण का अर्थ है–विद्या, कला, विज्ञान, साहित्य और यूरोपीय भाषाओं का विकास।'

पुनर्जागरण–काल– मुख्य तौर पर चौदहवीं शताब्दि के प्रारंभ को 'पुनर्जागरण–काल' का नाम दिया जाता है। इस काल में यूरोपवासियों ने जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण को बदल दिया। लोग अपनी समस्याओं पर विचार करने लगे। वे प्रत्येक बात को वैज्ञानिकता के आधार पर लेने लगे और नवीन ज्ञान की प्राप्ति हुई। इस प्रक्रिया के दौर से गुजरते हुये यूरोपवासियों ने जो वैचारिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं बौद्धिक उन्नति की, उसी को पुनर्जागरण कहा जाता है। इसी पुनर्जागरण ने लोगों में आशा एवं विश्वास की लहर उत्पन्न की है।

पुनर्जागरण के कारण– यूरोप में पुनर्जागरण एक आकस्मिक घटना नहीं थी। मानवीय जीवन के सभी क्षेत्रों में धीरे–धीरे होने वाली विकास की प्रक्रिया का परिणाम ही पुनर्जागरण की पृष्ठभूमि थी। यूरोप में आधुनिक युग के प्रारंभ में पुनर्जागरण के निम्नलिखित कारण थे–

1. नवीन भौगोलिक खोजों का प्रभाव– नवीन भौगोलिक खोजों में यूरोप के साहसी नाविकों के प्रयास अत्यन्त ही प्रशंसनीय थे। कुतुबनुमा के आविष्कार से इस कार्य में उनको अत्यधिक सहायता मिली थी। पुर्तगाल,स्पेन, फ्रांस तथा हॉलैंड के नाविकों ने नये–नये देशों

की खोज की। उन लोगों ने अमेरिका, अफ्रीका, भारत,आस्ट्रेलिया आदि देशों को जाने के मार्गों को खोज निकाला, इससे व्यापार में वृद्धि हुई तथा साथ ही साथ उपनिवेश- स्थापना का कार्य भी सम्पन्न हुआ। इन सभी देशों में यूरोप की धर्म एवं संस्कृति के प्रसार का सुअवसर प्राप्त हुआ।

पुनर्जागरण के कारण

1. नवीन भौगोलिक खोजों का प्रभाव
2. सामंतवाद का पतन
3. कुस्तुन्तुनियां पर तुर्कों का अधिकार
4. धर्म-युद्धों का प्रभाव
5. व्यापार-व्यवसाय में वृद्धि एवं नगरों का विकास
6. छापाखाने का आविष्कार एवं उसका प्रभाव
7. विद्वानों की कृतियां तथा उनके प्रभाव
8. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

2. सामंतवाद का पतन- सामंतवाद का पतन पुनर्जागरण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण था। सामंतवाद के रहते हुये पुनर्जागरण के बारे में कल्पना भी नहीं की जा सकती है। सामंतवाद के पतन के कारण लोगों को स्वतंत्र चिन्तन करने तथा उद्योग-धंधे,व्यापार, कला और साहित्य आदि के विकास के समुचित अवसरों की प्राप्ति हुई।

3. कुस्तुनतुनियां पर तुर्कों का अधिकार- सन् 1453 ई. में उस्मानी तुर्कों ने सभ्यता एवं सांस्कृतिक केन्द्र के नगर कुस्तुनतुनिया पर आक्रमण कर विजय प्राप्त कर ली। तुर्कों के अत्याचारों से बचने के लिये वहाँ पर बसे हुये यूनानी विद्वानों, साहित्यकारों तथा कलाकारों ने भागकर इटली में शरण ली। इनके आगमन एवं सहयोग के कारण सर्वप्रथम इटली में पुनर्जागरण प्रारम्भ हुआ। धीरे-धीरे यह आन्दोलन यूरोप के अन्य देशों में भी फैल गया। इस प्रकार यूरोप में जन-जागरण, नव-निर्माण, धर्म-सुधार, राजनैतिक उत्थान तथा अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन आरम्भ हो गये।

4. धर्म-युद्धों का प्रभाव- मध्यकाल में ईसाइयों एवं मुसलमानों में अनेक धार्मिक संघर्ष हुये। दोनों संस्कृतियों का आदान-प्रदान हुआ। इन युद्धों में यूरोप के राजाओं, सामंतों, व्यापारियों तथा किसानों आदि ने भरपूर सहयोग दिया। इसी दौरान यूरोपवासियों का संपर्क पूर्व की उन्नतिशील सभ्यता और संस्कृति से हुआ जिसके कारण यूरोप की संस्कृति का विकास हुआ। धर्म-युद्धों से चर्च की शक्ति भी निर्बल हो गयी थी जो पुनर्जागरण के मार्ग में बाधक थी। इस प्रकार धर्म-युद्ध भी पुनर्जागरण में सहायक सिद्ध हुये। धार्मिक-युद्धों के कारण यूरोपीय जनता का नवीन जातियों से संपर्क स्थापित हुआ। इससे लोगों के रहन-सहन, खान-पान, विचार-शैली, उद्योग तथा अन्य क्रियाकलापों में परिवर्तन आने लगा एवं नवीन प्रकाश फैलने लगा।

5. व्यापार-व्यवसाय में वृद्धि एवं नगरों का विकास- पुनर्जागरण के विभिन्न कारणों में नवीन भौगोलिक खोजों ने, ज्ञान-विज्ञान के आविष्कारों ने वाणिज्य एवं व्यापार के क्षेत्र में यूरोप में आर्थिक क्रांति को जन्म दिया। व्यापार की प्रगति से नगरों का तेजी से विकास होने लगा। नगरीय सभ्यता विकसित हुई। लोगों का राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक जीवन बदल गया। लोगों का जीवन-स्तर ऊंचा हो गया, साथ ही कला-कौशल में भी उन्नति

हुई। इन्हीं नगरों ने साहित्य, कला, विज्ञान के प्रचार-प्रसार के द्वारा पुनर्जागरण का कार्य किया।

6. छापाखाने का आविष्कार एवं उसका प्रभाव- छापाखाने के आविष्कार ने सांस्कृतिक पुनर्जागरण में बहुत योगदान दिया। छापाखाने के कारण पुनर्जागरण के प्रचार-प्रसार में तीव्रता आई। पुस्तकें अधिक मात्रा में और कम मूल्य में उपलब्ध होने लगीं जिससे शिक्षा का स्तर सभी वर्गों के लिये समान हो गया। इससे विज्ञान और तकनीकी शिक्षा का विकास हुआ। यूनान, अरब तथा रोम में प्राचीन ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें प्रकाशित होने लगीं जिससे नवीन ज्ञान को खोज निकाला गया। लोगों ने धार्मिक अंधविश्वास, आडम्बर तथा कुरीतियों को घृणा की दृष्टि से अलग किया एवं बुरा समझा।

7. विद्वानों की कृतियां तथा उनके प्रभाव- पुनर्जागरणकाल में विद्वानों ने आध्यात्मिक ज्ञान के साथ-साथ मानवीय विषयों के अध्ययन पर जोर दिया। इस प्रकार इंग्लैण्ड में चांसर, जर्मनी में मार्टिन लूथर, इटली में दान्ते, स्पेन में सरवेन्ट्स एवं फ्रांस में रेबेल ने अनेक प्रभावशाली कृतियों द्वारा लोगों के समक्ष नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किये।

8. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार- अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ने भी पुनर्जागरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यूरोप के व्यापारी चीन और भारत तथा अन्य देशों में पहुंचने लगे। व्यापार की उन्नति से यूरोप का व्यापारी-वर्ग समृद्ध हो गया एवं व्यापार एक देश से दूसरे देश में प्रगति कर बैठा। इस प्रकार उपरोक्त सभी तथ्यों ने यूरोप में पुनर्जागरण की प्रक्रिया को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया।

पुनर्जागरण की प्रकृति-- मध्यकाल तक यूरोपीय जनता प्राचीन रूढ़िवादी ज्ञान से ऊब चुकी थी अतः उसने नवीन ज्ञान का स्वागत किया। इस कारण ग्रीक ग्रन्थों, रोमन ग्रन्थों के अध्ययन से ही वह सन्तुष्ट नहीं हुई बल्कि इनके लैटिन भाषा में अनुवाद भी किये। इस काल में प्राचीन की खोज और नवीन के स्वागत का सुन्दर समन्वय हुआ। तर्क, विज्ञान, यथार्थ और आविष्कार को महत्व दिया गया। इस प्रकार मानवतावादी दृष्टिकोण का सृजन हुआ। रोम और यूनान की विधाओं को 'क्लासिकल विधायें' कहा जाता था अतः इनके अध्ययन की रुचि को क्लासिकल प्रकृति कहा जाता है। इस अध्ययन का दृष्टिकोण चर्च के परम्परागत ज्ञान के विपरीत वैज्ञानिक और लौकिक था, जिसके अनुसार मनुष्य-जीवन को एक सत्य माना जाता था। इसकी प्रकृति को सारांश में तर्कवादी, मानवतावादी, ज्ञान की खोज करने वाला, वैज्ञानिक तथा समन्वयवादी कहा जा सकता है तथा वह यथार्थ पर आधारित लौकिकता से परिपूर्ण था।

महत्व- पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप क्लासिकल विधाओं का पुनरुद्धार हुआ। ज्योतिष, गणित, चिकित्सा, साहित्य, कला, विज्ञान आदि का महत्व बढ़ा और इनका अध्ययन किया जाने लगा। इसके साथ-साथ मानवतावादी विचारधारा का उदय हुआ और चर्च के आत्मत्याग के सिद्धान्त का मखौल उड़ाया गया तथा भोगवादी व्यक्तिवाद को जन्म मिला। पुनर्जागरण के काल में दान्ते, पेट्रार्क जैसे विद्वान और लियोनार्डो, माइकेल एंजिलो और रेफेल जैसे चित्रकार एवं कलाकार हुये।

पुनर्जागरण का भाषा और साहित्य पर भी प्रभाव हुआ। यूरोप में अनेक साहित्यकार हुये जिन्होंने अन्धविश्वास, आडम्बरों और कुरीतियों का खुलकर खण्डन किया। इरास्मस, टॉमस मूर, विलियम शेक्सपियर आदि ऐसे ही साहित्यकार थे। प्रेस और छपाई मशीनों के आविष्कार से पुस्तकों का प्रकाशन होने लगा तथा विभिन्न तरह का ज्ञान सुलभ हो गया। विज्ञान और तर्क में कोपरनिकस, बेकन, गैलीलियो, कैपलर, वैसेलियस, विलियम हार्वे का बहुत योगदान था। इस सबका परिणाम यह हुआ कि पुनर्जागरण की लहर सम्पूर्ण यूरोप में व्याप्त हो गई और इन्हीं कारणों से धर्म-सुधार तथा प्रतिधर्म-सुधार आन्दोलन भी हुये।

प्रश्न–9. पुनर्जागरण से क्या अभिप्राय है? इसने यूरोप में कौनसे महत्वपूर्ण परिवर्तन किये?

अथवा

पुनर्जागरण कालीन कला एवं स्थापत्य की विवेचना कीजिये।

अथवा

'पुनर्जागरण' का यूरोप के समाज पर क्या प्रभाव पड़ा?

अथवा

पुनर्जागरणकालीन साहित्य, कला, धर्म और विज्ञान के विकास का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

अथवा

पुनर्जागरण के दौरान कला, साहित्य तथा वैज्ञानिक उन्नति का वर्णन कीजिये।

उत्तर– 'पुनर्जागरण' अथवा 'सांस्कृतिक पुनरोत्थान' भिन्न-भिन्न शब्द हैं परन्तु उनकी अभिव्यक्ति समान है। पुनर्जागरण का शाब्दिक अर्थ पुनः जागना है। इसी प्रकार पुनरोत्थान का शाब्दिक अर्थ पुनः उत्थान करना है अर्थात् प्राचीनकाल के समाज ने राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन मूल्यों का अथवा आदर्शों का निर्माण किया था। उनका विस्मरण मध्यकाल में हो गया तथा आधुनिक काल में ऐसी प्रेरक घटनायें घटीं जिन्होंने यूरोपीय समाज को झकझोरकर प्राचीन आदर्शों, मूल्यों को न केवल स्मरण कराया बल्कि समाज में नवीन आदर्शों को प्रस्थापित किया तथा विकास की प्रेरणा दी। अर्थात् अज्ञान से ज्ञान की ओर तथा अंधकार से प्रकाश की ओर चलने का निर्देश दिया। यही पुनर्जागरण, बौद्धिक जागरण या सांस्कृतिक पुनरोत्थान था।

लार्ड एक्टन के अनुसार, 'प्राचीन सभ्यता की पुनः खोज अथवा यूनानी साहित्य के पुनः अध्ययन एवं तज्जनित परिणामों को सांस्कृतिक पुनरोत्थान सूचित करता है।'

आरम्भ और कारण– एक्टन ने नवीन दुनिया की खोज (1492) से इसका आरम्भ माना है परन्तु अनेक इतिहासकारों ने 29 मई, 1453 को इसका आरम्भकाल माना है, क्योंकि इस दिन कुस्तुनतुनियां की पराजय से यहाँ के विद्वान् ग्रीकों का निष्कासन हुआ तथा वे यूरोप में जाकर अपनी ज्ञानवर्द्धक जानकारी विभिन्न देशों को प्रदान करने लगे।

पुनर्जागरण का प्रमुख कारण तो तुर्की द्वारा ग्रीकों की पराजय थी। द्वितीय कारण ग्रीक तथा रोमन साहित्य का प्रचार-प्रसार था। तृतीय कारण मुसलमानों के साथ तीन धर्म युद्धों का होना था। चतुर्थ कारण छापेखाने का आविष्कार था। पंचम कारण नवीन देशों की खोज, षष्ठम कारण सामन्तवाद का पतन, सप्तम कारण राष्ट्रीय राजतंत्रों का उदय और साम्राज्य वृद्धि की आकांक्षा और अन्तिम कारण मध्यवर्ग की आर्थिक उन्नति के प्रमुख कारण थे। इन्हीं कारणों से आधुनिक युग का निर्माण हुआ या मध्य तथा आधुनिक युग में विभाजक रेखा खिंची।

पुनर्जागरण के कारणों का सविस्तार वर्णन के लिये कृपया आधुनिक युग की विशेषताओं का अध्ययन करें।

पुनर्जागरण की विशेषतायें– 1453 से यूरोपीय देशों के समाजों में अनेक प्रकार से बौद्धिक और सांस्कृतिक उत्थान के चिन्ह देखने को मिलते हैं। संक्षेप में उनका वर्णन निम्नलिखित है–

1. **साहित्य–** यूरोप के देशों में अनेक विद्वान साहित्यकार उत्पन्न हुये। जिन्होंने काव्य, निबन्ध, नाटक, कहानी, चरित्र, इतिहास आदि का सृजन किया।

दाँते– इटली के विद्वानों में दाँते का नाम सुविख्यात था। वह फ्लोरेंस का रहने वाला महाकवि था। उसने 'डिवाइन कामेडी' नामक महाकाव्य की रचना इटालियन भाषा में की। एक तीर्थयात्रा के माध्यम से दाँते ने देशभक्ति, प्रकृति निरीक्षण, मानव प्रेम स्वतंत्रता के महत्व और आदर्शों की व्याख्या की है। दाँते का काल 1265 से 1321 था।

पेट्रार्क– 1304 से 1374 तक पेट्रार्क का काल था यह भी इटलीवासी था। पेट्रार्क सर्वाधिक विख्यात अपने 'मानवतावादी' विचारों के कारण था। उसने ग्रीक और रोमन साहित्य के महत्व को समझा और उनका इटली में पूरी शक्ति से प्रचार किया। पेट्रार्क लैटिन और अन्य देशी भाषाओं का कवि था तथा इटली के शासक लॉरेन्जों डिमेडिसी के संरक्षण में था।

पुनर्जागरण की विशेषतायें
1. साहित्य
2. कला
3. विज्ञान
4. धर्म-सुधार आन्दोलन का उदय

इटली के अन्य विद्वान– मानवता आन्दोलन के इटली के ही अन्य विद्वानों में वाकेशियो 'डैकोमेरोन' (पुस्तक) का लेखक था। माइकेल एंजिलो, लियोनार्डो विन्शी, एबर्टी, डोन्टेलो, बोट्टीसेली, फिसिनो, रोब्बिया बेरोचियो, पेरुजिनो आदि प्रमुख थे। इनमें से कुछ विद्वान जहाँ एक ओर साहित्यकार, कवि, लेखक थे तो दूसरी ओर स्थापत्य और चित्रकला के भी विशेषज्ञ थे। इनमें एंजिलो, एलबर्टी तथा विन्शी प्रमुख थे। विन्शी तो वैज्ञानिक भी था। मैकियावली की पुस्तक 'प्रिन्स' और 'दी आर्ट ऑफ वार' दोनों ही राजनीति विज्ञान की पुस्तकें थीं।

यूरोप के विद्वान– इटली के बाहर अन्य यूरोपीय देशों में भी अनेक साहित्यकार हुये जिन्होंने मध्यकालीन जनता और उनकी संस्थाओं को आधुनिक युग में प्रवेश करने की प्रेरणा दी।

इरास्मस (1479–1536)– 'दी फ्रेज ऑफ फुली' नामक पुस्तक का लेखक डेसीडेरियस इरास्मस हॉलैण्ड का रहने वाला था। इस में उसने व्यंग शैली के द्वारा ईसाई धर्म की कुरीतियों और पादरियों के दुराचारों की निन्दा की जिससे चर्च के पादरियों के खिलाफ अश्रद्धा और विरोध की भावना बढ़ी। उसका प्रभाव हॉलैण्ड के बाहर भी था। इंग्लैण्ड में तो उसे धर्म-सुधार का मार्गदर्शक कहा जाता था।

चौसर (1340–1400)– चौसर इंग्लैण्ड का अंग्रेजी भाषा का कवि था तथा इटली यात्रा से तथा बुकेशियों के ग्रन्थ से वह बहुत प्रभावित हुआ। उसने (चौसर) 'कैंटरबरी टेल्स' की रचना की। इसकी पुस्तक मध्य युग और आधुनिक युग को जोड़ने की कड़ी मानी जाती है।

सरवेन्टीज (1547–1616)– 'डान क्विसकोट' का स्पेनी लेखक सरवेन्टीज सामन्तीय व्यवस्था का उपहास उड़ाने वाला सर्वप्रसिद्ध लेखक था। उपरोक्त पुस्तक में 'शेखचिल्ली' की

कहानी के माध्यम से उसने व्यंग्यात्मक प्रहार कर सामन्तों के प्रति जन-आस्था तथा भाग्यवादिता को नष्ट कर डाला।

सर टॉमस मूर– मानवतावाद का प्रसिद्ध अंग्रेजी विद्वान और प्रचारक **सर टॉमस मूर** था। जिसने विश्वविख्यात 'यूटेपिया' नामक पुस्तक की रचना कर आदर्श राज्य की कल्पना की। यद्यपि यह पुस्तक अव्यावहारिक और प्लेटो की 'रिपब्लिक' का अनुकरण (नकल) मानी गई। परन्तु इसने राज्य को श्रेष्ठ और जन-कल्याणकारी बनाने की प्रेरणा दी।

इंग्लैण्ड के अन्य विख्यात साहित्यकार– जॉन फिशर, कार्डीनल बूल्जे, कालैट आदि मानवतावादी विचारक थे। महाकवि एडमन्ड स्पेन्सर और विलियम शेक्सपियर नाटककार भी थे। यद्यपि विषय-वस्तु प्राचीन परन्तु शैली बिल्कुल भिन्न थी, क्योंकि इन्होंने अपनी रचनाओं में मानव जीवन के महत्व और वैज्ञानिक विचारों का समन्वय किया था। इसके अतिरिक्त मार्लो और राबर्ट ग्रीन भी प्रसिद्ध कवि हुये। फ्रांसिस बेकन पुनर्जागरण काल का सर्वाधिक लोकप्रिय लेखक, दार्शनिक और राजनीतिज्ञ था।

फ्रांस के लेखक– फ्रांसिस रेबेल तथा **मोन्टेन** फ्रांस का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मानवतावादी था। वह व्यक्ति के महत्व और उसके प्राकृतिक प्रवृत्तियों का महान् समर्थक था। यह एक पादरी था। उसने पादरियों के दोषों और झूठे घमण्ड तथा प्रदर्शनों का विरोध किया। **मन्टैन** भी सुप्रसिद्ध निबन्धकार था।

2. **कला (स्थापत्य, चित्र और संगीत)**– पुनर्जागरण काल में ऐसे मूर्तिकार, चित्रकार हुये जिनकी तुलना आज तक किसी से नहीं की जा सकती है। कलाकारों को उदार संरक्षकों का संरक्षण भी प्राप्त हुआ। पोप निकोलस पंचम (1447), जूलियस द्वितीय (1503), पोपलियो दशम शिक्षा का प्रचार और प्रसार करने वाले थे। निकोलस ने तो वेटिकन चर्च में विख्यात पुस्तकालय और विद्यालय स्थापित किया। पुनर्जागरण काल में मध्ययुगीन समाज, धर्म और रूढ़ियों के प्रति जो असन्तोष उत्पन्न हुआ उसका सर्वाधिक रूप चित्र, मूर्ति और स्थापत्य कलाओं में मुखरित हुआ।

चित्रकला– इटली में चित्रकला का विकास अपनी चरम सीमा पर पहुँचा। रेफल लियोनार्डो-दी-विन्शी और माइकेल एंजिलो ने चित्रकला की नवीन प्रणालियों का विकास और प्रयोग किये। रोमन विचारधारा, दर्शन और आदर्शों को अपनी चित्रकला में अपनाया तथा इनका यथार्थ से संयोजन किया। वास्तुकला के सन्दर्भ में भी यही बात थी।

स्थापत्य– रोम की चाहे मूर्ति, भवन अथवा अन्य कोई भी वास्तुकला हो उन्होंने यूरोप में कई समूहों की समष्टि का रूप धारण किया। इसमें भी पर्याप्त मौलिकता एवं नवीनता भी थी। इटली के नगर फ्लोरेंस, रोम तथा वेनिस स्थापत्य अथवा चर्च, भवन, मूर्ति के केन्द्र थे। फ्लोरेंस का 'मेडिसी गिरजाघर' स्थापत्य कला का अद्भुत नमूना है। इसे प्राचीन प्रणाली से अलंकृत किया गया इसकी नकल पर रोम में इसी प्रकार की कला सर्वोच्च अवस्था में पहुँची। रोम का सेन्ट पीटर चर्च को ब्रेमनेट नामक कलाकार और इंजीनियर ने बनाया जो चरम उन्नति का प्रतीक बन गया। फ्रांस में भी चित्रकला और मूर्तिकला की उन्नति फ्रांसिस प्रथम (1515-1547) के काल में हुई। स्पेन में इस कला की उन्नति फिलिप द्वितीय के (1556-1548) काल में हुई।

लियोनार्डो-दी-विन्शी– लियोनार्डो अनेक विधाओं और प्रतिमाओं का स्वामी था। वह महानतम चित्रकार, भवन निर्माता, इंजीनियर, वैज्ञानिक, मूर्तिकार था। 'दी लास्ट सुपर' उसका विश्व में महानतम चित्र है। उसका दूसरा विश्वविख्यात चित्र 'मोनालिसा' का है। शायद इसके समान कोई चित्र और चित्र की आँखें और ओंठ कोई अभी तक तो नहीं बना पाया है। प्रत्येक दृष्टि से यह चित्र अद्वितीय, सुन्दर, सौम्य है। इसके अतिरिक्त विन्शी ने वृक्ष, फूल, लता आदि का भी सृजन किया है।

माइकेल एंजिलो– माइकेल एंजिलो इटली का चित्रकार, मूर्तिकार, इंजीनियर और भवन निर्माता था। इसने रोम में पोप के चर्च में और राजमहल में अत्यन्त सुन्दर चित्र बनाये। इनमें 145 चित्र अत्यन्त आकर्षक और अद्वितीय सुन्दर हैं।

राफेल– राफेल पर लियनार्डो और एंजिलो का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। फिर भी यह चित्रकारी में दोनों से भिन्न और मौलिक था। उपरोक्त दोनों के चित्रों में लम्बाई-चौड़ाई का अंकन है परन्तु गहराई का अंकन राफेल के ही चित्रों में देखने को मिला। इसका चित्र 'मेडोनास' और 'सिस्टाइन मेडोना' सबसे अधिक विख्यात हैं।

मूर्तिकला– भवन और चर्च निर्माण के साथ ही मूर्तिकला का भी जन्म हुआ। यूनानी और रोमन प्राचीन शैली के नवीन रूपों में प्रगट किया गया तथा इसका भी प्रमुख केन्द्र फ्लोरेन्स नगर था। लोरेन्जो लिबर्टी ने मूर्ति कला का प्रथम नेतृत्व किया। उसके पश्चात् अन्य मूर्तिकारों ने आदर्श मूर्तियों का निर्माण किया। डेन्टेलो, रोब्बिया, माइकेल एंजिलो सर्वाधिक महान् मूर्तिकार थे। फ्लोरेन्स और रोम के चर्च इनकी उत्कृष्ट मूर्तियों से शोभित हैं। जिनमें आदर्श और यथार्थता का मेल है। इसके बाद इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्पेन तथा जर्मनी में मूर्तिकला का विकास हुआ तथा शासकों ने भी मूर्तिकारों को प्रोत्साहन और संरक्षण दिया।

संगीत– 1453 के पश्चात् संगीत में भी नवीन प्रवृत्तियों और वाद्यों का जन्म हुआ तथा इटली ने संगीत के क्षेत्र में भी यूरोप का मार्गदर्शन किया। मध्यकालीन संगीत प्राचीन यूनानी, रोमन तथा यहूदी की संगीत शैली से प्रभावित हुआ और आधुनिक संगीत की नवीन धारा का उदय हुआ। इसके पश्चात् स्पेन, फ्रांस, इंग्लैण्ड तथा जर्मनी में भी इसका काफी विकास हुआ।

3. **विज्ञान**– यूरोपीय समाज को अंधकार से निकालने में और प्रकाश में लाने में विज्ञान की जितनी भूमिका है, उतनी और किसी की नहीं है। विज्ञान ने न केवल यूरोपीय समाज में परिवर्तन किये बल्कि उसका पुनर्निर्माण भी किया। विज्ञान ने समाज के चिंतन, व्यवहार, अर्थ, राजनीति, धर्म आदि को विस्तृत और व्यापक रूप में प्रभावित किया।

आविष्कार और वैज्ञानिकों का प्रभाव– गोला-बारूद के आविष्कार ने तत्कालीन युद्ध-प्रणाली में अनेक परिवर्तन किये और सामन्तवाद को समाप्त कर राष्ट्रीय राजतंत्रों को शक्तिशाली बनाया।

छापाखाना– छापेखाने के आविष्कार ने अनेक महान् लेखकों और वैज्ञानिकों तथा धर्म-सुधारकों के विचारों को जनता को उपलब्ध करवाया। बाईबिल जो केवल लैटिन जानने वालों की ही धरोहर थी और वह उसका दुरुपयोग करते थे। छापेखाने ने भारी मात्रा में उसकी स्थानीय भाषाओं में उपलब्धि जनता को करवा दी। छापेखाने के आविष्कार से ज्ञान के सभी

क्षेत्र विस्तृत और व्यापक बनने से स्वतंत्र चिंतन और वैज्ञानिक प्रवृत्ति की वृद्धि हुई जिससे समाज का प्रत्येक भाग प्रभावित हुआ।

ज्योतिष और गणित– ज्योतिष और गणित में सर्वाधिक प्रख्यात यूनानी विद्वान् पाइथागोरस के गणित का अध्ययन किया गया। पोलैण्ड के विद्वान कोपरनिकस ने 'आकाश के उपग्रहों से सम्बन्धित क्रान्ति' नामक पुस्तक लिखकर बताया कि पृथ्वी भी अन्य उपग्रहों की भाँति एक उपग्रह है जो सूर्य के चारों ओर घूमती है तथा वह अपनी कीली पर 24 घण्टे में एक चक्र पूरा करती है और एक वर्ष में सूर्य के चारों ओर घूमकर एक चक्र पूरा करती है। कोपरनिकस को इस आविष्कार के लिये अंधविश्वासी चर्च के अत्याचारों का सामना करना पड़ा। फिर भी इसने प्राचीन विद्वान टालेमी के विचारों का खण्डन किया जो पृथ्वी को केन्द्र और स्थिर मानता था। बाद में ग्रीवो ने भी 1550–1600 में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया परन्तु पोप ने उसे जिन्दा ही अग्नि से जलवाकर मार डाला।

सूचक यंत्र– जर्मन विद्वान कैपलर ने एक दिशासूचक यंत्र की खोज करके जलयानों के आवागमन को सरल बनाया। गैलीलियों ने 'दूरबीन' का आविष्कार करके दूर की वस्तुओं को देखना आसान कर दिया। गैलीलियो ने हवाई थर्मामीटर, पेन्डुलम घड़ी, बैरोमीटर, भौतिक तुला के भी आविष्कार किये। गिल्बर्ट ने चुम्बक का आविष्कार किया, स्टीफन ने द्रवों के दबाव का अध्ययन किया।

विन्शी और जीव–विज्ञान– इटली का लियोनार्डो–दी–विन्शी मानव शरीर की रचना का और मानव शरीर के अवयवों के परस्पर सम्बन्धों के जैविकीय ज्ञान का वैज्ञानिक था। उसने पशु–पक्षियों की शरीर रचना और उड़ान का गहरा अध्ययन कर उनके जीव–विज्ञान और मनोविज्ञान को प्रकट किया। उसने रेखागणित की पुस्तक लिखी और 'पम्पों' तथा 'खरादों' के चित्र उसके भौतिक विज्ञान को स्पष्ट करते हैं।

न्यूटन और बेसेलस– इंग्लैण्ड का वैज्ञानिक न्यूटन पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति, धातु विज्ञान, रसायनशास्त्र, चिकित्साशास्त्र तथा गति के सिद्धान्तों आदि विज्ञानों का दार्शनिक था। इसके साथ हार्वे अपने 'रक्तप्रवाह के सिद्धान्तों' के लिये और बेसेलस 'मानव शरीर की रचना' नामक पुस्तक के लिये प्रसिद्ध थे। इस प्रकार चिकित्सा, जीव अथवा मानव विज्ञान में इन्होंने अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन किये।

4. धर्म–सुधार आन्दोलन का उदय– सांस्कृतिक पुनर्जागरण और वैज्ञानिक विचारों ने प्राचीन और मध्यकालीन अंधविश्वासों, रूढ़ियों और स्वार्थी, विलासी पोप और विशपों तथा पादरियों की चालाकी का भण्डा– फोड़ कर यूरोपीय जनता में सत्य, व्यवहार और तर्क अथवा ज्ञान में सामंजस्य उत्पन्न किया तथा यूरोपीय जनता कैथोलिक चर्च की बुराइयों के प्रति न केवल सचेत हुई बल्कि मार्टिन लूथर तथा अनेक प्रोटेस्टेंट नेताओं के नेतृत्व में विरोध और संघर्ष के लिये भी तत्पर हो गई।

छापेखाने के आविष्कार और विभिन्न स्थानीय राष्ट्रीय भाषाओं के विकास ने दुर्लभ और केवल लैटिन में प्राप्त बाईबिल को हर भाषा में (फ्रेंच, जर्मन, इंग्लिश आदि) सुलभ करवा दिया जिससे जनता स्वयं यथार्थ को जानने में सक्षम हो गई। अन्त में कैथोलिक चर्च के कुछ पादरी भी पुनर्जागरण कालीन साहित्य और विज्ञान से प्रभावित और विवश हुये तथा उन्होंने

कैथोलिक चर्च में सुधार करना आरम्भ किये। जैसे पोप निकोलस पंचम, ज्यूलिस द्वितीय और लियो दशम आदि ने पुस्तकालय एवं धार्मिक विद्यालय और नवीन शिक्षा नीति अपनाई।

परिणाम (प्रभाव)– 'पुनर्जागरण' के परिणामस्वरूप यूरोप में वैचारिक और भौतिक रूप में अनेक परिवर्तनों का क्रम चला। राजनीतिक विचार और घटनाओं में सामन्तवाद की समाप्ति तथा राष्ट्रीय विचारधारा और राष्ट्रीय राजतंत्रों का उदय हुआ। उद्योग, व्यापार, साम्राज्य और उपनिवेश की वृद्धि हुई। सैनिक दृष्टि से संगठन, रणनीति और इस्लाम से संघर्ष का विकास हुआ। गोला–बारूद ने क्रान्ति ही कर दी।

छापेखाने के विकास ने शिक्षा, साहित्य और विज्ञान के साहित्य को विस्तृत पैमाने पर जनता को सुलभ करवाकर उसे यथार्थ आदर्श और व्यवहार में सामंजस्य की प्रेरणा दी। धर्म–सुधार के लिये जनता को जागृत किया। विज्ञान, जीवशास्त्र तथा कलाकारों ने मानव जीवन को सुरक्षित और अलंकृत किया। वहीं ज्योतिष और खगोल में अंधविश्वासों को तोड़कर नवीन सिद्धान्तों का जन्म हुआ। इस प्रकार पुनर्जागरण ने समाज के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक तथा भौतिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये और उसका विकास किया।

प्रश्न–10. सामंतीय व्यवस्था से क्या तात्पर्य है? इसका विघटन क्यों हुआ?

अथवा

सामंतीय व्यवस्था के कारणों का वर्णन कीजिये और यूरोप में मध्य युग की अन्तिम शताब्दी में मध्यवर्ग का उदय कैसे हुआ? सामन्तीय व्यवस्था के पतन में उनकी भूमिका स्पष्ट कीजिये।

अथवा

सामंतवाद से आप क्या समझते हैं? इसके क्या दोष थे?

अथवा

सामंतवाद के पतन के कारणों की व्याख्या कीजिये।

उत्तर– सामन्तीय व्यवस्था वह प्रणाली थी जिसके अन्तर्गत राजनीतिक शक्ति का प्रयोग अशासकीय व्यक्ति करते थे, न कि केन्द्रीयकृत राज्य के प्रधान अधिकारी। इस प्रणाली का उदय एकीकृत राजनीतिक व्यवस्था के विघटन के बाद से हुआ। यह व्यवस्था तब तक चली जब तक पुनः केन्द्रीयकृत व्यवस्था स्थापित नहीं हो गई। सामन्तीय व्यवस्था विश्व के विभिन्न देशों में स्थापित हुई। इस व्यवस्था के तीन प्रमुख आधार थे। प्रथम था व्यक्तिगत आधिपत्य, जिसमें कोई कुलीन अपने से अधिक कुलीन व्यक्ति को अपना स्वामी मान लेता था, द्वितीय था सम्पत्ति का आधार, जिसमें जागीर या भूसम्पदा स्वामी की ओर से उसके कर्त्तव्यों का पालन करने के लिये मिलती थी। तृतीय तत्व था शासकीय अर्थात् बड़ा सामन्त अपने अधीन सामन्तों तथा जागीरों के सम्बन्ध में शासकीय कार्यों का सम्पादन करता था। इन तीनों तत्वों की उपस्थिति रोमन विधान में थी।

सामन्तवाद के पतन के कारण

1. **सामंतों के आपसी संघर्ष–** सामन्त युद्धप्रिय होने के कारण अपनी शक्ति व सम्पत्ति के विस्तार के लिये निरन्तर संघर्षरत् रहते थे, इससे उनकी शक्ति का ह्रास होने लगा और उनकी लोकप्रियता में कमी आ गई। उनके युद्धों के कारण जनता को परेशानी

होती थी, जिससे उनकी लोकप्रियता में कमी आने लगी और उनकी आर्थिक दशा भी खराब हो गई। ऐसी कमजोर स्थिति में राजाओं ने उनकी शक्ति को समाप्त कर दिया।

2. **राष्ट्रीयता की भावना–** यूरोप में तेजी से शिक्षा का प्रसार हो रहा था, जिससे राष्ट्रीयता की भावना विकसित हुई जो सामंतों की विरोधी थी। इनमें परस्पर टकराव होने से सामंतवाद का पतन अवश्यम्भावी हो गया।
3. **शक्तिशाली राजतन्त्रों का उदय–** 15वीं शताब्दी तक नये–नये अस्त्र–शस्त्र व गोला–बारूद के निर्माण से यूरोपीय राजाओं की शक्ति में वृद्धि हुई और स्पेन, फ्रांस तथा इंग्लैण्ड में शक्तिशाली राजतन्त्रों का विकास हुआ। जनता भी राजाओं की पक्षपाती तथा राजतंत्र की समर्थक थी अतः सामन्तवाद की शक्ति शासकों के सामने दब गई।
4. **सैनिक–शक्ति का विकास–** प्राचीनकाल में राजा सामन्तों की सेना पर अधिक निर्भर रहते थे, किन्तु धीरे–धीरे स्थायी सेना का महत्व उन्होंने समझा। देश में विविध क्षेत्रों में प्रगति होने से तथा जनता की सहानुभूति व सहयोग प्राप्त होने से राजतन्त्र को स्थायित्व मिला। धीरे–धीरे यूरोपीय राजाओं ने स्थायी सेना के बल पर सामंतों की शक्ति का दमन कर दिया।
5. **बारूद का आविष्कार–** यूरोप में परिवर्तन के साथ ही बारूद का आविष्कार हुआ और इससे चलने वाली बन्दूकें व तोपें भी विकसित हुईं। ये साधन युद्ध के लिये तीव्र थे, किन्तु महंगे पड़ते थे। राजाओं ने इनकी सहायता से सामन्तों के दुर्भेध किलों पर आक्रमण कर कब्जा कर लिया।
6. **धर्म–युद्ध–** मध्यकाल में जेरुशलेम, नजारेल आदि धार्मिक स्थलों पर आधिपत्य की आकांक्षा से मुसलमानों व ईसाईयों के बीच रक्त–रंजित संघर्ष हुये, जिन्हें धर्म–युद्ध कहा गया है। पोप के आदेश पर सामंतों ने इनमें भाग लिया। धीरे–धीरे लड़कर वे स्वयं ही आर्थिक रूप से विपन्न हो गये और उनका प्रभुत्व समाप्त हो गया।
7. **छापेखाने का आविष्कार–** धर्म–युद्ध में आँखों के साथ सम्पर्क से यूरोप में छापेखाने का आविष्कार हुआ, जिससे नई–नई पुस्तकें व नये–नये विचार जनता के सामने प्रकट हुये। इससे अंधविश्वासों में न्यूनता आई और लोग सामन्तवाद की बुराईयों से अवगत होकर इसकी समाप्ति हेतु सक्रिय हो गये।
8. **रोमन सम्राटों का प्रयास–** पश्चिम यूरोप में एक हजार ईसवीं के लगभग पवित्र रोमन साम्राज्य की स्थापना हुई थी। ये सम्राट शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना करना चाहते थे, अतः उन्होंने सामंतों की शक्ति को बढ़ने से रोक दिया।
9. **उद्योग व व्यापारों की प्रगति–** यूरोप के देशों का एशिया व अफ्रीका से सम्पर्क होने से वहाँ तेजी से उद्योग व व्यापार की प्रगति हुई और नवीन व्यापारी–वर्ग का उदय हुआ जो सामंतों का विरोधी था। इस वर्ग के लोगों ने राजा को सहयोग देकर सामंतों की शक्ति के दमन में अहम् भूमिका अदा की।

10. **चर्च का प्रभाव–** यूरोप में चर्च तथा पोप का प्रभाव असीमित था, जिसका राजा भी सम्मान करते थे। पोप ने सामंतों को आदेश दिया कि वे जनता पर अत्याचार न करें और उन्होंने विभिन्न तरीकों से उनकी शक्ति को सीमित कर दिया।
11. **मध्यम–वर्ग का उदय–** उद्योग–धन्धे, व्यापार, शिक्षा तथा सांस्कृतिक प्रगति के कारण यूरोप में एक शक्तिशाली मध्यम–वर्ग का उदय हुआ। ये मध्यम–वर्ग के लोग अपनी प्रगति के लिये शांति चाहते थे, जबकि सामन्त युद्धप्रिय थे अतः राजा को सहयोग देकर इन्होंने सामन्तों की शक्ति को दबा दिया।
12. **कृषक असंतोष–** सामन्तीय व्यवस्था में किसानों को बहुत अधिक असुविधा थी और सामन्त उन्हें निरन्तर बर्बाद कर रहे थे। ऐसे समय में किसानों ने फ्रांस व इंग्लैण्ड में भयंकर विद्रोह किये जो सामन्तवाद की अन्त्येष्टि सिद्ध हुये।
13. **नये नगरों की स्थापना–** उद्योग–धन्धों की प्रगति के कारण यूरोप में नये–नये नगरों की स्थापना हो गई, जहाँ चारों ओर से व्यापारी व शिक्षित वर्ग के लोग आते थे। इनके विचारों के आदान–प्रदान से ज्ञान–विज्ञान की प्रगति हुई। किसान तथा मजदूर भी अब शहरों में आकर बसने लगे, जिससे आधुनिकता का विकास हुआ तथा इस वर्ग का सामन्तों से संघर्ष होने लगा। इस संघर्ष से सामन्तों की शक्ति कम होती गई।

वास्तविक रूप से सामन्तवादी पद्धति की स्थापना अस्थायी काल के लिये हुई थी। जिन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु इसकी स्थापना की गई थी, उनकी प्राप्ति के बाद इसका कोई औचित्य नहीं रह गया था। सामन्तों की युद्ध–प्रवृत्ति व भ्रष्टाचारी आदतों के कारण विभिन्न वर्गों का असन्तोष इतना तीव्र हो गया कि उन्होंने राजा का साथ देकर इनका नाश कर दिया।

मध्यम–वर्ग और सामन्तीय पतन– सामन्तीय व्यवस्था के पतन में मध्यम–वर्ग ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। धर्मयुद्धों ने व्यापार को बहुत प्रोत्साहन दिया। इससे व्यापारी धनी होने लगे और सामन्तों को धन उधार देने लगे। इस कारण उन्हें सामन्तों की ओर से अनेक सुविधायें मिलने लगीं। धीरे–धीरे सामन्तीय दुर्गों और किसानों की झोंपड़ियों के मध्य व्यापार केन्द्र विकसित हुये। इन्हें मध्यम–वर्ग के व्यापारी चलाते थे। व्यापार और उद्योगों के विकास के लिये उन्हें पूर्ण शान्ति, सुरक्षित मार्ग और सुसंगठित शासन की आवश्यकता थी। सामन्त विलासिता, परस्पर संघर्षों और विकृत आर्थिक दशा के कारण ऐसी व्यवस्था देने में पूर्ण रूपेण असफल सिद्ध हुये। अतः राजा ने सामन्तों का दमन कर अपनी शक्ति को बढ़ाने का प्रयत्न किया तो मध्यम–वर्ग ने राजाओं को पूरी तरह मदद दी। इस कारण एक ओर तो राष्ट्रीय राजतन्त्रों का उदय हुआ और दूसरी ओर सामन्तीय व्यवस्था का पतन भी हुआ।

प्रश्न–11. धर्म सुधार आन्दोलन क्या है? इसके परिणामों की विवेचना कीजिये।

अथवा

धर्म–सुधार आन्दोलन का क्या अभिप्राय है? इसके आरम्भ होने के कारण बताइये।

अथवा

धर्म–सुधार आन्दोलन से आप क्या समझते हैं? उसके कारणों और प्रभावों की विवेचना कीजिये।

अथवा

यूरोप में धर्म–सुधार आन्दोलन के क्या कारण थे? उसके प्रभावों का उल्लेख कीजिये।

अथवा

जर्मनी में धर्म–सुधार आन्दोलन के लिये उत्तरदायी परिस्थितियों की विवेचना कीजिये।

अथवा

मार्टिन लूथर के जीवन–चरित्र का वर्णन कीजिये तथा जर्मनी के धर्म–सुधार आन्दोलन में उनके योगदान का वर्णन (या मूल्यांकन) कीजिये।

अथवा

चर्च की आय के साधनों पर प्रकाश डालिये।

उत्तर– चौथी शताब्दि में कॉन्सटेन्टाईन ने चर्च की स्थापना की थी। परन्तु ईसाई विश्व में यही मान्यता है कि स्वयं ईसा मसीह ने कैथोलिक चर्च की स्थापना की है और सेन्ट पॉल को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। कैथोलिक चर्च आरम्भ में पोप और विशप तथा पादरी अत्यन्त चरित्रवान्, सेवाभावी, कर्त्तव्यनिष्ठ, त्यागी, संयमी, ईमानदार तथा आदर्श चरित्र के थे अतः चर्च का यूरोप में विस्तृत क्षेत्र बना और वह सर्वस्पर्शी, सर्वव्यापक, सर्वकल्याणकारी तथा यूरोपीय समाज में आदरणीय तथा श्रृद्धास्पद बना।

परन्तु कालान्तर में चर्च में भ्रष्टचार, विलासिता, कर्त्तव्यों की उपेक्षा, राजनीति, भेदभाव, धन का अधिक महत्व और अन्याय और अत्याचार बढ़ गये। इस प्रकार सामान्य जनता में कैथोलिक चर्च के प्रति अश्रृद्धा एवं विरोध की भावना पैदा हुई। इसी भावना से कैथोलिक सुधार की माँग उत्पन्न हुई।

धर्म–सुधार आन्दोलन से अभिप्राय– धर्म–सुधार आन्दोलन कैथोलिक चर्च की बुराइयों के खिलाफ एक प्रतिक्रिया और पुनः चर्च के आदर्श तथा नैतिक मूल्यों की प्रस्थापना के लिये एक जन–आन्दोलन था। राबर्ट इटगेंग ने इसके अभिप्राय के सम्बन्ध में लिखा है कि, 'प्रोटेस्टेंट धर्म–सुधार आन्दोलन एक जटिल और दूरगामी आन्दोलन था। पुनर्जागरण की भाँति वह भी मध्यकालीन सभ्यता के विरुद्ध सामान्य प्रतिक्रिया थी। लेकिन उसने राष्ट्रों के जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया, क्योंकि मनुष्य कला और साहित्य की अपेक्षा धर्म में अधिक रुचि रखते थे। इसने मध्ययुगीन कैथोलिक धर्म के ऊपर प्राचीन ईसाई धर्म की शिक्षा का प्रतिपादन किया और ईसा, पॉल तथा ऑगस्टाईन के उद्देश्यों पर बल दिया तथा आधुनिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया।'

गीजो के शब्दों में धर्म–सुधार आन्दोलन 'मानव–मस्तिष्क का चर्च की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध एक विद्रोह था।' **शेविल** के अनुसार, 'यह दोहरा आन्दोलन था जिसका उद्देश्य एक ओर तो ईसाइयों के जीवन का उत्थान करना था और दूसरी ओर पोप की सत्ता को कम करना था।' **एच.एल. फिशर** धर्म–सुधार आन्दोलन को 'चर्च के धर्म राज्य, पादरियों के विशेषाधिकार और अनेक जातियों के रूढ़िवादी एवं संकुचित दृष्टि के विरुद्ध एक आन्दोलन था।'

अनेक परिभाषाओं की समीक्षा करने पर धर्म–सुधार आन्दोलन के दो पक्ष महत्वपूर्ण थे। प्रथम पक्ष, विध्वंसात्मक अर्थात् चर्च की संकीर्णता, अन्याय, घमण्ड, अधिनायकवाद तथा विशेषाधिकारों के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया थी और द्वितीय पक्ष, रचनात्मक था। वास्तव में जनता चर्च के विरुद्ध नहीं थी। वह उसके दोषों की विरोधी थी और उसके प्राचीन आदर्श और मूल्यों को स्थापित करना चाहती थी।

धर्म–सुधार आन्दोलन के कारण– प्राचीन कैथोलिक चर्च अपनी आदर्श एवं महानता को छोड़कर सोलहवीं शताब्दि तक उसमें कर्त्तव्य विमुखता, विलासिता, स्वार्थ, भ्रष्टचार और निरंकुशता का संचार हुआ जिसका सभी दिशाओं में विरोध हुआ जिसके अनेक कारण थे–

1. कैथोलिक चर्च के प्रति घृणा– कैथोलिक चर्च की निरंकुशता ने उसे अन्यायी बना दिया था और अब वह मानव के सुख–दुःख तथा नैतिक जीवन में मार्गदर्शक नहीं रहा था। वह खुद ही सामान्य सांसारिक वासनाओं और दोषों से परिपूर्ण था। कैथोलिक चर्च के पोप को नियुक्त करने वाले एक कार्डीनल ने लिखा कि, 'चर्च के दोषों ने हमारे विरुद्ध जनमानस में घृणा पैदा कर दी है। यदि उसमें सुधार नहीं होगा तो जनता पादरियों पर आक्रमण करेगी। जनता यह भी कहेगी कि पादरी सुधारों के इच्छुक नहीं हैं।' किन्तु इस कार्डीनल के परामर्श को प्रतिक्रियावादी पोप ने नहीं सुना। अतः इसके खिलाफ आन्दोलन उत्पन्न हुआ और तीव्र हुआ।

जर्मनी में मार्टिन लूथर, इंग्लैण्ड में जॉन वायालिफ, बोहेमिया में जॉन हस ने इसका नेतृत्व किया तथा इन पर पोप ने भयंकर अत्याचार किये और जॉन हस को 1415 ई. में जिन्दा जला दिया। इससे चर्च के विरुद्ध घृणा और अधिक बढ़ गई।

धर्म–सुधार आन्दोलन के कारण

1. कैथोलिक चर्च के प्रति घृणा
2. पुनर्जागरण का प्रभाव
3. आर्थिक कारण
4. विज्ञान और तर्क का प्रभाव
5. राजनीतिक कारण
6. चर्च में फूट
7. मानवतावाद की भावना
8. 'पाप मोचन पत्रों' का विक्रय

2. पुनर्जागरण का प्रभाव– कैथोलिक चर्च की निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता पर प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभाव पुनर्जागरण का पड़ा। इरास्मस की पुस्तक 'मूर्खता की प्रशंसा', टॉमस मूर की यूटेपिया, मार्टिन लूथर की जर्मन भाषा में बाईबिल आदि अनेक विद्वानों तथा उनके विभिन्न प्रकार के सामाजिक, धार्मिक और वैज्ञानिक साहित्य तथा अनुसंधानों ने अनपढ़ और अंधविश्वासी जनता के सम्मुख सत्य तथा उसे व्यवहार में मूर्तरूप देकर यह प्रमाणित किया कि प्राचीन और मध्यकाल में पोप और पादरी झूठ बोलकर तथा जनता को मूर्ख बनाकर अपने स्वार्थों और वासनाओं की पूर्ति करने में लगे थे। इससे असन्तोष उत्पन्न होना स्वभाविक ही था।

3. आर्थिक कारण– कैथोलिक चर्च के पास स्वयं की तथा राज्य की भूमि बहुत थी। दूसरी ओर कृषि क्रान्ति और फिर औद्योगिक क्रान्ति का आरम्भ हुआ तो उद्योग और व्यापार के लिये भूमि की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। श्रमिक, किसान और मध्यमवर्गीय व्यापारी आर्थिक कार्यों में सक्रिय और राष्ट्रीय आय की वृद्धि करने में तथा कैथोलिक पादरी जो सामन्त बन चुके थे, राजाओं के खिलाफ मध्यकालीन सामन्तों का सहयोग कर रहे थे। निरंकुश राजाओं को मध्यम–वर्ग ने इनकी जमीन छीनकर उन्हें दिलवाने को कहा। मध्यम–वर्ग, सामन्तों के आक्रमणों, विद्रोहों और संकटकाल में राजाओं को धन से और श्रमिक तथा किसान सैनिक मदद कर रहे थे। अतः चर्च की सम्पत्ति कैथोलिकों से छीनी जाने लगी।

चर्च को आर्थिक रूप से कमजोर करने के लिये राजाओं ने इसलिये भी निश्चय किया कि उनके विशप, पादरी आदि अपनी भूमि से वैध और अवैध आय प्राप्त कर अत्यन्त विलासी और निरंकुश हो गये थे। धन का उपयोग वह फिजूलखर्ची में और सुधारवादियों पर हिंसक आक्रमण करने में तथा राजाओं के खिलाफ कैथोलिक जनता को विद्रोह करने के लिये

प्रोत्साहित करने में करते थे। चर्च को धार्मिक कार्य के लिये केवल आय का दसवाँ भाग कर के रूप में ही लेने का अधिकार था परन्तु वह 'पियर्स पेन्स', लगान आदि कर लेते थे। 'पाप-मोचन पत्रों' की बिक्री से भी उन्हें अत्यधिक आय थी। अतः जनता निरंकुश राजाओं और व्यापारियों की दृष्टि उनके धन पर जमी थी।

1. विज्ञान और तर्क का प्रभाव– मध्यकाल के पश्चात् ग्रीक अथवा रोमन विद्वानों ने जैसे अपने साहित्य से यूरोपीय समाज को प्रभावित किया वैसे ही समाजशास्त्रियों ने और वैज्ञानिकों ने अपने तर्कों से समाज को नाना प्रकार की प्रामाणिक जानकारी प्रदान करके अपने रूढ़िगत विचारों को बदलने के लिये विवश कर दिया। जहाँ उन्होंने एक ओर चर्च आदि के द्वारा प्रचारित भ्रम तथा झूठ को या अज्ञान को दूर किया वहीं उनमें ज्ञान की ज्योति जलाई जिसमें सत्य और झूठ स्पष्ट दिखाई देने लगे। वैज्ञानिक आविष्कारों ने भी इस दिशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

5. राजनीतिक कारण– कैथोलिक चर्च ने यूरोप की राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक एकता स्थापित की थी परन्तु उसी ने मध्यकाल में अनेक ऐसे कार्य किये जिनसे यह एकतायें समाप्त हो गई। इन कार्यों में (i) सामन्तों के अत्याचारों में जनता के खिलाफ सहयोग देना, (ii) अपना धन और ऐश्वर्य बढ़ाकर जनता का शोषण करना और उनकी उपेक्षा करना, (iii) राष्ट्रीय राज्यों के खिलाफ विद्रोहों को प्रोत्साहन देना, (iv) सुधारवादियों का दमन करना आदि प्रमुख थे।

योग्य और बुद्धिमान राजाओं ने अपनी सार्वभौम सत्ता को स्थापित करने के लिये और सामन्तों के दमन के लिये राजनीतिक कूटनीति का प्रयोग किया। उन्होंने सुधारवादियों को इसलिये सहयोग दिया कि जिससे वह कैथोलिक चर्च के साथ कैथोलिक राजाओं को भी जीत सकें। निरंकुश राजाओं को सर्वाधिक क्रोध तब आता था जब पोप यूरोप के किसी 'सम्राट' को 'पवित्र रोमन सम्राट' बना देता था। यह पद द्वेष, संघर्ष का कारण बनता था। यह कभी फ्रांस को, कभी आस्ट्रिया को दिया गया। अतः पद का छिनना और मिलना अन्य राजाओं के लिये युद्ध को प्रोत्साहन देता था।

दूसरा राजनीतिक कारण था कि पोप कभी-कभी राजाओं को धार्मिक रूप से दण्ड दिया करते थे जिसमें उनके व्यक्तिगत क्रोध, गर्व, भेदभाव आदि अनैतिकतायें होती थीं। अतः राजा पोप की इस शक्ति को समाप्त करना चाहते थे। इंग्लैण्ड के सम्राट हेनरी को पोप ग्रेगॉरी के सम्मुख सर्दी में नंगे पैर जाना पड़ा था। वैज्ञानिक ग्रीवों को पोप ने जिन्दा ही आग में जलवा दिया था। राजकुमार और राजकुमारियों को राजनैतिक स्वार्थों के आधार पर पोप विवाह की अनुमति या अस्वीकृति देता था। अतः धर्म-सुधार आन्दोलन पूर्णरूपेण धार्मिक नहीं राजनीतिक भी था।

6. चर्च में फूट– पन्द्रहवीं शताब्दि में अत्याचारी और तानाशाह पोप की मृत्यु के बाद 1338 में पोप के चुनाव के प्रश्न पर विवाद खड़ा हो गया। इटालियन दल ने अर्बन षष्ठम को पोप बनाया और फ्रेंच दल ने क्लीमेंट सप्तम को पोप घोषित किया। इन मतभेदों को दूर करने के लिये 1417 में मार्टिन को पोप बनाया गया तथा कैथोलिक चर्च को पुनर्गठित करने का प्रयास किया। यद्यपि पोप की नियुक्ति का प्रश्न सुलझ गया परन्तु मतभेदों का स्वर

कैथोलिक चर्च के विरोध में मुखरित हुआ। पोप को नियुक्त करने वाले कुछ कार्डीनल भी अनुभव करते थे कि कैथोलिक चर्च में क्रान्तिकारी सुधारों की आवश्यकता थी।

7. मानवतावाद की भावना– कैथोलिक चर्च का उद्देश्य 'मानवतावाद' बताया गया। जिसमें मानव सुख, मानव के जीवन मूल्य की सुरक्षा तथा मानव का मानव द्वारा शोषण के विरोध पर बल दिया गया। सहिष्णुता, स्वतंत्रता, नैतिकता और जन-कल्याण तथा सेवा के आदर्शों का प्रचार किया गया। इन विचारों ने व्यापक रूप से यूरोप की जनता को प्रभावित किया।

8. 'पाप-मोचन-पत्रों' का विक्रय– पोपों की विलासिता और फिजूलखर्ची प्रवृत्ति के कारण वैध-अवैध आय कम पड़ने लगी अतः पोप ने धन कमाने का नया तरीका ढूंढा। उसने 'पाप-मोचन-पत्रों' का विक्रय करना आरम्भ किया। यह पत्र श्रद्धा, प्रायश्चित् और विश्वास के आधार पर दिये जाते थे। परन्तु अब धन से इसे खरीदा जा सकता था।

मार्टिन लूथर ने इसका विरोध किया। सन् 1517 में पोप का एक प्रतिनिधि टेंटजेल खुलेआम, जर्मनी के ब्रिटेनवर्ग नगर में इनका विक्रय करने आया। इसके विरोध में सर्वप्रथम मार्टिन लूथर ने 95 निबन्ध लिखकर चर्च के द्वार पर लगाये। यहीं से कैथोलिक चर्च के विरोध का शंखनाद हुआ और सुधार की माँग तथा संघर्ष बढ़ने लगे।

मार्टिन लूथर और धर्म-सुधार– यद्यपि जनता तथा विचारशील नागरिकों में कैथोलिक चर्च के प्रति अश्रद्धा और घृणा उत्पन्न हो रही थी और वह चर्च के कार्यों से निराश थे। इसी अश्रद्धा और निराशा का प्रतिनिधित्व मार्टिन लूथर ने किया।

कैथोलिक चर्च में विश्वास– लूथर 1519 तक कैथोलिक चर्च का विरोधी नहीं था, बल्कि उसमें चर्च के प्रति आस्था थी और वह चर्च को समाप्त भी नहीं करना चाहता था और न कोई नया चर्च ही स्थापित करना चाहता था।

टेंटजेल का विरोध– मार्टिन लूथर ब्रिटेनवर्ग में धर्मशास्त्र का आचार्य और पादरी था। इसी नगर में सन् 1517 में पोप का प्रतिनिधि टेंटजेल 'पाप मोचन पत्रों' का विक्रय करने पहुँचा। टेंटजेल के शब्दों में, 'क्षमा-पत्रों के लिये दिये गये सिक्कों की खनक गूंजती है तो उस' आदमी की आत्मा जिसके लिये धन दिया जाता है, सीधे स्वर्ग में प्रवेश कर जाती है।' टेंटजेल के ये शब्द लूथर के विचारों के विपरीत ही नहीं ईसा मसीह के सिद्धान्तों की हत्या करने वाले थे। इसके द्वारा वह अन्धविश्वास फैला रहा था और झूठ भी बोल रहा था। इसके विरोध में 31 अक्टूबर, 1517 को 19 लघु निबन्ध लिखकर ब्रिटेनवर्ग चर्च के दरवाजे पर लगा दिये। जिनका आशय था, 'प्रायश्चित् कर लेने से ईश्वर क्षमा करता है, न कि क्षमा-पत्रों से और न धन से प्रसन्न होता है।' उसने पोप को कैथोलिक चर्च के दोषों को दूर करने के लिये लिखा। इसके पश्चात् लूथर की चर्च सुधार की सभी प्रार्थनाओं को पोप आदि ने ठुकरा दिया। अतः धर्म-सुधार की मांग और संघर्ष निरन्तर बढ़ता गया। परन्तु पवित्र रोमन सम्राट चार्ल्स ने और पोप ने धर्म सभा में उसकी चुनौती स्वीकार न करके उसे नास्तिक घोषित तथा चर्च से बहिष्कृत किया और क्षमा-पत्रों के विक्रय को उचित बताया और उसकी हत्या करने का प्रयास किया। तब सेक्सनी के राजा ने उसे सुरक्षा प्रदान की।

परिणाम– इसके पश्चात् कैथोलिक चर्च ने और अधिक दमन किया। जिसके परिणामस्वरूप अनेक प्रोटेस्टेंट चर्च स्थापित हुये। यूरोप में हिंसक संघर्ष हुये और प्रति धर्म–सुधार आन्दोलन भी चलाया गया। इस धर्म–सुधार आन्दोलन का प्रभाव इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस आदि सभी देशों पर हुआ और कहीं–कहीं राष्ट्रीय चर्च स्थापित हुये। इसी के कारण तीस वर्षीय युद्ध हुआ तथा अनेक संधि और संगठन बने। इसके परिणामस्वरूप अनेक धर्म–सुधारकों का उदय हुआ।

प्रश्न–12. धर्म–सुधार के सम्बन्ध में लूथर के विचार, संघर्ष और सफलता की समीक्षा कीजिये।

अथवा

जर्मनी में धर्म–सुधार आन्दोलन के विकास और उसके यूरोप पर प्रभाव का विवेचन कीजिये।

अथवा

जर्मनी में धर्म सुधार आन्दोलन की विवेचना कीजिये।

उत्तर– धर्म–सुधार आन्दोलन की उत्पत्ति यूरोप में पुनर्जागरण और चर्च धर्माधिकारियों के भ्रष्ट और अनैतिक आचरण के परिणामस्वरूप हुई। जिसमें वैज्ञानिक अनुसंधान, मानवतावाद, राजनीतिक, आर्थिक और तात्कालिक कारण भी इसके प्रेरक तत्वों में हैं। इनसे जनता के अंधविश्वासों में कमी आई तथा यथार्थ, व्यवहार और तर्क के सामंजस्य का प्रादुर्भाव हुआ। यही धर्म–सुधार आन्दोलन की आधारभूमि थी।

जर्मनी में आरम्भ होना– चर्च में विलासी तथा भ्रष्ट पोपों और पादरियों की आलोचना चौदहवीं शताब्दि से ही आरम्भ हो चुकी थी। एक अंग्रेज कैथोलिक पादरी जॉन वाईक्लिफ ने सर्वप्रथम इसका आरम्भ किया। इसके पश्चात् बोहेमिया में जॉन हस ने चर्च की आलोचना की परन्तु विरोध को यह संगठित, उग्र और आन्दोलन का रूप प्रदान करने में यह असफल रहे।

कैथोलिक भ्रष्टाचार के विरुद्ध प्रतिक्रिया जर्मनी के ब्रिटेनवर्ग से आरम्भ हुई जो शीघ्र ही एक उग्र आन्दोलन में बदल गई। इसके कुछ प्रमुख कारण थे। सर्वप्रथम जर्मनी में राजनीतिक परिस्थिति लूथर के अनुकूल थी अर्थात् जर्मनी अनेक लघु भागों में विभाजित था और यह अत्यन्त निर्बल संघ में बंधे हुये थे। जर्मन सम्राट धर्म–सुधार आन्दोलन को दबाने के लिये संघ की अनुमति के बिना सेना नहीं जुटा सकता था और न करों में वृद्धि ही कर सकता था। आस्ट्रिया का सम्राट जर्मन संघ का प्रधान था जिसका फ्रांस से युद्ध चल रहा था। यह दोनों ही देश कैथोलिक थे और आस्ट्रियन सम्राट चार्ल्स पंचम पवित्र रोमन सम्राट था। जर्मनी के कुछ राज्य लूथर का समर्थन और सहयोग कर रहे थे। अनेक सच्चरित्र पादरी भी चर्च से असन्तुष्ट थे। अतः इन परिस्थितियों में लूथर द्वारा आरम्भ किया गया आन्दोलन सरलता से जर्मनी में नहीं दबाया जा सका। शेविल ने जर्मनी की राजनीतिक अवस्था के सम्बन्ध में लिखा कि, 'जर्मनी नाममात्र के लिये ही साम्राज्य था। वास्तव में वह छोटे–छोटे राज्यों का एक संघात्मक संघ था जो पोप के हस्तक्षेप के विरोधी थे।'

मार्टिन लूथर और धर्म–सुधार– मार्टिन लूथर का जन्म 10 नवम्बर, 1483 को हुआ। लूथर सेक्सनी के आईबेन नामक ग्राम में एक किसान के घर पैदा हुआ था। माध्यमिक शिक्षा के बाद उसने एरफर्ट विश्वविद्यालय से कानून और धर्म की शिक्षा प्राप्त की तथा 1505 में वह ऑगस्टिन सम्प्रदाय का पादरी बना। इसके पश्चात् ब्रिटेनवर्ग के विश्वविद्यालय में

धर्मशास्त्र का प्राध्यापक बना। यहाँ उसने बाईबिल का गम्भीर अध्ययन किया। इसी काल में इस अध्ययन के परिणामस्वरूप उसे चर्च के दोष दिखाई देने लगे। मार्टिन अत्यन्त गम्भीर और उत्कृष्ट वक्ता और तर्कशास्त्री था। उसके ज्ञान, चरित्र और ईमानदारी ने उसे सामान्य जनता में अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया। 1511 में उसने रोम की यात्रा कर उसे 'शहीदों के लहू से पवित्र भूमि' बताया और उसे बारम्बार प्रणाम किया। परन्तु 1521 में रोम में पोप के भ्रष्टाचारों ने उसमें घृणा भी पैदा की तभी से वह कैथोलिक सुधार की भूमिका बनाने लगा।

क्षमा–पत्रों के विक्रय का विरोध– टेंटजेल पोप का प्रतिनिधि था और वह पोप के द्वारा निर्गमित क्षमा–पत्रों को बेचने के लिये जर्मनी ब्रिटेनवर्ग में आया जहाँ मार्टिन प्राध्यापक था। टेंटजेल ने क्षमा–पत्रों के विज्ञापन में कहा कि 'क्षमा–पत्रों के लिये दिये गये सिक्कों की जब खनक गूंजती है तो उस आदमी की आत्मा सीधे स्वर्ग में प्रवेश कर जाती है जिसकी शान्ति के लिये धन दिया जाता है।' यह विज्ञापन पूर्णरूप से उस सिद्धान्त का विरोधी था और स्वार्थ तथा धन पर आधारित था जिसका प्रचार मार्टिन लूथर कर रहा था। मार्टिन का विचार था कि, 'प्रायश्चित कर लेने से ही ईश्वर क्षमा करता है, न कि क्षमा–पत्रों से या धन से वह प्रसन्न होता है।' इस प्रकार टेंटजेल के विरोध में मार्टिन ने ब्रिटेनवर्ग के चर्च के द्वार पर 95 संक्षिप्त निबन्ध लगा दिये तथा पोप को बुराइयों से दूर करने पर जोर दिया परन्तु उसकी माँग को किसी ने नहीं सुना।

पोप और लूथर में विवाद– लूथर के विचार बाईबिल के मूल सिद्धान्तों और पूर्ण नैतिकता पर आधारित थे। क्षमा–पत्रों का जब ब्रिटेनवर्ग में उसने विरोध किया तो उसका जनता पर अत्यधिक प्रभाव हुआ। दीर्घकाल से असन्तुष्ट जनता ने चर्च के प्रति विरोध की भावना को लूथर के साथ उग्र रूप में प्रकट किया। परिणामस्वरूप टेंटजेल को क्षमा–पत्रों के विक्रय को बन्द कर भागना पड़ा।

पोप ने क्षमा–पत्रों के विक्रय को उचित बताया और इसके औचित्य को समझाने के लिये एक पोप भक्त और धर्मशास्त्री डॉ. जॉन को लूथर के पास भेजा। लूथर ने स्पष्ट रूप से इस आशय का विचार व्यक्त किया कि, बाईबिल के मूल विचार सत्य हैं परन्तु पोप और उसकी साधारण सभा भी भूलें कर सकती हैं अतः दोनों को मूल बाईबिल का अध्ययन करना चाहिये था। डॉ. जॉन अपने प्रयत्न में असफल रहा। इसके पश्चात् मार्टिन लूथर ने तीन पुस्तकों की रचनायें कीं– (i) एन एड्रेस टूरी नोवेलिटि ऑफ दी जर्मन नेशन (जर्मन कुलीनों को संदेश), (ii) ऑन दी लिबर्टी ऑफ दी क्रिश्चियन मेन (एक ईसाई की स्वतंत्रता), (iii) ऑन दी बेबीलोनिश केप्टीविटी ऑफ दी चर्च (ईश्वरीय चर्च की कैद)।

इन तीनों पुस्तकों में उसने बाईबिल के आधार पर पोप के भ्रष्टाचार तथा अनैतिक आचरण का भण्डा–फोड़ कर इसका विकल्प प्रस्तुत किया तथा कैथोलिक धर्म में सुधार पर बल दिया। वास्तव में लूथर कैथोलिक चर्च या पोप के पद का विरोधी नहीं था वह तो उन दोषों का विरोधी था जिनके कारण चर्च और पोप जनता में घृणा के पात्र बन रहे थे तथा बदनाम हो रहे थे। जिनसे चर्च के टुकड़े–टुकड़े होने का संकट उत्पन्न हो गया था। परन्तु अयोग्य पोप को मार्टिन लूथर शत्रु दिखाई दे रहा था अतः उसने लूथर को कैथोलिक चर्च से ही बहिष्कृत कर दिया। यहीं से मार्टिन लूथर पोपशाही का घोर शत्रु बना। उसने पोप के

'बहिष्कार आदेश' को ब्रिटेन के बाजार में खुले रूप में जलाया। इससे पोप की प्रतिष्ठा को भारी आघात पहुँचा। पोप के लिये उसके आदेश की इस प्रकार अवज्ञा अकल्पनीय थी। कैथोलिक चर्च और पोप के विरुद्ध यह घटना संघर्ष का 'शंखनाद' थी।

वर्म्स की सभा– स्पेन का सम्राट चार्ल्स पंचम 1519 में पवित्र रोमन सम्राट, पोप के द्वारा बनाया गया। चार्ल्स ने पोप और लूथर में समझौता करवाने के लिये 1520 में एक धार्मिक सभा का आयोजन किया। इसमें लूथर को भी आमंत्रित किया। इस धर्मसभा में लूथर ने स्पष्ट रूप से कहा कि, 'तर्क और बाईबिल द्वारा मेरे तथ्यों को असत्य सिद्ध कर दिया जाये तो मैं अपनी सभी बातों को वापस ले सकता हूँ, अन्यथा नहीं। मेरी अन्तरात्मा ईश्वरीय शक्ति के आधीन है और न यह उचित और सही होगा कि उस शक्ति के विरुद्ध कार्य किया जाये।'

इस धर्म सभा में किसी ने भी लूथर के विचारों को बाईबिल के तर्कों से नहीं काटा। बल्कि पहले से ही लूथर को अपराधी मानते हुये पोप ने चार्ल्स पंचम पर लूथर के विद्रोह का दमन करने के लिये दबाव डाला और चार्ल्स पंचम ने भी उसकी बात और तर्कों पर ध्यान दिये बिना उसे अपने आन्दोलन और तर्कों को वापस लेने के लिये आदेश दिया परन्तु ऐसा नहीं किया गया अतः पोप और चार्ल्स पंचम ने लूथर की पुस्तकों को अवैध घोषित कर उसे भी 'नास्तिक' कहा गया। इसके साथ ही चार्ल्स पंचम के साम्राज्य में उसकी सुरक्षा को वापस ले लिया। इस कारण उसकी कभी भी हत्या कर दिये जाने का खतरा उत्पन्न हो गया। अतः सेक्सनी के राजकुमार फ्रेडरिक ने उसकी रक्षा की। अपने यहाँ एक दुर्ग में लम्बे काल तक सुरक्षित रखा। यहीं से उसने धर्म-सुधार आन्दोलन का संचालन किया तथा जर्मन भाषा में बाईबिल का अनुवाद कर प्रत्येक नागरिक को मूल बाईबिल के विचारों को स्वयं पढ़ने के लिये उपलब्ध करवा दिया। मार्टिन का यह कदम अत्यन्त क्रान्तिकारी था। इससे कैथोलिक चर्च के भ्रष्टाचार, निरंकुशता तथा झूठ का भण्डा-फोड़ हो गया तथा सभी दिशाओं में पोप का विरोध होने लगा।

नूरेम्बर्ग की सभा (1522)– न्यूरेम्बर्ग की सभा को 1522 में बुलाया गया। उस समय सम्राट चार्ल्स पंचम इटली तथा अन्य देशों के साथ उलझा हुआ था। इस समय डाईट कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहती थी जिससे कैथोलिकों के खिलाफ संघर्ष बढ़े अतः उसने लूथर के विरुद्ध कोई आक्रामक कार्य करने के लिये चार्ल्स को मना कर दिया और पोप को भी बता दिया कि कार्यवाही की दशा में जर्मनी में गृह-युद्ध आरम्भ हो जायेगा।

न्यूरेम्बर्ग की सभा तो असफल रही और जर्मनी में कैथोलिक चर्च के ऊपर जनता के आक्रमण होने लगे और कुछ चर्चों में जर्मन भाषा तथा लूथर के विचारों के अनुसार पूजा-पाठ होने लगे। पोप की राजनैतिक तथा धार्मिक सत्ता को अस्वीकार कर दिया गया। हेज ने लूथर के द्वारा आरम्भ किये आन्दोलन की लोकप्रियता के विषय में लिखा है कि, '1517 में क्षमा-पत्रों के विरोध में लूथर द्वारा प्रस्तुत किये गये 95 आकाट्य तर्कों ने जर्मनी में पोप और उसके कैथोलिक धर्म के विरुद्ध देशव्यापी विरोध उत्पन्न किया और प्रोटेस्टेंट चर्च की स्थापना को सुगम बनाया।'

स्पीयर की सभायें और प्रोटेस्टेंट चर्च का उदय– जर्मनी साम्राज्य संसद की सभा 1526 में और 1529 में स्पीयर में आयोजित की गई। प्रथम सभा में तो कोई निर्णय नहीं हो पाया

परन्तु दूसरी सभा ने प्रस्ताव पारित कर दिया कि वर्म्स की सभा के निर्णयों को कड़ाई से लागू किया जाये। लूथर, सेक्सनी के राजा फ्रेडरिक और हेस के राजा फिलिप ने इस सभा के निर्णयों का विरोध किया। इसी विरोध के कारण उन्हें प्रोटेस्टेंट (विरोधी) कहा जाने लगा। इन्होंने रोमन सम्राट और डाईट पर नवीन यथार्थपूर्ण विचारों पर रोक लगाने का आरोप लगाया। जब इसका कोई प्रभाव पोप पर नहीं हुआ तो उन्होंने पोप की प्रभुसत्ता को ही चुनौती देना आरम्भ कर दिया और समझौते के सारे प्रयत्न विफल हो गये। इस प्रकार चर्च और पोप के सभी विरोधियों को 'प्रोटेस्टेंट' नाम दिया गया।

संशोधित सिद्धान्त– सन् 1530 में मेलाक्थन के समझौते के सारे प्रयत्न जब विफल हो गये तो उसने 'संशोधित सिद्धान्त' नाम से एक पुस्तक लिखी। जिसके आधार पर बाद में प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय की नींव पड़ी और सिद्धान्तों का निर्माण हुआ।

गृह-युद्ध का आरम्भ– पवित्र रोमन सम्राट ने प्रोटेस्टेंटों को नष्ट करने तथा उन्हें नियंत्रित करने में असफल प्रयत्न किये। कैथोलिक दमन और अत्याचारों के बढ़ने से प्रोटेस्टेंटों में भी संगठन और संघर्ष की भावना उत्पन्न हुई अतः 1531 श्यामल कोडेन में प्रोटेस्टेंट शासकों ने एक संघ बनाया। इस समय चार्ल्स (रोमन सम्राट) का ध्यान टर्की के विस्तार पर था। अतः वह प्रोटेस्टेंट संघ को दबा नहीं सका अतः 1546 में उसने दमननीति को स्थगित कर दिया। इस बीच प्रोटेस्टेंट शक्ति अधिक बढ़ गई और जब चार्ल्स दमन के लिये बढ़ा तो 1546 से 1555 के मध्य गृह-युद्ध छिड़ गया।

ऑग्सबर्ग संधि (1855)– मार्टिन लूथर की 1546 में मृत्यु हो गई। परन्तु इससे प्रोटेस्टेंट संघर्ष रुका नहीं। इसी समय चार्ल्स पंचम ने अपना आस्ट्रिया और जर्मनी का साम्राज्य अपने भाई फर्डीनेण्ड को दे दिया। फर्डीनेण्ड ने समझौते की नीति अपनाई अतः 1855 में ऑग्सबर्ग में प्रोटेस्टेंट और कैथोलिकों ने संधि कर ली। इसके अनुसार–

1. जर्मनी के शासक अपना सम्प्रदाय चुनने में स्वतंत्र होंगे।
2. 1552 के पूर्व प्रोटेस्टेंटों ने जिस कैथोलिक सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया था उस पर उनका अधिकार बना रहेगा।
3. कैथोलिक क्षेत्र में रहने वाले प्रोटेस्टेंटों का किसी भी प्रकार से उत्पीड़न नहीं किया जायेगा।
4. जो कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट बनेंगे, वह समस्त कैथोलिक विशेषाधिकारों से वंचित होंगे।
5. लूथर के अतिरिक्त अन्य प्रोटेस्टेंट पन्थ या उसके किसी अन्य रूप को स्वीकार नहीं किया जायेगा।

प्रभाव और परिणाम– जर्मनी में धर्म-सुधार आन्दोलन न केवल एक आन्दोलन था बल्कि उसने कैथोलिक प्रतिक्रिया के खिलाफ उग्र संगठनात्मक रूप भी धारण किया। जर्मनी धर्म-सुधार आन्दोलन के प्रमुख परिणामों और प्रभावों का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है–

1. **प्रति-धर्म सुधार आन्दोलन का आरम्भ**– आरम्भ में पोप भले ही निरंकुश बने रहे परन्तु इस आन्दोलन ने उनके दोषों और झूठ का भण्डा-फोड़ कर दिया। पोप पायस चतुर्थ, क्लीमेन्ट पंचम, पॉल तृतीय और ग्रेगोरी अष्टम को कैथोलिक चर्च में सुधार करने के लिये बाध्य होना पड़ा।

2. **कृषक विद्रोह–** दक्षिण पूर्वी जर्मनी में 1524–25 में किसानों ने इस आन्दोलन का लाभ उठाकर अनेक माँगें करना आरम्भ कर दिया, जैसे अन्यायपूर्ण भूमि–व्यवस्था का अन्त, धार्मिक गुलामी का अन्त, सामन्ती कर और विशेषाधिकारों का अन्त। इन सबका परिणाम कैथोलिकों के अस्तित्व को चुनौती देना था और जब कैथोलिक हिंसक हुये तो किसानों ने भी अनेक विद्रोह किये।
3. **प्रोटेस्टेंट चर्चों की स्थापना–** बर्म्स, स्पीयर आदि के समझौते और दमन के प्रयास विफल हो गये तथा न केवल जर्मनी बल्कि जर्मनी के बाहर भी प्रोटेस्टेंट चर्चों की स्थापना हुई और यह प्रतिक्रिया सम्पूर्ण यूरोप में व्याप्त हो गई। स्विट्जरलैण्ड, फ्रांस, इंग्लैण्ड में कैथोलिक चर्च बने।
4. **कैथोलिकों के द्वारा दमन की असफलता–** जर्मनी में गृह–युद्ध में कैथोलिक असफल हुये और उन्हें ऑग्सवर्ग की संधि करना पड़ी। जिसमें उन्होंने 1552 के पूर्व की सम्पत्ति पर प्रोटेस्टेंट अधिकार स्वीकार करना पड़ा तथा लूथरवादी चर्च को मान्यता प्रदान कर दी जिससे धर्म का निर्धारण करने का अधिकार राजाओं को मिल गया।
5. **तीस–वर्षीय युद्ध–** ऑग्सवर्ग संधि की शान्ति स्थायी नहीं रही। संघर्ष पुनः आरम्भ हो गये जो 1618 से 1648 तक चलते रहे। फिर भी प्रोटेस्टेंट चर्च नष्ट नहीं किये जा सके तथा यूरोप भी कैथोलिक और प्रोस्टेंट में बंट गया।
6. **धार्मिक एकता और पोप की प्रभुसत्ता का ह्रास–** कैथोलिक प्रोटेस्टेंट संघर्षों के कारण यूरोप में चर्च की एकता नष्ट हो गई जिसका दायित्व पोपों पर था। इससे पोप और कैथोलिक चर्च के प्रभाव, शक्ति, विश्वास, श्रद्धा, क्षेत्र विस्तार आदि में भारी गिरावट आई।
7. **शिक्षा और साहित्य पर प्रभाव–** जैसे पुनर्जागरणकालीन साहित्य ने युग परिवर्तन किया। उसी प्रकार कैथोलिक चर्च और पोप विरोधी साहित्य का सृजन हुआ। जिसमें स्थानीय भाषाओं का विकास हुआ। धर्म की भाषा केवल लैटिन थी किन्तु अब बाईबिल का अनेक भाषाओं में अनुवाद तथा स्थानीय चर्चों में उन्हीं की भाषा में धार्मिक साहित्य मिलने लगा। इससे सामाजिक, आर्थिक, जीवन में परिवर्तन हुये और धर्म–सुधार के साथ विज्ञान का भी प्रचार हुआ।
8. **राजनीतिक प्रभाव–** धर्म–सुधार के समर्थकों में अनेक राजा भी थे। यूरोपीय राजतंत्रों में विभिन्न प्रकार के मतभेद थे। कुछ कारणों से एक ही पंथ के राजा परस्पर मनमुटाव रखते थे। जैसे फ्रांस के सम्राट और रोमन सम्राट दोनों ही कैथोलिक थे। परन्तु साम्राज्य विस्तार व्यापार, प्रतिष्ठा, सैन्य शक्ति तथा सीमा विवादों के कारण संघर्षशील थे। अनेक छोटे राजा पोप से मुक्ति प्राप्त करना चाहते थे। कुछ राजाओं ने तो प्रोटेस्टेंटों का साथ केवल इसलिये दिया कि कैथोलिक राजा से संघर्ष हो और उस पर विजय प्राप्त करे तथा उनकी सम्पत्ति पर अधिकार किया जा सके।

पोप विलासी और चरित्रहीन थे। उन्होंने भी सत्य, यथार्थ, चर्च की पवित्रता का ध्यान न रखकर राजनीतिक निर्णय किये तथा लूथर को अपनी प्रभुसत्ता के लिये चुनौती माना। अतः कैथोलिक–कैथोलिक एवं कैथोलिक–प्रोटेस्टेंटों में संघर्ष अनिवार्य हो गये।

सारांश– कैथोलिक चर्च के पोप एवं अधिकांश पादरियों ने अपनी विलासिता, शक्ति की आकांक्षा और निरंकुशता को प्राप्त करने के लिये भ्रष्ट आचरण से धन कमाना आरम्भ किया। इसी क्रम में टेंटजेल ने ब्रिटेनवर्ग में क्षमा–पत्रों का विक्रय किया जिसका लूथर ने विरोध किया। लूथर का विरोध केवल चर्च के दोषों को दूर करने तक ही सीमित था। परन्तु पोप की निरंकुशता ने उसे कैथोलिक चर्च का प्रतिद्वन्दी बना दिया। बर्म्स और स्पीयर की सभायें असफल हो गईं तथा कैथोलिक चर्च हिंसक हो गया अतः प्रोटेस्टेंटों ने अपने संगठन बनाये और संघर्ष किये। जिसका अन्त ऑग्सवर्ग सन्धि में लूथरवादी चर्च को मान्यता देकर हुआ। परन्तु धर्म–सुधार की प्रक्रिया इंग्लैण्ड, स्विट्जरलैण्ड, फ्रांस, हॉलैण्ड आदि देशों में भी हुई और यूरोप में 30 वर्षीय युद्ध हुआ। धर्म–सुधार के कारण यूरोप के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा और कैथोलिक की शक्ति और प्रभाव में अत्यधिक ह्रास हुआ।

प्रश्न–13. प्रतिधर्म–सुधार आन्दोलन के बारे में आप क्या समझते हैं? इसकी सफलता के कारणों की व्याख्या कीजिये।

अथवा

'प्रतिधर्म–सुधार' आन्दोलन क्या था? उसके महत्व एवं परिणामों का वर्णन कीजिये।

अथवा

'प्रतिधर्म–सुधार आन्दोलन' पर एक निबन्ध लिखिये।

अथवा

यूरोप में कैथोलिक धर्म–सुधार (प्रतिधर्म सुधार आन्दोलन) की सफलता के कारणों का परीक्षण कीजिये।

उत्तर– प्रतिधर्म–सुधार या कैथोलिक धर्म–सुधार आन्दोलन– धर्म–सुधार आन्दोलन के कारण कैथोलिक पोप और पादरियों के अनैतिक, भ्रष्ट, स्वार्थ और वैभवपूर्ण प्रदर्शन आदि की आलोचना और विरोध सम्पूर्ण यूरोप में होने लगा। पहले तो पोप आदि ने इसका सशस्त्र दमन करने का प्रयत्न किया परन्तु वे असफल रहे तथा इन्हें कैथोलिक चर्च के ही समाप्त होने का भय लगा। अतः उसकी रक्षा के लिये उसने उपाय आरम्भ किये, क्योंकि यह आन्दोलन प्रतिक्रिया की प्रतिक्रिया थी अतः इसे 'प्रतिधर्म–सुधार आन्दोलन' कहा जाता है। इसी को कैथोलिक सुधार आन्दोलन भी कहा जाता है।

कारण– कैथोलिक चर्च के नवीन पोप और कुछ पादरियों ने कैथोलिक चर्च में सुधार करने के कार्य निम्नलिखित कारणों से किये–

(1) कैथोलिक प्रभाव का पतन– चर्च के पादरियों के भ्रष्टाचार और प्रोटेस्टेंट आन्दोलन के कारण कैथोलिक जनता से प्रभाव और शक्ति में बहुत कमी आ गई। कैथोलिक चर्च की सशस्त्र सेनाओं के दमन के कारण भी वे अधिक बदनाम हुये तथा प्रोटेस्टेंटों ने भी उनका सशस्त्र मुकाबला किया, इससे उसको भारी हानि उठाना पड़ी। अब अपने अन्दर सुधार करके ही उसकी रक्षा की जा सकती थी।

(2) उदार पोप का आगमन– इन्नोसेण्ट सप्तम् अलेक्जेन्डर षष्ठम्, जूलियस द्वितीय और लियो दशम 1492 से 1521 तक निरन्तर पोप बने जो भ्रष्ट और अनैतिक तथा अत्याचारी थे। अतः इनके समय में चर्च की दशा बहुत बिगड़ गई। परन्तु इनके बाद योग्य, उदार, विद्वान पोप बने जिनमें एण्डियन षष्ठम्, क्लीमेण्ट सप्तम्, पाल तृतीय, पोप पायस चतुर्थ, पायस पंचम, ग्रेगॉरी अष्टम आदि प्रमुख थे। इनके कारण सुधार युग का आरम्भ हुआ तथा चर्च के भ्रष्टाचारो और अनैतिकताओं को रोका गया।

कैथोलिक धर्म-सुधार आन्दोलन
(1) कैथोलिक प्रभाव का पतन
(2) उदार पोप का आगमन
(3) प्रोटेस्टेंटों में शिथिलता
(4) धार्मिक न्यायालय

(3) प्रोटेस्टेंटों में शिथिलता– यूरोप के अनेक राजाओं और उनकी जनता ने प्रोटेस्टेंटों पन्थ अपना लिये थे, इनमें भी अनेक संस्थायें या पन्थ बन गये। इस कारण उनमें राजनैतिक, धार्मिक सिद्धान्तों तथा व्यवहार की एकता नहीं रही। इससे प्रोटेस्टेंट आन्दोलन में शिथिलता आ गई तथा कैथोलिकों को सुधार करने का अवसर मिल गया। कैथोलिक सुधार के प्रयत्न जनता की विश्वास पाने के लिये और अपनी शक्ति तथा प्रभाव को बढ़ाने के लिये किये गये।

(i) ट्रेंटकौंसिल– जर्मनी के ट्रेंट नगर में धर्म सभाओं का आयोजन किया गया तथा कैथोलिक चर्च, बाईबिल के सिद्धान्तों एवं आदर्शों पर गम्भीर मंथन हुआ, उसके प्रचार-प्रसार के साथ चर्चा के संगठन, समरूप प्रणाली और आदर्श जीवन-प्रणाली को लागू किया गया।

(ii) जेसुइट संघ– इस संघ की स्थापना इग्नेशियस लाथोला ने की थी। यह रोमन सम्राट चार्ल्स पंचम की सेना का एक सेनापति था। इसने अपने संघ के निम्नलिखित उद्देश्य बताये–

(अ) कैथोलिक चर्च की सेवा (ब) सदाचारी जीवन (स) पोप में निष्ठा और उसकी आज्ञापालन (द) प्रोटेस्टेंटो का विरोध (इ) कैथोलिक पन्थ का प्रचार।

जेसुइट संघ एक प्रकार की धार्मिक सेना थी उसका अनुशासन, कवायद, आक्रमण आदि सभी सैनिक तरीके से ही चलते थे। इसके प्रयत्नों से इटली, पुर्तगाल, स्पेन, हेनरी और बेल्जियम से प्रोटेस्टेंट पन्थ समूल नष्ट हो गये। दक्षिण जर्मनी, फ्रांस और नादिरलैण्ड में कैथोलिक चर्च पुनः स्थापित हो गये तथा अनेक देशों में कैथोलिक प्रचारक भेजे गये। पोप ने भी इस संघ को मान्यता प्रदान कर दी थी।

(4) धार्मिक न्यायालय– पोप पाल तृतीय ने 1542 में रोम में एक धार्मिक न्यायालय की स्थापना की। फिर अनेक देशों में धार्मिक न्यायालय स्थापित किये गये। इन्हीं चर्च विरोधी नागरिकों को दण्डित करने, उनकी सम्पत्ति जब्त करने, नास्तिक, निर्वासित करवाने तथा मृत्युदण्ड दिलवाने के अधिकार दिये गये। इस प्रकार पोलैण्ड, इटली, स्पेन और हॉलैण्ड आदि में चर्च विरोधियों का दमन किया गया।

प्रतिधर्म–सुधार (कैथोलिक धर्म–सुधार) के प्रभाव– कैथोलिक चर्च के पोप और राजा बहुत कम मात्रा में ही उदार बने। वास्तव में कोई भी अपने प्रभाव और महत्व को खोना नहीं चाहते थे। अतः उन्होंने एक ओर तो दमन तथा दूसरी ओर आंशिक सुधार के कार्यक्रम अपनाये जिसके कारण निम्नलिखित प्रभाव हुये–

(1) ईसाइयों का विभाजन (2) तीस वर्षीय युद्ध
(3) राष्ट्रीय राजतंत्रों का उदय (4) शिक्षा-नैतिकता और विज्ञान का विकास
(5) सामाजिक आर्थिक परिणाम (6) लोकतंत्र का विकास

निष्कर्ष– प्रतिधर्म-सुधार आन्दोलन 'प्रतिक्रिया के खिलाफ एक प्रतिक्रिया' थी। परन्तु उसका प्रमुख उद्देश्य कैथोलिक चर्च में सुधार करना, उसकी शक्ति और प्रभाव को समाप्त होने से रोकना और प्रोटेस्टेंटों के प्रभाव को कम करना था। इसमें उदारवादी पोपों की महत्वपूर्ण भूमिकायें थीं। इसके लिये उन्होंने ट्रेंट कौंसिल, जेसुइट संघ और धार्मिक न्यायालय आदि का आश्रय लिया।

प्रश्न–14. यूरोप में निरंकुश सत्ता के उदय के प्रमुख कारणों को समझाइये।

अथवा

'राजाओं की निरंकुश सत्ता की आकांक्षा ने राष्ट्रीय राज्य की स्थापना को बल दिया।' यह कथन कहां तक सत्य है?

अथवा

'निरंकुश सत्ता की उत्पत्ति सामंतीय पतन और मध्यम–वर्ग के कारण हुई।' समीक्षा कीजिये।

अथवा

स्पेन में राष्ट्रीय राजतंत्र की स्थापना का वर्णन कीजिये।

अथवा

फ्रांस में निरंकुश राजतंत्र की स्थापना का वर्णन कीजिये।

उत्तर– पुनर्जागरण काल तक यूरोप में और विशेषकर इंग्लैंड में सामंतीय शक्ति का वर्चस्व था। मूल रूप से सामन्तों को तीन प्रमुख स्थितियाँ थीं– (1) सामन्त सेवक और राजा स्वामी होता था और स्वामी का आधिपत्य सेवक पर होता है। (2) स्वामी अपने सेवक को अपनी आज्ञा और कर्तव्य-पालन के लिये सम्पत्ति प्रदान करता था। सामन्त को अश्व और सैनिकों से राजा मदद करता था। यही जागीर कहलाती थी और (3) राजा इन सामन्तों की मदद से अपने राज्य-क्षेत्र में शासन करता था।

कालान्तर में सामन्तों की इन स्थितियों में परिवर्तन हो गये। राजा की अयोग्यता, विलासिता, अदूरदर्शिता और अपनी शक्ति और अधिकारों के प्रति जागरूता के अभाव के कारण सामंत अधिक शक्तिशाली, अधिकार और सम्पत्ति-सम्पन्न हो गये। उनमें स्वेच्छाचारिता बढ़ गई। राजा को नियुक्त करना और पद्च्युत करना इनका खेल बन गया। राज्य की आय और सम्पत्ति पर परोक्ष रूप से यह अपना अधिकार समझने लगे। राजा स्वामी से दास बन गया और इनकी कृपा पर निर्भर हो गया। सामंतवाद की यह चरम सीमा थी।

इस चरम सीमा के बाद सामंतवाद के पतन का और निरंकुश राजसत्ता के उदय के काल का आरम्भ हुआ। इस उदय को प्रोत्साहन देने वाले प्रमुख कारण निम्नलिखित थे–

(1) सामंतीय फूट– सामंतों में अधिक सम्पत्ति, अधिकार, पद के कारण एक ओर इनमें वस्तुओं के प्रदर्शन की भावना जागृत हुई, वहीं इनमें विलासिता और चरित्रहीनता उत्पन्न हो गई। इनकी प्रतिभायें, प्रशासनिक कुशलता और कर्तव्यनिष्ठा समाप्त हो गयी। इससे भी खराब बात यह हुई कि राज्य, राजा पर अधिकार रखने के लिये इनमें प्रतियोगी संघर्ष होने लगे। इन

सामंतों में ऊँच–नीच, बड़े–छोटे के भेद उत्पन्न हो गये परिणामस्वरूप इनमें परस्पर भयंकर संघर्ष होने लगे जिसमें इनकी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षति बहुत अधिक हुई और इनकी शक्ति का ह्रास होने लगा। धर्म युद्धों में भी अनेक सामंत पोप के पक्ष में और अनेक पोप के विरुद्ध लड़े। इस प्रकार इनकी सैनिक और आर्थिक शक्ति का विनाश हुआ तथा बुद्धिमान, राजनीति कुशल राजाओं ने सामंतों की इस फूट का भरपूर लाभ उठाया।

(2) **राजाओं की अनिश्चित दशा–** सामंतों के परस्पर संघर्षों और राजा पर अपना–अपना अधिकार करने की प्रतियोगिता में राजा की दशा बहुत खराब हो गई। राजा किस सामंत का साथ दे अथवा किसका मार्गदर्शन ले या किसकी शक्ति अधिक है? यह निर्णय करना अथवा किसी का पक्ष लेना या न लेना, तलवार की धार पर चलना था। उसके सन्मुख कुये या खाई में गिरने की दुर्दशा थी। राजाओं ने इस स्थिति से निकलने के लिये और अपनी राज–सत्ता को बचाने के लिये सामन्तों को परस्पर लड़ाकर उनकी शक्ति और समर्थन को क्षीण करने का मार्ग अपनाया तथा अपने समर्थन के लिये मध्यम–वर्ग का समर्थन जुटाया।

(3) **राजाओं को धन की आवश्यकता–** राजा बाहरी आक्रमण, युद्ध और विद्रोह के समय सामन्तों से सैनिक और धन प्राप्त करते थे। अब राजाओं ने अपने विचार बदले। इसके दो प्रमुख कारण थे–

1. सामन्तों के पास सैनिक और धन समाप्त होने से वे असमर्थ होते जा रहे थे। उनसे धन आदि लेने से उनकी आज्ञाओं को मानने का दबाव स्वीकार करना पड़ता अतः
2. उन्होंने मध्यमवर्गीय व्यापारियों से कर्ज लेकर अपनी धन की आवश्यकता और अपने आज्ञाकारी सैनिकों की व्यवस्था कर सामन्तों को पराजित किया। इससे राज्य की सुरक्षा के साथ–साथ विदेशी आक्रमणों से जनता की रक्षा भी हुई। इस तरह जनता का विशाल समर्थन राजाओं को मिला।

(4) **मध्यमवर्गीय जनता और व्यापारियों का सहयोग–** राजाओं को राज्य संचालन के लिये, युद्धों के लिये और विद्रोह दमन के लिये धन की तथा आज्ञाकारी बुद्धिमान व्यक्तियों की आवश्यकता थी। इसके लिये उन्होंने निश्चय किया कि आर्थिक सहायता वह सामन्तों से नहीं लेंगे बल्कि मध्यमवर्गीय व्यापारियों और उद्योगपतियों से लेंगे। इसके लिये राजाओं ने इन व्यापारियों को सुविधायें, व्यापार के अधिकार आदि देना प्रारम्भ किया। मध्यमवर्गीय बुद्धिमान व्यक्तियों को सरकारी पद सौंपे तथा उन्हें वेतन प्रदान किये। राजाओं ने सामन्तों से किसी प्रकार की सैनिक सहायता लेना बन्द कर अपनी सेनाओं का निर्माण किया। राज्य के कार्यों में भी सामन्तों का सहयोग न लेकर उन्हें महत्वहीन बनाया। अपने सैनिकों की भर्ती उन्होंने सीधे जनता में से की। सामन्तों को अनेक नियम बनाकर तथा प्रतिबन्ध लगाकर कमजोर बनाया गया। इससे राजाओं को मध्यम–वर्ग और जनता का विशाल, शक्तिशाली और सक्रिय समर्थन मिला तथा वह अत्याचारी सामन्तों के विरुद्ध राजा के साथ हो गये। इस प्रक्रिया से मध्यम–वर्ग का महत्व एवं दायित्व भी बढ़ा जिससे यह वर्ग सम्मानित हुआ।

(5) **सामन्तों के अत्याचार–** सामन्तों की शक्ति चरम सीमा पर पहुंच चुकी थी तथा वे अपनी विलासिता, झूठी शान और भव्य प्रदर्शन के लिये सामान्य और मध्यम जनता पर अत्याचार करने लगे थे। आपसी फूट में भी वह जनता से बलात् धन की वसूली और सैनिक

भर्ती करते थे तथा जनता से बेगार लेते थे। कृषि–क्रान्ति के बाद अनेक किसानों को उनकी भूमि से बेदखल कर दिया गया था। इसस सामन्त बदनाम हुये तथा उनके अत्याचारों से पीड़ित जनता राजाओं का साथ देने के लिये तैयार हो गई तथा सामन्तों से बदला लेने के लिये उसने राजाओं को बौद्धिक, आर्थिक और सैनिक सहयोग दिया।

(6) **महामारी का प्रभाव–** सन् 1348 में यूरोप में महामारी फैली। इसमें हजारों किसान और श्रमिक मारे गये। इस नरसंहार का आर्थिक प्रभाव यह हुआ कि श्रमिक और किसानों की संख्या घटने से उनकी मोलभाव की क्षमता बढ़ गई तथा सामन्तों को सस्ते किसान और मजदूर मिलना कठिन हो गया। धर्म युद्धों और कृषि–उत्पादन की वृद्धि ने भी किसानों को शक्ति प्रदान की तथा वे सामन्ती नियंत्रण से मुक्त होने लगे।

महामारी के समय किसानों और मजदूरों के आर्थिक शोषण, शारीरिक कष्टों और अमानवीय अत्याचारों को करने में सामन्त पीछे नहीं थे, जबकि राजाओं ने इनके प्रति उदार रुख अपनाकर उन्हें (जनता) अपने पक्ष में किया।

(7) **बारूद पर राजाओं का अधिकार–** नये युग के आगमन में बारूद से संचालित होने वाले शस्त्र जैसे– तोप, बन्दूक आदि के आविष्कार हुये। इनका निर्माण कार्य अधिक मँहगा था। इनको व्यवस्थित रखना भी खर्चीला था। अतः सामन्त इनका सीमित रूप से ही प्रयोग कर पाते थे। सामन्तों के आपसी संघर्षों के समय राजाओं को यह अवसर मिला कि मध्यम–वर्ग से धन लेकर उन्होंने बारूद से संचालित शस्त्रों का निर्माण करवाया और इनके निर्माण तथा क्रय–विक्रय पर राज्य का एकाधिकार स्थापित किया। इसके लिये कानून भी बनाये गये। इससे राजाओं की निरंकुश शक्ति में वृद्धि हुई और सामन्तों का पतन हुआ।

(8) **चर्च की शक्ति के पतन से निरंकुश राजाओं का उदय–** दीर्घकालिक धार्मिक युद्धों के बाद पुनर्जागरण का आरम्भ हुआ। अभी तक स्वार्थी और सत्ता–मद में चूर पोप और विशप बाईबिल और ईसा के नाम पर जनता पर धार्मिक अत्याचार करवाते आये थे तथा जनता से अनुमति तथा भ्रष्ट तरीकों से भारी धन की वसूली करते थे। इसमें सामन्तों और इन पर निर्भर शासकों ने भी पोप और विशपों का साथ दिया किन्तु पोप से असन्तुष्ट राजाओं ने राजनैतिक, आर्थिक कारणों से तथा परस्पर की राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के कारण लूथर तथा प्रोटेस्टेण्टों का साथ दिया और कैथोलिकों की शक्ति को बहुत कम कर दिया। यहां भी राजाओं में फूट और द्वेष था। जनता भी पोप समर्थकों से नाराज थी अतः वह पोप विरोधी बन चुकी थी। पुनर्जागरण ने धार्मिक अत्याचारों, धर्मान्धता, चरित्रहीनता, धर्म के दुरुपयोग को रोकने की और मानवता की रक्षा की भावना का जागरण किया। इससे पोप और स्वेच्छाचारी सामन्तों का पतन हुआ तथा राजाओं ने इसका लाभ उठाकर अपनी राजनीतिक और आर्थिक शक्ति को बढ़ाया तथा धार्मिक उन्माद को सहिष्णु नीति अपनाकर नियंत्रण में लाने का प्रयत्न किया। इससे जनता, श्रमिकों तथा किसानों का उनको समर्थन मिला तथा उनका उत्थान हुआ।

(9) **आधुनिक युग और नव–जागरण का प्रभाव–** निरंकुश राजतंत्रों के उदय में आधुनिक युग के आरम्भ होने का और पुनर्जागरण का भी अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इनके कारण कृषि–क्रांति हुई, औद्योगिक क्रांति का जन्म हुआ। वैज्ञानिक आविष्कार हुये, नये समुद्री मार्गों की

खोज हुई, संचार और संवादवाहन के साधनों का विकास हुआ। उद्योग, उत्पादन, वाणिज्य, यातायात, आयात-निर्यात, उपनिवेशिक विस्तार, जहाजों के निर्माण में क्रांति आ गयी। अब जनता और राजा इनके प्रभावों से बच नहीं सके। उन्हें धर्मान्धकार तथा पिछड़ेपन से छुटकारा मिला। नवयुग के सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक परिवर्तनों का लाभ राजाओं ने अपनी शक्ति को बढ़ाने में लगाया। इससे उनकी निरंकुशता में वृद्धि हुयी।

निरंकुश सत्ता का राष्ट्रीय राजतंत्रों में परिवर्तन– यूरोप के सभी देशों में सामन्तों के पतन के समय राजाओं ने अपनी निरंकुशता में वृद्धि करने के लिये मध्यमवर्गीय प्रजा और व्यापारियों से सहयोग लिया। इसके कारण उन्हें सुविधायें दी गयीं तथा उनके हितों को ध्यान में रख राजाओं ने नियम और कानून बनाये। अतः कानून निर्माण की प्रक्रिया में जनता और उसके हित का विचार प्रमुख हो गया। इसी में से राष्ट्रीय राज्य को मूर्त रूप मिला।

परिणाम– निरंकुश राज्यों के उदय से यूरोप के विभिन्न राज्य प्रभावित हुये। इस प्रभाव या परिणाम को इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है।

स्पेन (फर्डीनेण्ड और ईसाबेला)– स्पेन में तीन ईसाई राज्य थे जो परस्पर संघर्षरत् थे। चौथा राज्य मुस्लिम राज्य था जो 'मूर' कहलाता था। इन चारों राज्यों के एकीकरण में ईसाई चर्च, मुस्लिम पन्थ और सामन्तों के संघर्ष बाधक थे। अरागान राज्य के राजकुमार फर्डीनेण्ड ने 1469 में अपने ही प्रतिद्वन्द्वी केस्टाईल राज्य की राजकुमारी ईसाबेला से विवाह कर दोनों राज्यों में एकता स्थापित की तथा राष्ट्रीयता के आधार पर ग्रानडा राज्य से मूरों को निकालने में सफलता प्राप्त की। उसके पश्चात् फ्रांस के आधीन स्पेन के नावारे राज्य को 1512 में अपने आधिपत्य में कर सम्पूर्ण स्पेन को धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से एक कर उन्नत और शक्तिशाली बनाया और फर्डीनेण्ड ने अपनी पुत्रियों के विवाह 1496 में आस्ट्रियन फिलिप प्रथम से, दूसरी पुत्री मेरिया का विवाह पुर्तगाल के शासक से, तृतीय पुत्री कैथराईन का विवाह इंग्लैण्ड के शासक हेनरी के पुत्र ऑर्थर से और फिर हेनरी अष्टम से कर दिया। इस प्रकार उसने स्पेन को न सिर्फ शक्तिशाली बनाया बल्कि यूरोप में स्पेन को प्रतिष्ठा सम्पन्न भी बनाया। बाद में फर्डीनेण्ड को पोप एलेक्जेण्डर षष्टम को कैथोलिक सम्राट की उपाधि प्रदान की तथा स्पेन के उपनिवेश अमेरिका आदि में बने। धार्मिक न्यायालय स्थापित कर स्पेन में कैथोलिक एकता भी स्थापित की। इस प्रकार फर्डीनेण्ड की मृत्यु 1516 तक स्पेन एक शक्तिशाली राजतंत्र बन चुका था।

फ्रांस– 1492 में फ्रांस ने इंग्लैण्ड को पराजित किया। इंग्लैण्ड-फ्रांस का यह युद्ध सौ वर्ष से चला आ रहा था। इस काल में फ्रांस में राजाओं ने राष्ट्रीय भावनाओं का खूब प्रचार-प्रसार कर अपनी शक्ति को बढ़ा लिया था। फ्रांसीसी शासक चार्ल्स सप्तम ने 1439 में स्टेट जनरल से भूमि तथा घरों पर करारोपण की अनुमति प्राप्त कर अपनी स्थाई सेना का निर्माण किया जिससे उसने इंग्लैण्ड और स्पेन से युद्ध किये और सामन्तों को नियंत्रित किया।

बाद में 1461 में लुई 11वां 1483 में चार्ल्स अष्टम 1498-1515 में लुई 12वें के कालों में फ्रांस यूरोप में शक्तिशाली संगठित और उन्नत बना तथा यहाँ राष्ट्रीय भावनाओं को खूब बल मिला तथा सामन्त अब सम्राटों के अधीन और उसकी इच्छा पर निर्भर थे।

इंग्लैण्ड (ब्रिटेन)– 1337 से 1453 तक सप्तवर्षीय युद्ध में इंग्लैण्ड की फ्रांस से पराजय और 'गुलाबो' (सामन्तों) के युद्धों के कारण जहाँ एक ओर सामन्तों की शक्ति का ह्रास हुआ और अधिकतर सामन्त मारे गये। 1485 ई. में हेनरी ट्यूडर फ्रांस से सेना लेकर इंग्लैण्ड पर आक्रमण कर दिया और इंग्लैण्ड पर अधिकार कर ट्यूडर वंश की नींव डाली। इसने अपनी शक्ति को ही नहीं बढ़ाया बल्कि अपने को पूर्णरूपेण इंग्लैण्ड का शासक बनाने के लिये इंग्लैण्ड के मध्यवर्ग और सामान्य जनता का समर्थन पाने का प्रयत्न किया। ट्यूडर हेनरी सप्तम ने यार्क वंशीय राजकुमारी एलिजाबेथ से विवाह कर दो विरोधी वंशों में एकता का निर्माण किया। इससे इंग्लैण्ड में शान्ति, समृद्धि, शक्ति का और राष्ट्रीय भावों का संचार हुआ। बाद में विवाह सम्बन्धों से स्कॉटलैण्ड से एकता स्थापित की और उसके पश्चात् स्टुअर्ट वंश ने राज्य किया। इस प्रकार इंग्लैण्ड में भी सुदृढ़ राष्ट्रीय राजतंत्र स्थापित हुये।

अन्य राज्य– सन् 1500 में पुर्तगाल के शासक फिन्स हेनरी दीने विगेटर ने इतना शक्तिशाली राज्य स्थापित किया कि अफ्रीका में और भारत में पुर्तगाली बस्तियाँ स्थापित हो गईं। जर्मनी में 15वीं शताब्दि में आस्ट्रिया के राजनैतिक तथा धार्मिक हस्तक्षेप के विरोध में प्रोटेस्टेंट प्रतिक्रिया अधिक हुई। मैक्सिमिलियन जो जर्मनी तथा आस्ट्रिया दोनों का ही शासक था। उसने जर्मनी के सामन्तों के झगड़ों को समाप्त करने का प्रयत्न किया तथा अपनी प्रशासन व्यवस्था से जर्मनी में राष्ट्रीय एकता की स्थापना की। नीदरलैण्ड की राजकुमारी से विवाह कर अपनी शक्ति को बढ़ाया। इसी से आस्ट्रिया की शक्ति में भी वृद्धि हुई।

इटली के मिलान में 1395-1535 शक्तिशाली राजवंश स्थापित हुये तथा वेनिस सुसंगठित प्रजातंत्रीय राज्य बना परन्तु 1479 में वह तुर्कों से पराजित हुआ। नेपल्स और सिसली में भी निरंकुश सत्तायें स्थापित हुईं। रूस में जारों की निरंकुश सत्तायें स्थापित हो गईं। और टर्की में तो निरंकुशता अपनी चरम सीमा पर थी।

भौगोलिक खोजें और उपनिवेशों का निर्माण– सामन्तों के पतन से और निरंकुश राजतंत्रों के उदय से नवीन समुद्री मार्गों की खोज हुई तथा उद्योग और व्यापार की उन्नति हुई जिससे यूरोपीय देश शक्तिशाली, समृद्धिशाली बने और उन्होंने उपनिवेशों का निर्माण किया। निर्धन तथा कमजोर राज्यों का शोषण होने लगा।

स्पेन ने पश्चिम द्वीप समूह में (पोस्टा, रीका, जमैका, क्यूबा, मेक्सिको, पेरू, फ्लोरीडा) आदि में अपनी बस्तियाँ बनाई। बाद में यहाँ इंग्लैण्ड, फ्रांस और हॉलैण्ड भी आ गये। इंग्लैण्ड ने अमेरिका, जावा, न्यू फाउंडलैण्ड, ग्रीन लैण्ड, लैब्रेडोर आदि में बस्तियों का निर्माण किया। फ्रांस ने अमेरिका में नॉर्थ कैरोलिना, क्यूबेक, उत्तरी अमेरिका आदि में अपनी बस्तियों का निर्माण किया।

औपनिवेशिक और व्यापारिक प्रतियोगिता– औपनिवेशिक प्रतियोगिताओं के कारण निरंकुश राष्ट्रीय राजतंत्रों में परस्पर संघर्ष भी हुये। अंग्रेज, फ्रेंच, डच, पुर्तगालों और स्पेन में भयंकर संघर्ष और युद्ध हुये। जैसे भारत में अंग्रेज, फ्रांसीसी डच और पुर्तगालियों में संघर्ष हुये। व्यापार की वृद्धि के लिये राष्ट्रीय राज्यों ने कम्पनियों की स्थापनायें कर संगठित व्यापार को प्रोत्साहन दिया। जैसे ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी, फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी आदि। इस

प्रकार यूरोपियन देशों ने भारत, एशिया, अमेरिका, अफ्रीका, कनाडा के साथ व्यापार में प्रतियोगितायें सम्पन्न हुई और संघर्ष भी हुये।

सारांश– सामन्तवाद का पतन सामन्तों के अपने ही दोषों और प्रतिक्रियावादी नीतियों के कारण हुआ। बुद्धिमान राजाओं ने सामान्य और मध्यम जनता का सहयोग प्राप्त कर तथा उन्हें सुविधायें प्रदान कर अपनी शक्ति, धन सम्पदा, सेना और गोला बारूद में वृद्धि कर ली। वे पूर्ण निरंकुश हो गये। किन्तु इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति हुई तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में औपनिवेशिक तथा व्यापारिक बस्तियाँ बनने लगीं। इससे यूरोपीय देशों की समृद्धि, उद्योग–धन्धों का तो विकास हुआ परन्तु बस्तियों की जनता की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक दशा गिरने लगी तथा यूरोपियनों के आपसी संघर्षों में बस्तियों का विनाश होने लगा तथा उनकी धन–सम्पदा लुटने लगी एवं दासों का क्रय–विक्रय भी आरम्भ हो गया।

प्रश्न–15. पश्चिमी देशों के आर्थिक उत्थान और परिवर्तन में सामुद्रिक शक्ति के विकास, कृषि–क्रान्ति, उपनिवेशवाद, विज्ञान की प्रगति और व्यापारिक क्रांति की भूमिकाओं का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

अथवा

आधुनिक पाश्चात्य विश्व के आर्थिक उदय के कारण बताइये।

अथवा

यूरोप में वाणिज्यवाद के उदय के कारणों की विवेचना कीजिये।

उत्तर– विश्व में मानव की उत्पत्ति के काल से ही मनुष्य में अपनी उपभोग्य वस्तुओं की खोज और अर्जन की प्रवृत्ति रही है। यहां प्रवृत्ति क्रमशः विकसित होती रही तथा उसने एक अर्थतंत्र जिसमें वाणिज्य, व्यापार की प्रणालियों का उदय हुआ। एशिया महाद्वीपों में यह विकास यूरोप से पूर्व हुआ। भारत, चीन आदि से पन्द्रहवीं शताब्दी तक जीवनोपयोगी वस्तुयें जैसे वस्त्र एवं प्रसाधन सामग्री यूरोपीय देशों में पहुंचा करती थीं। यूरोपवासी इन वस्तुओं का प्रयोग प्रचुरता से करते थे। इन्हें देखकर तथा इनको पहुँचाने वाले नाविक बेड़ों को देखकर उनमें भी व्यापार–वाणिज्य की ओर रुचि बढ़ी।

विश्व की आर्थिक दशा के उदय के पूर्व स्थिति– विश्व में 14वीं शताब्दी तक संगठित व्यापार–वाणिज्य की कोई प्रवृत्ति नहीं थी। इसके पूर्व यूरोपवासी ठीक से कृषि करना भी नहीं जानते थे। इंग्लैंड में रैले नाम के व्यक्ति ने पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आलू और तम्बाकू के बीज विदेशों से लाकर प्रथम बार इंग्लैंड की भूमि में बोकर कृषि का प्रथम तरीका बताया। इस समय तक यूरोपीय जल–बेड़े बहुत कम और अकुशल थे, जो भिन्न देशों में पहुंचकर उनसे माल क्रय कर स्वदेश और अन्य देशों में बेचा करते थे। इस काल में व्यक्ति लाभ सर्वोपरि था। राष्ट्रीय राजतंत्रों के उदय और सामन्तीय पतन के कारण विभिन्न देशों के शासकों ने व्यापार, वाणिज्य और कृषि के विकास में रुचि लेना आरम्भ किया और इनके विकास के लिये कार्य किये। यह प्रयास भी व्यक्ति पर आधारित थे परन्तु इससे अर्थतन्त्र के नवोदय में मदद मिली।

नवीन अर्थतंत्र के उदय का आरम्भ– तुर्की के सन् 1453 में प्राचीन रोमन साम्राज्य पर आक्रमण के बाद पुनर्जागरण की लहर सम्पूर्ण यूरोप और विश्व में आरम्भ हुई। इस लहर में

धार्मिक उन्माद और संघर्ष भी अपनी चरम सीमा पर पहुंचे परन्तु फिर भी विशेषकर यूरोप में अर्थतंत्र का नवोदय हुआ। इसके निम्न कारण थे–

(1) युद्ध और आर्थिक नवोदय– विश्व के और विशेषकर यूरोप के विभिन्न देशों के अन्दर और पड़ौसी देशों से युद्धों के कारण अर्थतंत्र में परिवर्तन होने लगे। तीस वर्षीय युद्ध, सातवर्षीय युद्ध तथा और भी अनेक युद्ध हुये।

इन युद्धों के कारण युद्ध भी एक व्यवसाय बन गया तथा इनके लिये पेशेवर सैनिकों की, मोटे कपड़ों की, जूते, बटन, बन्दूकों, चमड़े के सामान तथा गोले–बारूद की आवश्यकता पड़ने लगी। इस कारण विभिन्न देशों के अन्दर इनके लिये व्यवसाय पनपने लगे, कारीगर, सैनिक भी एकत्रित किये गये। अब उत्पादन और व्यापार केवल अपने लिये नहीं सैनिक आवश्यकताओं के लिये और राष्ट्रीय आवश्यकता समझकर किये जाने लगे।

परन्तु उद्योगपतियों और व्यापारियों को इनसे लाभ उठाने की प्रवृत्ति को अत्यधिक बल मिला। इससे उनकी सम्पत्ति, पूँजी और व्यवसाय में वृद्धि हुई। साथ ही उनकी राज्यों पर प्रभावी नियंत्रण की आकांक्षा बढ़ने लगी। व्यापारी–उद्योगपति वास्तव में अपने व्यापारिक और पूँजीगत लाभ के लिये तथा अपने निर्मित माल की खपत के लिये राज्यों को युद्ध के लिये प्रोत्साहित करने लगे। इस प्रकार युद्धों से नवीन आर्थिक विश्व का उदय हुआ।

(2) कृषि–क्रान्ति और आर्थिक नवोदय– यूरोप में सत्रहवीं शताब्दी में कृषि की स्थिति उन्नत नहीं थी। विशेषकर इंग्लैंड में कृषि की दशा अत्यन्त खराब थी तथा इंग्लैंड अन्य देशों से अपनी आवश्यकता की चीजें लाकर अपना कार्य चलाता था। इससे इंग्लैंड के अन्य देशों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुये तथा इंग्लैंड के किसानों को खेती के उन्नत तरीके पता चले। इस कारण कृषि की दशा में अति शीघ्र अभूतपूर्व परिवर्तन होने लगे।

कृषि में इन परिवर्तनों के कारण इंग्लैंड में प्रथम आर्थिक विचारों में परिवर्तन हुये। 18वीं शताब्दी में खेती में नये तरीके काम में लाये जाने लगे, जिससे गांवों में उत्पादन और पूँजी की वृद्धि हुयी। इससे भू–स्वामी पूँजी को उद्योगों में लगाने पर विचार करने लगे।

(3) आर्थिक नवोदय में समुद्री यात्राओं का योगदान– सन् 1496 के पूर्व इंग्लैंड को आयात–निर्यात के लिये विदेशी देशों पर निर्भर रहना पड़ता था। हेनरी सप्तम तथा एलीजाबेथ आदि ने साहसी समुद्री यात्रियों को प्रोत्साहन दिये। इसके लिये उसने नौका अधिनियम बनाकर जहाज उद्योगों को प्रोत्साहन दिया। अब विशाल और शक्तिशाली जहाजों का निर्माण होने लगा जिन्होंने व्यापार में आयात और निर्यात में उन्नति कर ब्रिटेन के लाभों में वृद्धि की।

1496 ई. में 'मेगनस इंटरकरसस' (Magnus Intercursus) नामक संधि के द्वारा नीदरलैंड और इंग्लैंड के बीच ऊन के व्यवसाय पर से प्रतिबंध उठा लिया गया। इंग्लैंड ही नहीं स्पेन और पुर्तगाल नई दुनिया की खोज में आगे निकल चुके थे। कोलम्बस नयी दुनिया का पता लगा चुका था और वास्को–डि–गामा ने केप ऑफ होप के रास्ते भारतवर्ष पहुंचने का मार्ग ढूंढ निकाला था। दूर देशों के साथ सम्बन्ध कायम कर स्पेन और पुर्तगाल मालामाल हो रहे थे। इंग्लैंड धर्मसुधार–आंदोलन में व्यस्त था। भौगोलिक खोज की ओर उसका ध्यान आगे चलकर आकृष्ट हुआ। पहला प्रयास हेनरी सप्तम ने किया। उसकी आज्ञा और आश्रय पाकर

वेनेशिया के दो नाविक जॉन और सेवासटियन केबॉट ने मध्य अमेरिका का पता लगाया। न्यूफाउंडलैंड का पता लगाने का श्रेय भी इन्हें ही दिया जाता है। भौगोलिक खोजों के परिणामस्वरूप अटलांटिक महासागर का व्यापारिक महत्व बहुत बढ़ गया।

(4) **परिवहन और आर्थिक नवोदय** – व्यापारी और उद्योगपतियों को यह शीघ्र ही समझ आ गया कि परिवहन में सुधार अपने लाभों को कई गुना अधिक बढ़ाया जा सकता है। अतः सड़कें, नहरें, रेलगाड़ियाँ आदि बनाई गईं 1700 ई. में इंग्लैंड में बहुत कम ऐसी सड़कें थीं जिन पर चक्के वाली गाड़ियां साल भर चल सकती हों। सड़कें कच्ची होती थीं और उन पर खाइयां थीं। अतः उन पर गाड़ियों का चलना संभव नहीं था। हल्के सामान तो घोड़ों की पीठ पर लाद कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाये जा सकते थे, किन्तु भारी सामानों को ले जाने में भारी खर्च पड़ता था। अतः आवागमन के साधनों को उन्नत किया गया। जिनसे आर्थिक क्रांति हुई।

(i) **नहर–निर्माण**– 1790–94 में नहर बनाने के 81 अधिनियम पास किये गये और 18वीं शताब्दी के अंत होते–होते समस्त देश में नहरों का जाल–सा बिछ गया। सच तो यह है कि नहरें एक ऐसी सड़कें बन गईं कि कोई व्यक्ति नाव से उतरे बिना यूरोप के महाद्वीप पर सैकड़ों मील की यात्रा कर सकता था। इनके अतिरिक्त, नहरों के जरिये देश का भीतरी हिस्सा जो अपनी जरूरत आप पैदा करता था– उद्योग के केन्द्रों से माल मंगाने लगा और अपनी पैदावार का निर्यात करने लगा।

(ii) **सड़कों में सुधार**– अंग्रेजों ने 'टर्नपाइक' नामक निजी सड़कें बनवाईं। इसके पश्चात् ज्यों–ज्यों सड़कों में सुधार होता गया, त्यों–त्यों उत्तम आरामदायक बग्घियों और बैलगाड़ियों का निर्माण होने लगा। इससे माल के आवागमन का व्यय घटा तथा विलम्ब होना भी कम हो गया।

(iii) **वाष्प–चलित जहाज**– अब भाप–शक्ति का आविष्कार हुआ और इसकी मदद से पानी में जहाज चलाये जाने लगे। भाप–शक्ति द्वारा संचालित सर्वप्रथम जहाज 1807 ई. में निकला। 1809ई. में सवाना नामक जहाज ने एटलाण्टिक सागर को इसी शक्ति की मदद से पार किया। उसके बाद ऐसे जहाज बड़े पैमाने पर बनने लगे और प्रयोग में लाये जाने लगे। 19वीं शताब्दी के मध्य तक ढलवां लोहे के जहाज आमतौर पर बनने लगे। 1863 ई. में इस्पात का बना पहला जहाज तैयार हुआ और 1890 ई. से अब लोहे की इस्पात इस्पात के ही जहाज बनने लगे।

(iv) **रेल यातायात**– रेलगाड़ी और उसके चलने के लिये लोहे की पटरियों को खोज निकाला गया, जिनके फलस्वरूप आवागमन में विशेष सुविधा हुई। भाप की शक्ति से रेलगाड़ी को चलाने का प्रयास किया गया। जार्ज स्टीफेन्सन ने 1830 ई. में अपने प्रसिद्ध भाप के इंजन (राकेट) का आविष्कार किया। रेलवे से उत्पादित सामानों के आयात–निर्यात करने में काफी सुविधा हो गई। भाप के इंजन से व्यापार के विकास में अभूतपूर्व उन्नति हुई। **डेविस महोदय** ने लिखा है कि अगर इस

वाष्प–इंजन की खोज नहीं हुई होती तो व्यापार में यह अभूतपूर्व और आश्चर्यजनक विकास नहीं हुआ होता।

(v) **बन्दरगाहों का निर्माण**– बंदरगाहों और जहाजरानी की ओर भी अंग्रेजों का ध्यान गया। नैपोलियन (फ्रांस का राजा) के साथ युद्ध के कारण ब्रिटेन के बंदरगाह में आने वाले जहाजों की संख्या बढ़ गयी। 1800 ई. और 1810 ई. के बीच उन्हें ठहराने के लिये 30 एकड़ के रकबे में लोहे के नये डॉक तैयार हुये। इन्हीं डॉकों के कारण लंदन विश्व का सर्वश्रेष्ठ बंदरगाह बन गया।

(5) **संचार साधन और आर्थिक नवोदय**– 19वीं शताब्दी के मध्य में संवादवाहन के साधनों में क्रांति आयी। 1837 ई. में इंग्लैंड और अमेरिका के वैज्ञानिकों ने इलैक्ट्रिक टेलीग्राफ का अपने–अपने देश में स्वतंत्र रूप से आविष्कार किया और 19वीं शताब्दी के अंत होते–होते संचार के सभी प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों का पारस्परिक सम्बन्ध टेलीग्राफ के द्वारा चलने लगा। एक अंग्रेज रॉलैण्ड हिल ने जो अंधा था, पुरानी, धीमी, मँहगी और अविश्वस्त डाक–व्यवस्था को बदल डाला। इससे सभी देश अंतर्राष्ट्रीय पत्रों, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, पार्सल और धनादेशों (मनीआर्डर) को बहुत कम दर पर यथास्थान पहुंचाने में सहयोग करते हैं। कारखानों के विकास के लिये प्रकाश की भी व्यवस्था की गयी। इस प्रकार संचार साधनों ने आर्थिक प्रगति को नया रूप प्रदान किया।

(6) **विज्ञान और आर्थिक नवोदय**– विज्ञान, आर्थिक नवोदय की मूल प्रेरणा है। इंग्लैंड में ऐसे वैज्ञानिक आविष्कारों से चीजें ढूंढ़ निकाली गयीं, जिसके कारण नये आर्थिक विचारों का उदय हुआ। वस्त्र उद्योग के ही विकास के लिये इंग्लैंड के वैज्ञानिकों ने अनेक उपयोगी मशीनों का आविष्कार कर डाला। फ्लाइंग शटल, बुनाई के लिये स्पिनिंग जेनी नामक मशीन, वाटरफ्रेम नामक सूत कातने की मशीन और पावरलूम आदि यंत्रों के आविष्कारों के कारण इंग्लैंड और यूरोपीय देशों में औद्योगिक क्रांति आ गयी और आर्थिक उन्नति हुई।

(7) **पूँजी और आर्थिक नवोदय**– इस समय विश्व में इंग्लैंड के पास सबसे अधिक पूँजी थी जो 1688 से 1750 ई. के बीच जमा हुयी थी। नई राजनीतिक व्यवस्था में व्यापारियों ने व्यापार और पूँजी में विकास लाने का यथेष्ट प्रयास किया। इस कारण 1750 ई. तक इस देश में प्रचुर पूँजी एकत्र हो गयी, जिसकी सहायता से कल–कारखाने खोले जा सकते थे। यह पूँजी, युद्धों, उपनिवेशों के शोषण और भ्रष्ट तरीकों से एकत्रित की गई। जिससे व्यापार और उद्योग में और अधिक प्रगति हुई।

(8) **औपनिवेशिक विस्तार और आर्थिक नवोदय**– यूरोपीय युद्ध इंग्लैंड के लिये आर्थिक दृष्टि से बहुत लाभप्रद थे। इससे उसका औपनिवेशिक विस्तार हुआ और इन उपनिवेशों से उसे कच्चे माल की अधिकाधिक प्राप्ति हुयी, जिससे वह अपने कल–कारखानों को निरन्तर चला सकता था तथा इन्हीं उपनिवेशों को बाजार के रूप में उपयोग किया जाता था।

आर्थिक नवोदय के परिणाम– आरम्भ में व्यापार व्यक्तिगत था तथा सहासी यात्री अपने जहाजों में माल एक देश से दूसरे देश में पहुंचाया करते थे। तम्बाकू, चाय, कपड़े और अन्य उपयोग का सामान का आयात–निर्यात किया जाता था। उपनिवेश और साम्राज्य विस्तार की नीतियां भी आर्थिक लाभ के लिये ही आरम्भ हुयीं। कच्चे माल के आयात और तैयार माल के

निर्यात के लिये यूरोपीय देशों ने अपनी-अपनी औद्योगिक नीतियां आरम्भ कीं तथा विश्व में व्यापार और लाभ के लिये अनेक परिवर्तन किये और कानून बनाये।

आधुनिक आर्थिक नवोदय का आरम्भ इंग्लैंड से हुआ। आरम्भ 1750-60 और 1815 ई. के बीच हुआ। क्योंकि इंग्लैण्ड में इसके लिये सभी आर्थिक, राजनैतिक और आर्थिक चिंतन का वातावरण था। अतः औद्योगिक क्रांति सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में और फिर अन्य यूरोपीय देशों में आरम्भ हुई। नवीन आर्थिक जागरण के कारण यूरोप की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन हुये। मध्यम-वर्ग शक्तिशाली हो गया और श्रमिक वर्ग संगठित हुआ तथा श्रमिक वर्ग और पूँजीपति वर्ग में संघर्ष भी बढ़े। इससे उपनिवेशों की जनता का शोषण भी बढ़ा। परन्तु कोई भी इंग्लैण्ड का सामना नहीं कर पाया। आर्मेडा की पराजय के बाद तो साम्राज्य विस्तार, उपनिवेशों की संख्या तथा उनसे व्यापार में, पूँजी संचय में तथा सामुद्रिक सैनिक शक्ति में इंग्लैण्ड सर्वोपरि धनी देश हो गया।

प्रश्न-16. वाणिज्यवाद क्या है? इसके उदय के कारण तथा महत्व का वर्णन कीजिये।

अथवा

वाणिज्यवाद की प्रमुख व्यवस्थाओं का आलोचनात्मक विवेचन कीजिये।

अथवा

वाणिज्यवाद (मर्केन्टाइलिज्म) का अर्थ समझाते हुये उसकी विशेषताओं और परिणामों पर प्रकाश डालिये।

अथवा

वाणिज्यवाद के उत्थान के क्या कारण थे? इससे तत्कालीन यूरोप में क्या परिवर्तन हुये?

उत्तर- वाणिज्यवाद की उत्पत्ति का सुनिश्चित वर्ष बताना सम्भव नहीं है, फिर भी **एलेक्जेण्डर ग्रे** के अनुसार अत्यन्त अव्यवस्थित वाणिज्यवाद की उत्पत्ति चौदहवीं शताब्दि के अन्त में आरम्भ हुई, किन्तु सोलहवीं शताब्दि में नवीन वाणिज्यवाद की उत्पत्ति हुई, जो पूर्व के वाणिज्यवाद से भिन्न था।

नवीन वाणिज्यवाद का कारण- यूरोप में बारहवीं शताब्दि में उद्योगों और व्यापार की वृद्धि के साथ-साथ नगरों का भी विकास होना आरम्भ हुआ। यह युग सामन्तीय संघर्षों का भी काल था। अतः नगरों में रहने वाले मध्यमवर्गीय व्यापारियों ने इन संघर्षों का लाभ उठाकर मध्यम वर्गीय वाणिज्यवाद को जन्म दिया, किन्तु राष्ट्रीय आवश्यकताओं के कारण नवीन व्यवस्थाओं का जन्म हुआ। निम्नलिखित कारणों से यह स्पष्ट है-

नवीन वाणिज्यवाद का कारण

1. व्यापारिक संघों की स्थापना- मध्यकालीन सामन्त, प्रतिक्रियावादी, विलासी तथा सामान्य जनता के शोषक और उत्पीड़क थे। इन सामन्तों का राजा के ऊपर भी पर्याप्त प्रभाव था, क्योंकि संकट तथा युद्धकाल में ये राजा को धन देते थे। परन्तु कालान्तर में यह स्थिति बदली। सामन्तों के परस्पर संघर्ष तथा राजा को अपने नियंत्रण में रखने की प्रतियोगिता में सामन्तों की स्थिति कमजोर हो गई। राजा भी उनसे मुक्त होने के लिये मध्यमवर्गीय व्यापारियों से धन प्राप्त करने लगे और उन्हें विभिन्न प्रकार से व्यापारिक सुविधायें देने लगे। इस प्रकार व्यापारी सम्पन्न बने तथा उनकी विशाल संख्या का समर्थन राजा को मिला। ये लोग नगरों में रहकर सामन्तों के अत्याचारों से संघर्ष करने और उनसे अपनी रक्षा करने के लिये तथा

अपने व्यापारिक हितों को सुरक्षित करने के लिये संघ (गिल्ड) बनाने लगे। इनकी शक्ति, आर्थिक सम्पन्नता और राजनीति प्रभाव में वृद्धि होने लगी। राष्ट्रीय राजाओं ने इसका उपयोग सम्पूर्ण देश के लिये करने का विचार किया।

2. व्यापारी संघ के अधिकार और प्रभाव- व्यापारी संघ के नियम अत्यन्त कठोर होते थे जिनका वह निष्ठापूर्वक पालन करते थे। इनके चार प्रमुख उद्देश्य थे- (i) सामन्तों से संघर्ष, (ii) व्यापार का नियमन करना, (iii) सम्पूर्ण बाजार पर नियंत्रण करना, (iv) नियम तोड़ने वालों को दण्डित करना।

इसके लिये यह किसी वस्तु के व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। सदस्य नहीं होते थे अथवा इनके अनुशासन का उल्लंघन करते थे उनके लिये किसी भी प्रकार का व्यापार करना प्रायः असम्भव होता था। नगर में आने वाला या नगर के बाहर जाने वाले माल का क्रय-विक्रय करने का प्रथम अधिकार इन संघों को ही होता था। अनुशासनहीन या गैर सदस्य का यह माल जब्त कर सकते थे। यदि यह चाहते तो किसी व्यापारी को अपने क्षेत्र में प्रवेश ही नहीं करने देते कभी इनका एकाधिकार, प्रभाव और अधिकार निरंकुशता को स्पर्श करने लगता था। कभी-कभी अपने व्यापारिक लाभ के लिये यह संघ संगठित उद्दंडता या अनुशासनहीनता भी करते थे तथा शासन पर व्यापारिक सुविधायें देने के लिये अनुचित दबाव भी डालते थे। इससे वाणिज्यवाद में नवीन प्रवृत्ति का जन्म हुआ।

3. शिल्प गिल्ड और उसके अधिकार- उद्योग और व्यापार की वृद्धि के साथ हस्त, कुटीर शिल्प का भी विकास हुआ और इन शिल्पियों ने भी अपने संघ बनाये तथा इन्होंने भी अपने-अपने उद्योगों में एकाधिकार प्राप्त कर लिया। इन संघों के नियम, प्रभाव और अनुशासन अपने-अपने क्षेत्र में अत्यन्त दृढ़ थे तथा यह भी अपने अनुशासनहीन सदस्यों, गैर सदस्यों तथा क्षेत्र के बाहर के शिल्पियों को सदस्यता से वंचित करना, उनके उद्योग छीनना आदि कार्य कर सकते थे। ये संघ अपने सदस्यों को बेकारी और वृद्धावस्था में भत्ते और पेंशन की भी व्यवस्था करते थे। यद्यपि इनके संगठनों से शिल्पियों, श्रमिकों और दस्तकारों को लाभ भी हुआ, परन्तु कालान्तर में इनकी उपयोगिता और साख गिरने लगी। इसका प्रमुख कारण था, इनके परस्पर संघर्ष। फिर सामन्तों के संघर्ष तथा राष्ट्रीय राजतंत्र की स्थापना ने भी इनके शक्ति और प्रभाव में हस्तक्षेप किया।

4. व्यापार संघों का संकीर्ण दृष्टिकोण- मध्य युग में व्यापार तथा शिल्पी संघों ने मध्यम व्यापारी और शिल्पियों की रक्षा, प्रगति और राष्ट्रीय राजतंत्रों की स्थापना में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान किया। अपने संघ और संघ के सदस्यों के हित, आर्थिक लाभ और सम्पत्ति में वृद्धि कर परोक्ष रूप से राष्ट्रीय समृद्धि का और देश को शक्तिशाली बनाने का सूत्रपात किया। इनके संगठन, अनुशासन और सक्रियता ने देश में राष्ट्रीय भावना का जागरण किया।

फिर भी व्यापारी संघ अपने सदस्यों के हितों तक ही सीमित थे तथा उनके लाभ के लिये तथा अपने संघ को दूसरे संघ से शक्तिशाली बनाने के लिये प्रतियोगिता और संघर्ष भी करते थे और राज्य से उचित-अनुचित लाभ और शासन तथा राजाओं पर दबाव डालते थे। कभी-कभी तो यह आपस में संघर्ष और युद्ध भी कर बैठते थे तथा प्रतिपक्षी को अधिक से अधिक हानि पहुँचाते थे। राजाओं को इनके संघर्षों को दूर करने के लिये या इनसे लाभ उठाने के

लिये आना पड़ता था। यही कारण था कि राजाओं ने इन पर नियंत्रण रखने की नीति अपनाई जिससे नवीन वाणिज्यवाद उत्पन्न हुआ।

5. राष्ट्रीय राजतंत्रों की स्थापना– सामन्तवाद के पतन और राष्ट्रीय राजतंत्रों के उदय में मध्यम–वर्ग की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका थी। बुद्धिमान और निरंकुशता के आकांक्षी राजाओं ने कूटनीतिपूर्वक मध्यमवर्गीय व्यापारियों से आर्थिक मदद लेकर सामन्तों का दमन किया और इन व्यापारियों को कर, सम्पत्ति, व्यापार, आयात–निर्यात आदि में कानूनी सुविधायें प्रदान कीं। इससे राजाओं की निरंकुश राष्ट्रीय शक्ति का विकास हुआ और देश भी समृद्ध और शक्तिशाली बना।

जब राजाओं को श्रमिक (शिल्पी) और वाणिज्य संघों की प्रतियोगिता और संघर्षों से देश को हानि होती हुई दिखाई दी तो उनके लिये यह आवश्यक हो गया कि संकीर्ण और विवाद उत्पन्न करने वाले कानूनों को समाप्त कर राष्ट्रीय कानूनों का निर्माण करें। अतः इनके द्वारा इन्होंने व्यापार का नियमन करने का विचार किया तथा अब वाणिज्य, शिल्प और नीति का संचालन राज्य करने लगा और सम्पूर्ण वाणिज्य का राष्ट्रीय आधार पर एकीकरण किया गया जिससे उनकी गलाकाट प्रतियोगिता और एकाधिकार की प्रवृत्ति पर नियंत्रण लगे परन्तु उनका विकास नहीं रुका।

वाणिज्यवाद का अर्थ– वाणिज्य और व्यापारिक संघों के एकाधिकार को समाप्त करने के लिये तथा उसके आर्थिक एकीकरण के लिये नवीन वाणिज्य नीति की आवश्यकता अनुभव हुई। इस नीति का प्रमुख उद्देश्य यह था कि शासन को व्यापार, उद्योग और उसके कार्यों का इस प्रकार नियमन करना चाहिये कि इससे आर्थिक क्षेत्र में राष्ट्र आत्मनिर्भर बन सके।

फ्रांसिस बेकन ने कहा है कि, 'वाणिज्यवाद का मुख्य उद्देश्य व्यापार की वृद्धि करना, उसका समुचित और संतुलित विकास करना तथा व्यापारिक माल के उत्पादन को प्रोत्साहित करना और समुचित कानूनों के द्वारा अपव्यय और अति को रोकना, भूमि को सुधारना, अच्छी कृषि को उत्साहित करना और मूल्यों का नियमन करना था।'

यह सिद्धान्त विचार नवीन नहीं था। जो कार्य पहले वाणिज्य संघ या शिल्पी संघ करते थे उसी को राष्ट्रीय सरकारों को करना था। अन्तर यह था कि संघ केवल अपने स्वार्थों और हितों तक सीमित थे और अब इसका उद्देश्य राष्ट्रव्यापी हितों की रक्षा और वृद्धि करना था। जिन सिद्धान्तों के आधार पर मध्ययुगीन नगरों का विकास हुआ था अब उनको राष्ट्रीय आधार पर प्रयुक्त कर राष्ट्र का विकास करना उद्देश्य बना।

यद्यपि सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दि में यूरोप के विभिन्न देशों में वाणिज्यवाद का विशेष रूप से विकास हुआ परन्तु स्थानीय परिस्थितियों आर्थिक चिंतन, भौगोलिक दशा और वाणिज्य व्यवस्था और प्रत्येक की अपनी सरकारों आदि के कारण प्रत्येक देश के वाणिज्यवाद और उसकी विशेषताओं में भिन्नता थी परन्तु आधारभूत सिद्धान्त सर्वत्र समान थे।

वाणिज्यवाद की विशेषतायें– मध्ययुग के समान आधुनिक युग में भी नागरिकों का आर्थिक जीवन अनेक बन्धनों में जकड़ा हुआ था, किन्तु परिभाषा में दिये बन्धनों, उद्देश्य बदल गये थे। शासकों ने राष्ट्रीय आवश्यकता तथा सृजनात्मकता और उत्पादकता का ध्यान रखते हुये अपनी नीतियों का निर्माण, संशोधन और परिवर्तन किये तथा प्रायः प्रत्येक आर्थिक क्रिया के

लिये अधिनियम बनाये। इन्हीं सिद्धान्तों, नीतियों और व्यवस्थाओं को वाणिज्यवाद का नाम दिया गया। इसी में से नवीन वाणिज्यवाद की विशेषतायें निम्न रूपों में दृष्टिगोचर होती हैं–

1. **उद्योगों का राष्ट्रीय नियमन–** अब विभिन्न देशों की सरकारें अपने देश के उद्योग–धन्धों और व्यापार के संगठन, वृद्धि, संचालन तथा व्यवस्थाओं पर ध्यान देने लगीं, क्योंकि उद्योग, व्यापार जहाँ राष्ट्र की सम्पन्नता और आर्थिक शक्ति का आधार था वहीं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समृद्धि और प्रतिष्ठा का विषय भी था। राष्ट्रीय गौरव की अभिवृद्धि और व्यापारिक लाभ के लिये अन्य संघर्षों में आर्थिक सम्पन्नता ही आधार होती थी।
2. **उद्योगों को प्रोत्साहन–** उद्योगों को प्रोत्साहन देना अब राज्य अपना दायित्व समझने लगे। इसके कारण उत्पादकों को प्रोत्साहन देना, मदद देना, आयात कम और निर्यात अधिक करना, अभिदान देना, उद्योगों में उन्नत तरीके अपनाना, कुशल विदेशी कारीगरों को बुलाना, संरक्षण देना, अन्न तथा व्यापारिक फसलें बढ़ाना तथा गरीबी और बेकारी को दूर करना आदि उपाय किये गये। यह कार्य विशेष रूप में फ्रांस के प्रधानमंत्री काल्बर्ट ने किये। इसने प्रत्येक देश में अपने देश के प्रतिनिधि भेजे, तकनीकी शिक्षा को प्रोत्साहित किया और अनुसंधान करवाये। इसका अनुकरण अन्य देशों ने भी किया। रूस भी इनमें पीछे नहीं रहा।
3. **व्यापार संतुलन–** व्यापार संतुलन में स्वर्ण और चांदी को माध्यम बनाया गया तथा अपने देश में स्वर्ण और चांदी की मात्रा को बढ़ाने के लिये निर्यात अधिक और आयात कम करने की नीति अपनाई गई। इस प्रकार व्यापार का संतुलन अपने देश के पक्ष में करने का प्रयत्न किया जाने लगा।
4. **निष्क्रियता और अपव्यय को हटाना–** देश के अन्दर बहुत बड़ी मात्रा में सम्पत्ति (जमीन, प्राकृतिक सम्पदा) बिना उपयोग के पड़ी हुई थी। बहुत से नागरिकों के पास धन था जिसे वह विलासिता पर व्यय करते थे। अब सरकारों ने प्रचार के माध्यम से पूँजी उद्योगों में लगाने और अपव्ययों और विलासिता को रोकने का प्रयास किया और पूँजी से नवीन पूँजी और सम्पत्ति का सृजन करने को उत्साहित किया गया। इसके लिये बैंकिंग प्रणाली आदि स्थापित की गई।
5. **बहुमूल्य धातुवाद–** इस युग में स्वर्ण और चांदी को बहुमूल्य और असली राष्ट्रीय सम्पत्ति और पूँजी माना जाता था तथा इसे व्यापार सन्तुलन, राष्ट्रीय प्रतिष्ठा, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिये भी आवश्यक समझा गया। अतः प्रत्येक देश स्वर्ण और चांदी को बटोरने में लग गया। यही मुद्रा व्यवस्था का भी आधार बना।
   कुछ देश तो स्वर्ण और चांदी पाने के लिये डकैती तक को प्रोत्साहन देने लगे। जैसे– इंग्लैण्ड, फ्रांस और नीदरलैण्ड आदि तथा पुर्तगाल, स्पेन, वेनिस, रोम ऐसे भाग्यशाली देश थे जिनमें स्वर्ण और चांदी की खदानें थीं। अतः उन्होंने इसके निर्यात् पर प्रतिबन्ध लगाये।
6. **जहाजों का निर्माण–** उद्योग और व्यापार की वृद्धि और यातायात साधनों का विकास एक–दूसरे के लिये परम् आवश्यक साधन हैं। अतः आयात एवं निर्यात के

लिये विशाल, अच्छे जहाजों की आवश्यकता थी तथा अपने जहाजों में माल का आयात–निर्यात करने वाला देश शक्तिशाली और धनी देश माना जाता था। अतः जहाजी उद्योगों को खूब प्रोत्साहित किया गया। इनके निर्माण की संख्या की और कार्यकुशलता की जमकर प्रतियोगिता होने लगी जिससे नवीन, अच्छे और विशाल भारवाहक और लड़ाकू जहाजों का निर्माण सम्भव हुआ। इसके लिये प्रत्येक देश ने विभिन्न प्रकार के कानून बनाये।

7. **उपनिवेशों का आर्थिक शोषण–** पुर्तगाल, स्पेन, हॉलैण्ड, फ्रांस और इंग्लैण्ड ने अपने–अपने उपनिवेशों में व्यापार का एकाधिकार स्थापित करने के लिये अनेक कानून बनाये। परन्तु इसमें उपनिवेशों की जनता के हितों का ध्यान नहीं रखा गया। अतः उन पर अत्याचार किये जाने लगे और शोषण किया गया तथा उन्हें निर्धन और कमजोर बना दिया गया। जैसे इंग्लैण्ड की संसद ने कानून पास किया था कि उपनिवेशों में टोपियाँ, हेट उनका सामान और लोहे की चीजें नहीं बनाई जा सकती हैं। न ही इनका कच्चा माल उपनिवेश इंग्लैण्ड को छोड़कर अन्य देश को बेच सकता है। इसी कारण अमेरिका, आयरलैण्ड तथा भारत आदि में स्वतंत्रता आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ।

परिणाम– वाणिज्यवाद की उत्पत्ति के अच्छे एवं बुरे दोनों ही परिणाम सामने आये। वास्तव में यूरोप में वाणिज्यवाद की उत्पत्ति अत्यन्त हीन भावना से हुई। जैसे मध्यकाल में व्यक्ति और वाणिज्य संघ अपने लाभों के लिये नैतिक, अनैतिक उपाय करने में संकोच नहीं करते थे, ठीक उसी प्रकार आधुनिक काल में विभिन्न यूरोपीय राष्ट्र अपनी समृद्धि और व्यापार के लिये उचित–अनुचित व क्रूर उपाय करने में कोई संकोच नहीं करते थे। इसमें मानवीयता, नैतिकता और विश्वास को कोई स्थान प्राप्त नहीं था। नवीन वाणिज्यवाद के कारण राजाओं और पूँजीपतियों की आय बढ़ने लगी। साथ ही राज्य की निर्भरता व्यापारियों पर बढ़ने लगी। अतः देश की राजनीति, कानून प्रक्रिया, न्याय, संसद आदि प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से इन व्यापारियों से प्रभावित होने लगे। इससे निर्धन वर्ग को क्षति उठाना पड़ी तथा कर व्यवस्था जटिल हो गई। वाणिज्यवाद का उद्देश्य राष्ट्रीय गौरव में वृद्धि और राष्ट्र की आर्थिक उन्नति था परन्तु उन्नति पूँजीपति या धनी वर्ग की ही हुई। इससे सामान्य वर्ग असन्तुष्ट हुआ तथा उपनिवेशों (अमेरिका आदि) में राष्ट्रीय संघर्ष हुये। हीन स्तरीय प्रतियोगिता के कारण विभिन्न देशों में संघर्ष, दीर्घ वैमनस्य, सेना और शस्त्रों पर व्यय, धन–जन का विनाश हुआ। दूसरे देश को आधीन बनाना, उन्हें लूटना आदि आरम्भ हो गया।

उपनिवेशों में और स्वदेश में वाणिज्यवाद के खिलाफ प्रतिक्रिया भी उत्पन्न हुई। इनके तर्क थे कि विदेशियों द्वारा व्यापार पर लगाये गये कर और प्रतिबन्ध अनुचित थे। व्यापार की दृष्टि से विश्व एक राष्ट्र के समान है। एकाधिकार से व्यापार को हानि उठाना पड़ती है और सभी को व्यापार का अवसर नहीं मिलता। बहुमूल्य धातुवाद वाणिज्यवाद का वास्तविक आधार नहीं है। इनके अनुसार स्वर्ण और चाँदी की मात्रा बढ़ने से इनका मूल्य कम हो जाता है तथा वस्तुओं के मूल्य बढ़ने लगते हैं। इससे उपभोक्ता और व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव

पड़ता है। 'राष्ट्रों की सम्पत्ति' नामक पुस्तक में एडमस्मिथ ने वाणिज्यवाद का खण्डन किया तथा अठारहवीं शताब्दि के मध्य से इस वाणिज्यवाद का पतन आरम्भ हो गया।

निष्कर्ष– 'वाणिज्यवाद मध्यकालीन वाणिज्य संघवाद का नवीन या आधुनिक राष्ट्रीय संस्करण था। जिसने कुछ काल तक राष्ट्रीय प्रगति में वृद्धि की। परन्तु इससे वर्गवाद, शोषण और उपनिवेशों की गुलामी को भी प्रोत्साहन मिला और विभिन्न देशों में राष्ट्रीय आन्दोलनों का आरम्भ और संघर्ष भी हुये तथा अठारहवीं शताब्दि में इसका पतन आरम्भ हो गया।'

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न–(1) सामंतवाद का अर्थ स्पष्ट कीजिये।

अथवा

सामन्तवाद से आप क्या समझते हैं?

उत्तर– सामंतवाद का आशय एक ऐसी शासन–प्रणाली से है, जिसमें राजनीतिक शक्ति का प्रयोग गैर–सरकारी लोग करते हैं। सामन्तवाद की कोई निश्चित परिभाषा करना कठिन है, क्योंकि विभिन्न देशों में उसका स्वरूप पृथक्–पृथक् रहा है, परन्तु इन सभी देशों में भूमि के विभाजन पर आधारित सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था अवश्य मौजूद थी। राजा–महाराजा अपनी शक्तियों और अधिकारों का प्रयोग अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों के माध्यम से करते थे। कालांतर में यही पदाधिकारी उस निश्चित भू–भाग के स्वामी बन बैठे और उन्हीं शक्तियों का प्रयोग करने लगे, जो राजा–महाराजा करते थे। इन्हीं पदाधिकारियों को सामंत कहा जाने लगा और यह व्यवस्था 'सामंतवाद' के नाम से जानी गई। वेब्स्टर ने सामंतवाद की परिभाषा करते हुये लिखा है कि, 'सामंती–व्यवस्था एक ऐसी प्रणाली है, जिसमें स्थानीय शासक उन शक्तियों का प्रयोग करते हैं, जो राजा, सम्राट या किसी केन्द्रीय सत्ता को प्राप्त होती है। इस प्रथा के अन्तर्गत राजा अपनी अधीनस्थ भूमि को अपने वीर सैनिकों अथवा अन्य राजभक्तों में बाँट देता है। उस वितरित भू–भाग के स्वामी ये व्यक्ति बन जाते थे। वे अपनी इच्छानुसार कृषकों से खेती करवाते हुये उनसे कर वसूल करते थे।'

प्रश्न–(2) पुनर्जागरण का क्या अर्थ है? संक्षेप में स्पष्ट कीजिये।

अथवा

पुनर्जागरण से आप क्या समझते हैं?

उत्तर– 'पुनर्जागरण' अथवा 'सांस्कृतिक पुनरोत्थान' भिन्न–भिन्न शब्द हैं परन्तु उनकी अभिव्यक्ति समान है। पुनर्जागरण का शाब्दिक अर्थ पुनः जागना है। इसी प्रकार पुनरोत्थान का शाब्दिक अर्थ पुनः उत्थान करना है अर्थात् प्राचीनकाल के समाज ने राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन मूल्यों का अथवा आदर्शों का निर्माण किया था। उनका विस्मरण मध्यकाल में हो गया तथा आधुनिक काल में ऐसी प्रेरक घटनायें घटीं जिन्होंने यूरोपीय समाज को झकझोरकर प्राचीन आदर्शों, मूल्यों को न केवल स्मरण कराया बल्कि समाज में नवीन आदर्शों को प्रस्थापित किया तथा विकास की प्रेरणा दी। अर्थात् अज्ञान से ज्ञान की ओर तथा अंधकार से प्रकाश की ओर चलने का निर्देश दिया। यही पुनर्जागरण, बौद्धिक जागरण या सांस्कृतिक पुनरोत्थान था।

लार्ड एक्टन के अनुसार, 'प्राचीन सभ्यता की पुनः खोज अथवा यूनानी साहित्य के पुनः अध्ययन एवं तज्जनित परिणामों को सांस्कृतिक पुनरोत्थान सूचित करता है।'

प्रश्न–(3) यूरोप में पुनर्जागरण काल में कला की उन्नति पर प्रकाश डालिये।

उत्तर– पुनर्जागरण काल में ऐसे मूर्तिकार, चित्रकार हुये जिनकी तुलना आज तक किसी से नहीं की जा सकती है। कलाकारों को उदार संरक्षकों का संरक्षण भी प्राप्त हुआ। पोप

निकोलस पंचम (1447), जूलियस द्वितीय (1503), पोप लियो दशम शिक्षा का प्रचार और प्रसार करने वाले थे। निकोलस ने तो वेटिकन चर्च में विख्यात पुस्तकालय और विद्यालय स्थापित किया। पुनर्जागरण काल में मध्ययुगीन समाज, धर्म और रूढ़ियों के प्रति जो असन्तोष उत्पन्न हुआ उसका सर्वाधिक रूप चित्र, मूर्ति और स्थापत्य कलाओं में मुखरित हुआ।

चित्रकला– इटली में चित्रकला का विकास अपनी चरम सीमा पर पहुँचा। रेफल लियोनार्डो–दी–विन्शी और माइकेल एंजिलो ने चित्रकला की नवीन प्रणालियों का विकास और प्रयोग किये। रोमन विचारधारा, दर्शन और आदर्शों को अपनी चित्रकला में अपनाया तथा इनका यथार्थ से संयोजन किया। वास्तुकला के सन्दर्भ में भी यही बात थी।

स्थापत्य– रोम की चाहे मूर्ति, भवन अथवा अन्य कोई भी वास्तुकला हो उन्होंने यूरोप में कई समूहों की समष्टि का रूप धारण किया। इसमें भी पर्याप्त मौलिकता एवं नवीनता भी थी। इटली के नगर फ्लोरेंस, रोम तथा वेनिस स्थापत्य अथवा चर्च, भवन, मूर्ति के केन्द्र थे। फ्लोरेंस का 'मेडिसी गिरजाघर' स्थापत्य कला का अद्‌भुत नमूना है। इसे प्राचीन प्रणाली से अलंकृत किया गया इसकी नकल पर रोम में इसी प्रकार की कला सर्वोच्च अवस्था में पहुँची। रोम का सेन्ट पीटर चर्च को ब्रेमनेट नामक कलाकार और इंजीनियर ने बनाया जो चरम उन्नति का प्रतीक बन गया।

प्रश्न–(4) धर्म सुधार आन्दोलन से आप क्या समझते हैं?

उत्तर– धर्म–सुधार आन्दोलन कैथोलिक चर्च की बुराइयों के खिलाफ एक प्रतिक्रिया और पुनः चर्च के आदर्श तथा नैतिक मूल्यों की प्रस्थापना के लिये एक जन–आन्दोलन था। राबर्ट इटगेंग ने इसके अभिप्राय के सम्बन्ध में लिखा है कि, 'प्रोटेस्टेंट धर्म–सुधार आन्दोलन एक जटिल और दूरगामी आन्दोलन था। पुनर्जागरण की भाँति वह भी मध्यकालीन सभ्यता के विरुद्ध सामान्य प्रतिक्रिया थी। लेकिन उसने राष्ट्रों के जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया, क्योंकि मनुष्य कला और साहित्य की अपेक्षा धर्म में अधिक रुचि रखते थे। इसने मध्ययुगीन कैथोलिक धर्म के ऊपर प्राचीन ईसाई धर्म की शिक्षा का प्रतिपादन किया और ईसा, पॉल तथा ऑगस्टाईन के उद्देश्यों पर बल दिया तथा आधुनिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया।'

गीजो के शब्दों में धर्म–सुधार आन्दोलन 'मानव–मस्तिष्क का चर्च की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध एक विद्रोह था।' शेविल के अनुसार, 'यह दोहरा आन्दोलन था जिसका उद्देश्य एक ओर तो ईसाइयों के जीवन का उत्थान करना था और दूसरी ओर पोप की सत्ता को कम करना था।' **एच.एल. फिशर** धर्म–सुधार आन्दोलन को 'चर्च के धर्म राज्य, पादरियों के विशेषाधिकार और अनेक जातियों के रूढ़िवादी एवं संकुचित दृष्टि के विरुद्ध एक आन्दोलन था।'

प्रश्न–(5) एंग्लिकनवाद पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

उत्तर– 'एंग्लिकनवाद' प्रोटोस्टेण्ट सम्प्रदाय का वह स्वरूप है जो 16वीं सदी के इंग्लैण्ड के राष्ट्रीय चर्च के लिये राज्य धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुआ तथा कालान्तर में अमरीका में 'एपिसकोपल चर्च' के नाम से जाना गया। इंग्लैण्ड के शासकों ने 14वीं शताब्दी से ही पोप का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया था। इंग्लैण्ड में प्रोटेस्टेण्टो की संख्या बढ़ती गयी। मेरी ट्यूडर के शासन काल में इन पर घोर अत्याचार किये गये परन्तु 1558 ई. में जब 'एलिजाबेथ' इंग्लैण्ड की शासिका बनीं तो उन्होंने मध्यम मार्ग अपनाया। उन्होंने 'सर्वोच्यता नियम' पारित कराया। इसके आधार पर एक नया चर्च बनाया गया जिसे 'एंग्लिकन चर्च' कहा गया। यह एंग्लिकन चर्च प्रोटेस्टेण्ट तथा कैथोलिक विचारधाराओं का सम्मिश्रण था जिससे अधिकांश लोग संतुष्ट हो गये।

प्रश्न–(6) पापमोचन पत्रों की बिक्री से आप क्या समझते हैं?

उत्तर– पोपों की विलासिता और फिजूलखर्ची प्रवृत्ति के कारण वैध–अवैध आय कम पड़ने लगी अतः पोप ने धन कमाने का नया तरीका ढूंढा। उसने 'पाप–मोचन–पत्रों' का विक्रय करना आरम्भ किया। यह पत्र श्रद्धा, प्रायश्चित् और विश्वास के आधार पर दिये जाते थे। परन्तु अब धन से इसे खरीदा जा सकता था।

मार्टिन लूथर ब्रिटेनवर्ग में धर्मशास्त्र का आचार्य और पादरी था। इसी नगर में सन् 1517 में पोप का प्रतिनिधि टेंटजेल 'पाप मोचन पत्रों' का विक्रय करने पहुँचा। टेंटजेल के शब्दों में, 'क्षमा–पत्रों के लिये दिये गये सिक्कों की खनक गूंजती है तो उस आदमी की आत्मा जिसके लिये धन दिया जाता है, सीधे स्वर्ग में प्रवेश कर जाती है।' टेंटजेल के ये शब्द लूथर के विचारों के विपरीत ही नहीं ईसा मसीह के सिद्धान्तों की हत्या करने वाले थे। इसके द्वारा वह अन्धविश्वास फैला रहा था और झूठ भी बोल रहा था।

इसके विरोध में 31 अक्टूबर, 1517 को 19 लघु निबन्ध लिखकर ब्रिटेनवर्ग चर्च के दरवाजे पर लगा दिये। जिनका आशय था, 'प्रायश्चित् कर लेने से ईश्वर क्षमा करता है, न कि क्षमा–पत्रों से और न धन से प्रसन्न होता है।' उसने पोप को कैथोलिक चर्च के दोषों को दूर करने के लिये लिखा। इसके पश्चात् लूथर की चर्च सुधार की सभी प्रार्थनाओं को पोप आदि ने ठुकरा दिया। अतः धर्म–सुधार की मांग और संघर्ष निरन्तर बढ़ता गया।

प्रश्न–(7) वाणिज्यवाद का आशय बताइये।

अथवा

वाणिज्यवाद से आप क्या समझते हैं?

उत्तर– बारहवीं शताब्दी से यूरोप में व्यापार की वृद्धि और नगरों का विकास हुआ। व्यापारियों ने अपने हितों की रक्षा के लिये संघ बना लिये जो गिल्ड कहलाते थे। धीरे–धीरे इन संघों ने व्यापार पर एकाधिकार करना आरम्भ कर दिया। ये अपने सदस्यों पर कठोर नियंत्रण रखते थे। इन संघों ने व्यापार के विकास में बड़ा योगदान किया परन्तु आधुनिक युग के प्रारम्भ में राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना होते ही इन संघों की उपयोगिता समाप्त हो गयी। अतः इनको समाप्त करने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी।

इसी आवश्यकता ने एक नई आर्थिक नीति या सिद्धान्त को जन्म दिया जो 'वाणिज्यवाद' के नाम से प्रसिद्ध है। इसका सार यह था कि राज्य के धन और शक्ति की वृद्धि के लिये शासन को व्यापार, उद्योग आदि क्रिया–कलापों का नियमन करना चाहिये और ऐसे उपाय करने चाहिये ताकि राष्ट्र आर्थिक जीवन में आत्मनिर्भर बन सके।

फ्रांसिस बेकन के शब्दों में, 'वाणिज्यवाद का मुख्य उद्देश्य था– व्यापार को आगे बढ़ाना तथा उसे समुचित ढंग से संतुलित करना, व्यापारिक माल के उत्पादन को प्रोत्साहन देना, समुचित कानूनों के माध्यम से अपव्यय और अति को रोकना, भूमि को सुधारना और उस पर अच्छी खेती करना तथा मूल्यों का विनियमन करना।' अन्य शब्दों में, 'वाणिज्यवाद एक आधुनिक शब्द है, जो कि सरकार की आर्थिक नीति विशेष रूप से व्यापार एवं वाणिज्य की नीति को नियमित करने को प्रदर्शित करता है।'

प्रश्न–(8) कोल्बर्टवाद क्या है?

उत्तर– जीन बैपटिस्ट कोल्बर्ट (1619–1683)– फ्रांस के वित्त मंत्री कोल्बर्ट का वाणिज्यवाद को विकसित करने तथा बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान रहा। वह निश्चय ही वाणिज्यवाद के सबसे अगुआ प्रतिपादकों में थे। कालान्तर में वाणिज्यवाद इसी के नाम पर 'काल्बर्टवाद' भी कहा जाने लगा। उसने फ्रांस की आर्थिक नीति का निर्माण किया तथा सभी आर्थिक कार्य–कलापों पर पूर्ण जानकारी सत्ता स्थापित करने का प्रतिपादन किया। उसने जो विचार सामने रखे उनका सारांश है–

(1) सड़कों व नहरों का निर्माण करके घरेलू अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाना।
(2) अनाज के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाना।
(3) शक्तिशाली व्यापारिक कम्पनियों की स्थापना करना।
(4) गिल्डों पर सरकारी नियंत्रण स्थापित करना एवं
(5) शक्तिशाली जहाजीबेड़े का निर्माण करना।

कोल्बर्ट चाहता था कि फ्रांस विदेशी उत्पादकों से पूर्णतः मुक्त रहे। उसने उत्पादकों से उत्पादन बढ़ाने को कहा ताकि आत्मनिर्भरता की स्थिति प्राप्त की जा सके। उसने एक सुदृढ़ नौसेना और व्यापारिक बेड़े का गठन किया, फ्रांसीसी उपनिवेशों का विस्तार किया और सफल व्यापारिक कम्पनियों को हर सम्भव बढ़ावा दिया। उसका मत था कि उत्पादकों को देश में धन लाना चाहिये, जो कि व्यापार-व्यवसाय का एकमात्र उद्देश्य है और राज्य की शक्ति में विस्तार लाने वाला है। लेकिन उसके सभी उपाय अपना उद्देश्य खो बैठे और अन्ततः राज्य के सर्वोच्च नियंत्रण में अभिव्यक्त हुये।

इकाई-2

निबंधात्मक प्रश्नोत्तर-

प्रश्न-1. औद्योगिक क्रान्ति से क्या अभिप्राय है? इसके कारण और परिणामों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

अथवा

औद्योगिक क्रान्ति से आप क्या समझते हैं? इसके क्या परिणाम हुये?

अथवा

यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के विकास की व्याख्या कीजिये।

अथवा

इंग्लैण्ड में सर्वप्रथम औद्योगिक क्रांति होने के क्या कारण थे?

अथवा

इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति के प्रारम्भ होने के कारणों का वर्णन कीजिये।

अथवा

'औद्योगिक क्रांति' के प्रभावों का वर्णन कीजिये।

उत्तर- 18वीं शताब्दि के अन्तिम भाग में यूरोप में अनेक आश्चर्यजनक औद्योगिक तथा यापार में परिवर्तन हुआ। इन परिवर्तनों से यूरोप में राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक परिवर्तन हो गया तथा एक नवीन प्रकृति का जन्म हुआ। औद्योगिक क्रान्ति का अर्थ इसी के प्रकाश में समझना होगा।

औद्योगिक क्रान्ति का अभिप्राय- तीव्र गति से विशाल और व्यापक पैमाने पर परिवर्तन को कहते हैं। राजनीतिक क्षेत्रों में क्रान्तियों से तो सभी परिचित हैं परन्तु इंग्लैण्ड में राजनैतिक क्रान्ति नहीं, औद्योगिक क्रान्ति सम्पन्न हुई जिसने मानव-जीवन के प्रत्येक कार्य और व्यवहार, संगठन और विचार, राजनीतिक और समाज को प्रभावित किया। इस क्रान्ति ने उत्पादन के उपकरणों और तरीकों में आमूल परिवर्तन कर दिये तथा शिल्प में भी परिवर्तन किये। इस क्रान्ति में मनुष्यों और पशुओं के श्रम को बचाकर मशीनों का प्रयोग किया जाने लगा। सर्वप्रथम यह क्रान्ति इंग्लैण्ड तथा फिर विश्व में फैल गई और इसकी निरन्तरता आज भी बनी हुई है। इन सभी परिवर्तनों को औद्योगिक क्रान्ति कहा जाता है।

एडवर्ड ने लिखा है कि, 'औद्योगिक प्रणाली तथा श्रमिकों के स्तर में होने वाले परिवर्तनों को ही औद्योगिक क्रान्ति की संज्ञा दी जाती है।'

हैजन ने लिखा है कि, 'औद्योगिक क्रान्ति का अर्थ घरेलू उत्पादन-प्रणाली को कारखानों की उत्पादन प्रणाली में बदल देना था।'

कारण- इंग्लैण्ड और यूरोपीय देशों में आर्थिक दशाओं में बहुत भिन्नतायें नहीं थीं। फिर भी इंग्लैण्ड की स्थिति जनसंख्या वृद्धि, ऊर्जा के साधनों, पूँजी तथा बाजार में वस्तु की माँग तथा इनके साथ-साथ सरकार और जनता की दृष्टि में अन्य देशों की तुलना विकास की में अधिक अच्छी स्थिति थी। इसलिये इंग्लैण्ड में सर्वप्रथम औद्योगिक क्रान्ति सम्पन्न हुई।

1. **इंग्लैण्ड की भौगोलिक स्थिति-** इंग्लैण्ड की भौगोलिक दशा सामुद्रिक यातायात, कोयला व लोहे की खदानों, नदियों के कारण उपयुक्त थी। उसके समुद्री तट कटे-फटे तथा यूरोप से सर्वथा पृथक्, सुरक्षित और सुविधापूर्ण थे। इस कारण इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति सर्वप्रथम हुई।
2. **जनसंख्या वृद्धि-** इंग्लैण्ड में पूर्व में 40 प्रतिशत जनसंख्या थी तथा 18वीं शताब्दि में 50 प्रतिशत जनसंख्या बढ़ चुकी थी। इस जनसंख्या के लिये खाद्य-सामग्री का अभाव था। इसके लिये दो उपाय किये गये थे। प्रथम उपाय था कि देश में उत्पादन बढ़ाने का प्रयत्न किया गया तथा द्वितीय उपाय था कि जनसंख्या को उपनिवेशों में भेजा गया। इन दोनों के कारण देश में औद्योगिक क्रान्ति को बल मिला।
3. **कृषि-क्रान्ति और बेरोजगारी-** औद्योगिक-क्रान्ति की पृष्ठभूमि में कृषि-क्रान्ति की भूमिका भी अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। इंग्लैण्ड में इस समय भूमिहीन किसानों की संख्या और अन्य जनसंख्या भी बढ़ गई थी। अतः अतिरिक्त बेकार पड़ी भूमि का उपयोग किया जाने लगा। अंग्रेजी यात्री विश्व के देशों में व्यापार के लिये घूमते रहते थे तथा उनका उपनिवेशों में अस्थाई निवास भी होता था। अतः इन उपनिवेशों में विशेषकर भारत में उन्नत कृषि के तरीके, रबी-खरीफ की फसलें, कतार में बीज बोना, खाद आदि के प्रयोग को उन्होंने देखा तथा उन्होंने अपनी सरकार तथा जनता को इसके विषय में बताया। अतः सरकार ने अनेक अनुसंधान करवा कर कृषि की उपजों को बढ़ाने में सफलतायें प्राप्त कीं तथा अतिरिक्त उपज का कारखानों में मिल चलाने तथा व्यापार करने में मदद मिली।
4. **राष्ट्रीयता की भावना और राष्ट्रीय प्रतियोगिता-** 1776 में अमेरिकी क्रान्ति और 1789 की फ्रेंच क्रान्ति ने यूरोपीय देशों में राष्ट्रीय संघर्ष की उत्पत्ति की। इसके साथ ही निर्धनों की दशा, इंग्लैण्ड में अनेक विचारकों ने इंग्लैण्ड में हुये अनेक हिंसक दंगों ने राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार-प्रसार किया। अतः 'उत्पादन सम्पूर्ण देश के लिये' यह विचार इंग्लैण्ड में उत्पन्न हुआ तथा अन्य देश से प्रतियोगिता और संघर्ष में भी राष्ट्रीय भावनाओं का उपयोग किया जाने लगा। अतः राष्ट्रीय भावनाओं ने औद्योगिक क्रान्ति को प्रोत्साहित किया।
5. **इंग्लैण्ड के व्यापार में वृद्धि-** औद्योगिक क्रान्ति के लिये इंग्लैण्ड के व्यापार में वृद्धि एक महत्वपूर्ण कारण था। इंग्लैण्ड के माल की माँग देश तथा यूरोप एवं विश्व के

अनेक देशों में बढ़ी। यद्यपि व्यापारिक प्रतियोगिता में पुर्तगाल, फ्रांस, हॉलैण्ड भी थे परन्तु वे अपनी आन्तरिक और यूरोपीय समस्याओं में उलझे थे।

इंग्लैण्ड भारत से मसाले, चाय, कपास, जूट आदि ले जाकर यूरोप में बेचता था। इंग्लैण्ड की भारत तथा अन्य उपनिवेशों से माँग के तीन कारण थे– (i) स्वदेशी (इंग्लैण्ड की स्वयं की माँग), (ii) विदेशों में इंग्लैण्ड के माल की माँग और खपत, (iii) इंग्लैण्ड की सरकार की आवश्यकता से उत्पन्न माँग। इंग्लैण्ड की प्रथम माँग उसकी जनसंख्या वृद्धि के कारण थी तथा दूसरी माँग फ्रांस आदि से प्रतियोगिता तथा लाभ की दृष्टि से थी। तीसरी माँग इंग्लैण्ड की सरकार अपनी आर्थिक नीति राष्ट्र के आर्थिक हितों को ध्यान में रखकर बनाने लगी थी। अतः आयात–निर्यात नीति से उद्योगों को प्रोत्साहन मिला।

6. **यातायात और सम्पत्ति–** 1760 के पूर्व इंग्लैण्ड में उद्योग तथा कारखानों का अभाव था तथा वह अपनी एवं यूरोप की आवश्यकता को उपनिवेशों का शोषण करके पूर्ति करता था तथा लाभ कमाता था। इस कारण उसके जहाजी बेड़े अन्य देशों की तुलना में अधिक संख्या में और अधिक अच्छे और कुशल थे। इसके कारण वह सुदूर उपनिवेशों से कच्चा माल लाने में तथा अपने देश में कारखाने (लोहा, वस्त्र आदि) खोलने में सक्षम हो गया। कारखाने बनने के बाद कच्चे माल की विदेशों से पूर्ति और यातायात तथा बाजार की एक आवश्यकता बन गई।

भारत, अफ्रीका आदि से व्यापार करते–करते इंग्लैण्ड के पूँजीपति अधिक धनी और सम्पन्न हो गये तथा उनकी प्रवृत्ति भी और अधिक धन कमाने के लिये पूँजी को उत्पादक कार्यों में (कारखानों) लगाने की रही अतः देश में उद्योगों का विकास हुआ।

7. **वैज्ञानिक आविष्कार–** लगभग 18वीं शताब्दी के आरम्भ से इंग्लैण्ड में अनेक वैज्ञानिक अनुसंधान हुये जिससे औद्योगीकरण को बल मिला। फ्लाइंगशटल, वाटरफ्रेम, पावरलूम, वाष्पयन्त्र आदि ने औद्योगिक क्रांति को तीव्रता प्रदान की।

इन आविष्कारों ने औद्योगिक उत्पादन में एक अभूतपूर्व क्रान्ति ला दी।

औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव (परिणाम)– औद्योगिक क्रान्ति यद्यपि सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में सम्पन्न हुई तथा उसके पश्चात् सम्पूर्ण यूरोप में फैली। **अरनॉल्ड टायनवी** ने औद्योगिक क्रान्ति का 'एक निरन्तर विकास की प्रक्रिया' और **रेम्जेमेयोर** ने 'बिना शोर के शान्तिपूर्वक होने वाली क्रान्ति' बताया है जिसने यूरोप और एशिया पर प्रत्यक्ष और परोक्ष अच्छे एवं बुरे प्रभाव डाले। इसने सामाजिक जीवन के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक पहलुओं पर प्रभाव डाला एवं परिवर्तन किये।

1. राजनैतिक प्रभाव– औद्योगिक क्रान्ति का क्षेत्र यद्यपि उद्योग, कारखाने और श्रमिकों से सम्बन्धित था। परन्तु इसने राजनीति को अनेक प्रकार से प्रभावित करना आरम्भ किया। समाज में प्रमुख वर्ग पूँजीपति और श्रमिक वर्गों का उदय हुआ। इनमें दोनों में राजसत्ता पर अधिकार की प्रतियोगिता आरम्भ हो गई। चुनाव और सरकार को पूँजीपति अपने लाभ के

लिये धन से प्रभावित करने लगे। श्रमिकों ने समाजवादी दलों की स्थापना कर दी जो श्रमिकों की राजनैतिक लड़ाई लड़ने लगे।

औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव (परिणाम)
1. राजनैतिक प्रभाव
2. आर्थिक प्रभाव
3. सामाजिक प्रभाव
4. क्रान्ति का प्रसार
5. साम्राज्यवाद और उपनिवेशों का शोषण

जैसे– इंग्लैण्ड में चार्टिस्ट आन्दोलन चला तो जर्मनी में समाजवादी संस्था ने संघर्ष किया। श्रमिकों के संगठन आदि ने सरकार को श्रमिक हितैषी कानूनों को बनाने के लिये बाध्य किया। विभिन्न देशों ने अपनी नीतियाँ और अधिनियम क्रान्ति को ध्यान में रखकर बनाना आरम्भ कर दिया। अन्य देशों से प्रतियोगिता के कारण संघर्ष भी हुये। एन्शन के अनुसार इंग्लैण्ड में संसदीय सुधार औद्योगिक क्रान्ति के ही कारण हुये।

2. आर्थिक प्रभाव– औद्योगिक क्रान्ति में नवीन आविष्कारों के कारण खदानों की खोज हुई, कारखानों की आवश्यकता हुई तथा इनके लिये बड़ी मात्रा में कच्चे माल की आवश्यकता हुई। इसके कारण उपनिवेशों का तथा श्रमिकों का शोषण भी होने लगा।

हजारों श्रमिक मशीनों के कारण बेकार होने लगे, श्रमिकों की आर्थिक समस्यायें उत्पन्न होने लगीं। अनेक बैंकों की स्थापना हुई। बड़े पैमाने पर उत्पादन से वस्तुओं के दाम भी कम होने लगे तथा सामान्य जनता के लिये उपयोगी वस्तुयें अब दुर्लभ नहीं रह गईं। श्रमिकों ने संगठित होकर मजदूरी बढ़ाने के लिये आन्दोलन करना आरम्भ किया।

3. सामाजिक प्रभाव– औद्योगिक क्रान्ति के काल में पूँजीपति और श्रमिक वर्ग में असमानता उत्पन्न हुई। परिणामस्वरूप श्रमिकों में असंतोष उत्पन्न हुआ। परन्तु कारखानों में एक साथ कार्य करने से उनमें अपनी संख्या वाला तथा सामूहिक चेतना का भी अहसास हुआ। क्रान्ति में पूँजीपतियों ने श्रमिकों से 16–16 घण्टे काम लिया। बच्चों को भी काम पर लगाया। कारखानों में दुर्गन्ध, हानिकारक रसायनों के मध्य तथा अधिकारियों की मार के भय में श्रमिकों को कार्य करना पड़ता था। श्रमिकों की रहने की दशायें बहुत खराब थीं। कार्यकाल में अंग–भंग, रोगी होने या घायल होने पर मुआवजा नहीं दिया जाता था, बल्कि नौकरी से ही अलग कर दिया जाता था। **सिडनीबेब** के अनुसार, 'औद्योगिक क्रान्ति ने श्रमिकों को अपने ही देश में एक भूमिहीन परदेशी बना दिया था।'

4. क्रान्ति का प्रसार– यूरोपीय परस्पर संघर्षों तथा नैपोलियन के साथ संघर्ष में फ्रांस, जर्मनी, रूस आदि देशों में उद्योगों का विनाश बहुत अधिक हो चुका था। नैपोलियन की पराजय के बाद तथा इंग्लैण्ड की प्रायद्वीपीय युद्धों में विजय और आर्थिक प्रगति तथा औद्योगीकरण को देखकर यूरोप के अन्य देशों ने भी अपने–अपने औद्योगीकरण की ओर ध्यान दिया।

(i) **अमेरिका–** अमेरिका के पूँजीपतियों ने विशाल फार्म और कारखाने स्थापित किये। कारखानों में कार्य करने के लिये अफ्रीका से गुलाम पकड़कर लाये जाने लगे। स्वतंत्रता के बाद अमेरिका में औद्योगिक उन्नति बहुत हुई। अमेरिका कृषि–

उपकरणों तथा उद्योगों के लिये इस्पात, बिजली तथा भारी मशीनी साधनों का निर्यात करने लगा।

(ii) **फ्रांस**– फ्रांस में 1830 से 1848 में औद्योगिक प्रगति अधिक हुई। फ्रांस के राजा लुई फिलिप ने उद्योगपतियों व उद्योगों को प्रोत्साहन दिया। उसने श्रमिकों आन्दोलनों को दबाया तथा रेलों और अनेक यातायात साधनों का विकास किया।

(iii) **जर्मनी**– जर्मनी में औद्योगिक विकास कुछ विलम्ब से हुआ। जर्मनी आरम्भ में एकीकरण की समस्या में लगा रहा। 1870 के पश्चात् बिस्मार्क ने औद्योगीकरण कर जर्मनी को शक्तिशाली बनाया।

(iv) **रूस**– रूस के जार एलेक्जेण्डर द्वितीय ने कृषक मुक्ति नियम बनाया। एलेक्जेण्डर तृतीय ने देश में उद्योगों को प्रोत्साहन दिया। उसने विदेशों में लोगों को ट्रेनिंग दिलवाई और देश में मशीनें मंगवाईं। रूस में वास्तविक प्रगति तो 1917 के पश्चात् ही हो पाई।

(v) **जापान**– जापान ने एशिया और यूरोप (इंग्लैण्ड को छोड़कर) में सर्वाधिक औद्योगिक विकास किया तथा जापान ने लघु उद्योग के माध्यम से विशाल उद्योगों का निर्माण किया। मोटरकार, रेडियो, ट्रांजिस्टर, कैमरे, घड़ियाँ, खिलौने आदि में वह विश्व का अग्रणी देश बन गया। जापान की विशेषता थी कि उसने औद्योगीकरण के साथ–साथ अपनी जनता को बेकार भी नहीं होने दिया।

5. साम्राज्यवादी और उपनिवेशों का शोषण– अपने देश के कारखानों को चलाने के लिये इंग्लैण्ड ने विशेषकर भारत का बहुत बुरी तरह से शोषण किया। बहुत कम दामों पर भारतीय किसानों को मारपीट कर कपास खरीदकर इंग्लैण्ड ले जाकर वहाँ से वस्त्र बनाकर मंहगे दामों पर विश्व में अंग्रेज बेचते थे। भारतीय उद्योगों और शिल्प को नष्ट करने के लिये अंग्रेज सरकार ने अनेक नियम बनाये। इंग्लैण्ड की शोषक साम्राज्यवादी नीति के कारण ही अमेरिका से उसका संघर्ष हुआ। इंग्लैण्ड के साथ–साथ अन्य यूरोपीय देश (फ्रांस, जर्मनी, हॉलैण्ड, स्वीडन) भी भारत, एशिया, अफ्रीका में अपने–अपने उपनिवेश बनाने लगे तथा उन देशों के स्वर्ण, खनिज आदि लूटने लगे।

निष्कर्ष– औद्योगिक क्रान्ति ने जहाँ अनेक समस्याओं को सुलझाया वहीं अनेक नवीन समस्याओं को भी जन्म दिया। इसने कृषि, वस्त्र, मशीन तथा दैनिक उपभोग की वस्तुओं में बहुत अधिक वृद्धि की परन्तु बेकारी, निर्धनता, श्रमिक आन्दोलन, पूँजीवादी शोषण, स्वास्थ्य आदि की समस्याओं को भी जन्म दिया जिससे समाजवाद की उत्पत्ति हुई।

प्रश्न–2. औद्योगिक क्रान्ति के सामाजिक प्रभाव को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– आधुनिक युग के आरम्भ में यूरोप में हुये पुनर्जागरण ने समाज में मध्यवर्ग और मध्यवर्गीय मूल्यों की स्थापना करके एक नये युग का आरम्भ किया था लेकिन लम्बे समय तक मध्यवर्ग की शक्ति उजागर नहीं हो पायी थी। औद्योगिक क्रान्ति ने इस वर्ग की शक्ति को अभिव्यक्त किया। अब वैज्ञानिकों, कुशल शिल्पियों, प्रबन्धकों आदि का प्रभाव बढ़ गया। यदि फ्रांस की राज्य क्रान्ति ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं समानता का पाठ पढ़ाया तो इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का क्रियात्मक उपयोग सम्भव बना दिया। औद्योगिक

क्रान्ति के बाद श्रमिकों की बढ़ती हुयी शक्ति ने एक ऐसी सामाजिक चेतना को जन्म दिया जिसने व्यक्ति के सम्मान एवं उसके मूलभूत अधिकारों की सफलतापूर्वक माँग की।

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप संयुक्त परिवार प्रणाली को काफी आघात पहुँचा। उत्पादन की घरेलू व कुटीर प्रणाली के स्थान पर फैक्ट्री प्रणाली आने से मालिक व मजदूरों के परस्पर संघर्ष, श्रमिकों के शोषण, श्रमिकों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के ह्रास, औद्योगिक नगरों व केन्द्रों की जनसंख्या बढ़ने से उनमें स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक समस्यायें उत्पन्न हो गयीं।

औद्योगिक क्रान्ति ने मजदूरों की संख्या में भारी वृद्धि की। मजदूरों के पास मजदूरी के अतिरिक्त आजीविका का कोई अन्य साधन न था और उद्योगपति उनका शोषण करने में नहीं हिचकते थे। श्रमिकों को अमानुषिक एवं निराशाजनक परिस्थितियों में काम करना पड़ता था। उन्हें दुर्गन्ध भरे वातावरण में रहना पड़ता था। 1833 ई. की इंग्लैण्ड की पार्लियामेन्ट रिपोर्ट में यह बताया गया कि अस्वास्थ्यप्रद वातावरण में रहने एवं काम करने के कारण ही श्रमिकों के स्वास्थ्य में गिरावट हुयी थी। श्रमिकों को सप्ताह में कोई छुट्टी का दिन नहीं मिलता था। उनको 14 से 16 घण्टे प्रतिदिन काम करना पड़ता था। इतना काम करने के बाद भी उन्हें जीवन की मूलभूत आवश्यकतायें पूरी करने लायक पारिश्रमिक भी नहीं मिलता था। स्त्रियों एवं बच्चों से भी पूरा काम लिया जाता था, जबकि उन्हें पारिश्रमिक पुरुषों से कम मिलता था। कारखानों में अकुशल श्रमिक भर्ती करना नियम–सा बन गया था। बच्चों और औरतों को प्राथमिकता दी जाती थी, क्योंकि वे सस्ते तथा आसानी से उपलब्ध हो जाते थे। बच्चों को दिन में सोलह घण्टे तक खटना पड़ता था। गरीब अपने बच्चों को कारखाना मालिकों को सौंप देते थे ताकि उनकी परवरिश के बोझ से मुक्त हो जायें। बच्चों को मशीनों से जंजीरों द्वारा बाँधने से भी वे नहीं चूकते थे ताकि वे भाग न सकें। बच्चों से अमानुषिक स्तर पर काम लिया जाता था। दुर्भाग्य से आज भी दुनियाँ के कई देशों में बाल–श्रमिकों का शोषण हो रहा है। यदि मशीनों पर कार्य के दौरान किसी मजदूर को चोट पहुँचती या मृत्यु हो जाती थी तो कारखाना मालिक कोई दायित्व स्वीकार नहीं करते थे। इस प्रकार नवोदित श्रमिक–वर्ग की दशा दयनीय बनी हुयी थी। परन्तु आधुनिक इतिहासकारों ने यह बताने की चेष्टा की है कि मजदूरों की दुर्दशा उन परिस्थितियों का परिणाम थी, जिनका इस क्रान्ति के आगमन से कोई सम्बन्ध न था। श्रमिकों की बिगड़ती दशा का कारण जनसंख्या में वृद्धि था। जनसंख्या में वृद्धि की प्रवृत्ति क्रान्ति से पूर्व ही परिलक्षित होने लगी थी। इसके अतिरिक्त औद्योगिक क्रान्ति का समय निरन्तर युद्धों का समय था, जिसके कारण वैज्ञानिक तथा आर्थिक विकास के लाभ सामने नहीं आ पाये। अठारहवीं सदी के अन्तिम तीन दशकों और उन्नीसवीं सदी के प्रथम दो दशकों में इंग्लैण्ड में फसल अच्छी नहीं हुयी थी, जिससे व्यापार में मन्दी आ गयी, वेतन कम हो गये, बेरोजगारी बढ़ी, साथ ही जनता के कष्ट भी बढ़ गये। इन सभी तथ्यों को मद्देनजर रखते हुये भी इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भिक वर्षों में श्रमिकों की दशा शोचनीय थी।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य से उन्नीसवीं सदी के अन्त तक यूरोप की जनसंख्या में तीन गुनी वृद्धि हुयी। जनसंख्या में हुयी इस वृद्धि को औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम कहा जा सकता है। चिकित्सा–क्षेत्र में हुयी महत्त्वपूर्ण खोजों के कारण मृत्युदर में कमी होने से भी

जनसंख्या में वृद्धि हुयी थी, उसके कारण अधिकांश लोगों को पर्याप्त मात्रा में भोजन मिलने लगा और वे अधिक स्वस्थ रहने लगे। इस तथ्य पर इतिहासकार डेविड थॉमसन ने प्रकाश डाला है। जनसंख्या में वृद्धि से अनेक नयी सामाजिक समस्यायें उत्पन्न हुयीं। जनसंख्या का नगरों में केन्द्रित होने से आवास समस्या बढ़ी। बेरोजगारी में वृद्धि हुयी। जनस्वास्थ्य की समस्या उत्पन्न हुयी। प्रदूषित वातावरण, गन्दी बस्तियों तथा शुद्ध पेयजल की व्यवस्था न होने से अनेक रोगों का प्रकोप बढ़ा।

इतिहासकार **सी. डी. एम. केटलबी** ने लिखा है कि "औद्योगिक क्रान्ति से न तो विशेषाधिकार युक्त वर्ग उत्पन्न हुआ, न इससे गरीबी आयी और न इससे वर्ग विभेदों को ही प्रश्रय मिला। किन्तु औद्योगिक क्रान्ति ने निश्चित रूप से ऐसे साधन उत्पन्न कर दिये थे, जिनसे कुछ विशेषाधिकार और शक्तियाँ एक वर्ग के हाथों में केन्द्रित हो गयीं। दूसरी ओर ऐसे मनुष्यों का वर्ग था जो पैसे पर अपना श्रम बेचता था, जो अपनी जीविका और अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अथवा पूँजी, लालसाओं, साहस और औद्योगिक प्रशिक्षण के अभाव के कारण दूसरों की आर्थिक अधीनता में रहने के लिये मजबूर था।" श्रमिकों की बिगड़ती हुयी हालत ने उन्हें ट्रेड यूनियन अथवा मजदूर संघ बनाने के लिये बाध्य किया। मजदूरों के ऊपर जो अत्याचार हो रहे थे, उन अत्याचारों से मुक्ति पाने का यह एक सुगम उपाय था। मजदूरों ने समझ लिया था कि एकता में शक्ति है और व्यक्तिगत प्रयत्न की अपेक्षा सामूहिक रूप से काम करना अधिक प्रभावशाली होगा। एक ही व्यवसाय में लगे हुये मजंदूरों का संगठन बनाना आसान भी था।

औद्योगीकरण के फलस्वरूप जिन नये वर्गों का जन्म हुआ वे अपने अधिकारों की माँग करने लगे। श्रमिक-वर्ग के साथ-साथ स्त्रियों की ओर से भी नयी माँगें आने लगीं और इन दोनों वर्गों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही बदल गया। अठारहवीं सदी के अन्तिम चरण से लेकर उन्नीसवीं सदी के मध्य तक के सुधारकों एवं विचारकों ने लगातार सिफारिश की कि स्त्रियों को अधिक राजनीतिक एवं व्यावसायिक सुविधायें दी जायें ताकि वे स्वतन्त्र जीवन अनुभव कर सकें। इन सुधारकों एवं विचारकों में अठारहवीं सदी की मेरी वुल्स्टोनक्रेफ्ट थी तथा उन्नीसवीं सदी का जॉन स्टुअर्ट मिला। प्रथम विश्व युद्ध से पहले स्त्रियों के लिये अनेक नये स्कूल और कॉलेज खुले। धीरे-धीरे सभी व्यापार एवं व्यवसाय के द्वार भी स्त्रियों के लिये खुल गये। विवाहिता स्त्रियों को आज्ञा मिल गयी कि वह अपने स्वतन्त्र व्यवसाय से सम्पत्ति अर्जित कर सकती है। इस प्रकार एक सामान्य स्त्री भी अपने जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तनों से लाभ उठा सकती थी।

प्रश्न–3. उपनिवेशवाद से आप क्या समझते हैं? उपनिवेशवाद की स्थापना के कारणों की विवेचना कीजिये।

अथवा

उपनिवेशवाद के प्रारम्भ पर एक निबन्ध लिखिये।

उत्तर– 1453 ई. में कुस्तुनतुनियां के पतन और तुर्की के पूर्वी यूरोप में अग्रसर होने के कारण यूरोपीय व्यापारिक सम्बन्धों में बाधा पड़ी, उन सम्बन्धों को अन्य मार्गों द्वारा बनाये रखने के लिये भौगोलिक खोजों को बल मिला। इस समय उपनिवेश स्थापना की बात नहीं थी, लेकिन नवीन मार्गों और उनके द्वारा माल के आयात-निर्यात ने अनेक यूरोपीय देशों के बीच

उपनिवेशों की स्थापना और उनके विस्तार की आकांक्षा को जगाया। 1492 ई. में कोलम्बस ने अटलांटिक महासागर पार करके अमेरिका का पता लगाया। इस कार्य में कोलम्बस को स्पेनी शासकों का सहयोग मिला। इसी प्रकार पुर्तगाली संरक्षण के परिणामस्वरूप वास्कोडिगामा भारत के कालीकट बन्दरगाह पर पहुंचा। इससे भारत पहुंचने के लिये नवीन जलमार्ग का पता चला। स्पेन और पुर्तगाल के इन सफल प्रयासों का प्रभाव यूरोप के दूसरे राष्ट्रों पर भी पड़ा। नई भौगोलिक खोजों के प्रयत्न आरम्भ हुये। इन आविष्कारों ने विभिन्न रूप से मानव सभ्यता को प्रभावित किया।

उपनिवेशों की स्थापना के कारण– स्टुअर्ट काल में इंग्लैण्ड ने अनेक उपनिवेशों की स्थापना की तथा अपने साम्राज्य का विस्तार किया। इस काल में उपनिवेशों की स्थापना के अग्रलिखित कारण थे–

(1) **समृद्धि की लालसा–** स्पेन और पुर्तगाल के अनेक उपनिवेश थे, जिनके कारण ये देश बहुत समृद्ध हो गयें। अंग्रेज इन देशों की समृद्धि को देखते थे और स्वयं भी समृद्ध होना चाहते थे। अंग्रेजों ने स्पेन एवं पुर्तगाल आदि देशों की समृद्धता के कारणों को समझा तथा स्वयं भी उपनिवेशों की स्थापना के लिये प्रयत्नशील हो गये।

(2) **व्यापारिक दृष्टिकोण–** ट्यूडर काल में इंग्लैण्ड में शान्ति की स्थापना के साथ ही उद्योग एवं व्यापार में पर्याप्त उन्नति हुई, किन्तु अपना सामान बेचने के लिये अंग्रेजों के पास बाजार न थे, अतः स्टुअर्ट काल की स्थापना तक अंग्रेज उपनिवेशों की आवश्यकता अनुभव करने लगे, जिससे स्पेन, पुर्तगाल, फ्रंस आदि देशों के समान वे भी कच्चा माल प्राप्त कर सकें तथा अपने यहां निर्मित सामान को इन उपनिवेशों में बेच सकें।

(3) **इंग्लैण्ड की जलवायु–** इंग्लैण्ड को अनेक ऐसी वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती थी जिनको अंग्रेज जलवायु अथवा अन्य कारणों से अपने देश में नहीं पैदा कर सकते थे, जिससे इन वस्तुओं की प्राप्ति के लिये उन्हें विदेशों का सहारा लेना होता था। गर्म मसाले, तम्बाकू, शक्कर आदि ऐसी ही वस्तुयें थीं। अंग्रेज चाहते थे कि उन्हें ऐसे प्रदेश प्राप्त हो जायें जहाँ इन वस्तुओं की खेती की जा सके। उपनिवेशों की स्थापना ही इस समस्या का एकमात्र समाधान हो सकता था।

(4) **जनसंख्या में वृद्धि–** व्यापार एवं वाणिज्य के विकास के साथ-साथ इंग्लैण्ड में जनसंख्या में भी वृद्धि हुई, अतः इस दृष्टिकोण से भी उपनिवेशों की आवश्यकता अनुभव की गयी।

(5) **धार्मिक अत्याचार–** इंग्लैण्ड में धर्म-सुधार आन्दोलन तथा उसके बाद राजाओं के धार्मिक अत्याचारों से तंग आकर अनेक व्यक्ति इंग्लैण्ड छोड़कर भाग गये तथा नये स्थानों पर जाकर बस गये। इस प्रकार इन स्थानों पर भी उपनिवेश स्थापित हो गये।

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न–(1) सर टॉमस मन के विचारों पर प्रकाश डालिये।

उत्तर– टॉमस मन (1571–1641)– यह इंग्लैण्ड का प्रसिद्ध व्यापारी और ईस्ट इण्डिया कम्पनी का एक निदेशक था। उसने कई पुस्तकें लिखीं। इसे हम आंग्ल वणिकवादियों का प्रतिनिधि मान सकते हैं, जो कि व्यापार का अनुकूल सन्तुलन प्राप्त करने के लिये अपने देश के विदेशी व्यापार का निर्गमन करना चाहते थे। वह धातुओं के निर्यात पर प्रतिबन्ध कदापि नहीं लगाना चाहता था परन्तु व्यापार का अनुकूल सन्तुलन प्राप्त करके द्रव्य बढ़ाना चाहता था। उसने खजाने के संग्रह का समर्थन किया जिससे देश की सुरक्षा व्यवस्था सुदृढ़ हो सके। विविध आर्थिक विचारों के उचित समन्वय एवं तर्कशीलता ने टॉमस मन को आंग्ल वणिकवाद का सर्वोत्तम प्रवक्ता बना दिया। मन का यह विचार आज उतना ही सार्थक है कि निर्यातों का मूल्य बढ़ाने के लिये घरेलू वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है। इससे न केवल माल का मूल्य वरन् बीमा और जहाजी किराये के रूप में व्यापारिक लाभ भी प्राप्त होंगे।

मन के आर्थिक कार्यक्रम में फालतू जमीन का कृषिकार्यों में प्रयोग, आयातित विदेशी उत्पादों के अत्यधिक उपभोग पर रोक, देशी जहाजों का उपयोग, अधिकाधिक निर्यात, राष्ट्रीय सम्पदा का मितव्ययी प्रयोग, निर्धन एवं बेकारों को काम, तटीय समुद्रों में हॉलैण्ड को मछली पकड़ने देने की जगह इंग्लैण्ड में मछली पकड़ने के व्यवसाय को बढ़ावा, इंग्लैण्ड का एक अन्तर्राष्ट्रीय वितरक केन्द्र के रूप में विकास, दूरस्थ पूर्वी देशों के साथ व्यापार को बढ़ावा, निर्यात हेतु आयात को छूट आदि शामिल थे। इनका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अनुकूल शेष प्राप्त करना और राज्य के कोष में वृद्धि करना था।

प्रश्न–(2) औद्योगिक क्रान्ति के आर्थिक और सामाजिक प्रभावों को संक्षेप में समझाइये।

उत्तर– आर्थिक प्रभाव– औद्योगिक क्रान्ति में नवीन आविष्कारों के कारण खदानों की खोज हुई, कारखानों की आवश्यकता हुई तथा इनके लिये बड़ी मात्रा में कच्चे माल की आवश्यकता हुई। इसके कारण उपनिवेशों का तथा श्रमिकों का शोषण भी होने लगा। हजारों श्रमिक मशीनों के कारण बेकार होने लगे, श्रमिकों की आर्थिक समस्यायें उत्पन्न होने लगीं। अनेक बैंकों की स्थापना हुई। बड़े पैमाने पर उत्पादन से वस्तुओं के दाम भी कम होने लगे तथा सामान्य जनता के लिये उपयोगी वस्तुयें अब दुर्लभ नहीं रह गईं। श्रमिकों ने संगठित होकर मजदूरी बढ़ाने के लिये आन्दोलन करना आरम्भ किया।

सामाजिक प्रभाव– औद्योगिक क्रान्ति के काल में पूँजीपति और श्रमिक वर्ग में असमानता उत्पन्न हुई। परिणामस्वरूप श्रमिकों में असंतोष उत्पन्न हुआ। परन्तु कारखानों में एक साथ कार्य करने से उनमें अपने संख्या वाला तथा सामूहिक चेतना का भी अहसास हुआ। क्रान्ति में पूँजीपतियों ने श्रमिकों से 16–16 घण्टे काम लिया। बच्चों को भी काम पर लगाया। कारखानों में दुर्गन्ध, हानिकारक रसायनों के मध्य तथा अधिकारियों की मार के भय में श्रमिकों को कार्य करना पड़ता था। श्रमिकों की रहने की दशायें बहुत खराब थीं। कार्यकाल में अंग–भंग, रोगी होने या घायल होने पर मुआवजा नहीं दिया जाता था, बल्कि नौकरी से ही अलग कर दिया जाता था। सिडनीवेव के अनुसार, 'औद्योगिक क्रान्ति ने श्रमिकों को अपने ही देश में एक भूमिहीन परदेशी बना दिया था।'

प्रश्न–(3) 'उपनिवेशवाद' का अर्थ स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– उपनिवेशों की शुरूआत भौगोलिक खोजों के साथ होती है। यूरोप के अनेक देशों के लोग व्यापारिक मार्गों की खोज के लिये अनेक देशों में गये वहाँ उन्होंने अपने उपनिवेशों की स्थापना की। उपनिवेश का आशय ऐसे भू-भाग से होता है जिस पर किसी विदेशी सत्ता

का नियंत्रण हो तथा वहाँ के स्थानीय निवासियों को नीति–निर्धारण में किसी प्रकार की कोई भूमिका–निर्वाह करने का अवसर प्राप्त न हो। उस क्षेत्र के सभी प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग सत्ताधारी शक्ति द्वारा अपने हित के लिये किया जाता हो।

ऑर्गेन्स्की के शब्दों में, 'उन सभी क्षेत्रों को हम उपनिवेश कहेंगे जो एक विदेशी सत्ता द्वारा शासित हैं तथा जिसके निवासियों को पूरे राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं।'

उपनिवेशवाद नये उपनिवेशों को अर्जित करने की नीति है। एक शक्तिहीन राज्य का अपने शक्तिशाली राज्य के साथ सम्बन्ध मुख्यतः उपनिवेशवाद के अन्तर्गत आते हैं। उपनिवेश प्राप्त करके अपने राज्य को अधिकाधिक विस्तृत करने की नीति जब राज्य द्वारा अपनायी जाती है और अन्य राज्य भी जब इसी प्रकार की नीति अपनाते हैं तब उसे उपनिवेशवाद की संज्ञा दी जाती है।

हॉब्सन ने इसे परिभाषित करते हुये लिखा है कि, 'उपनिवेशवाद अपने श्रेष्ठ स्वरूप में राष्ट्रीयता का स्वाभाविक प्रसार है और सफल उपनिवेश का मापदण्ड भी यही है कि उपनिवेशवादी राज्य अपनी सभ्यता के मूल्यों को नये प्रदेशों में स्वाभाविक सामाजिक परिवेश में कहाँ तक स्थापित कर सका है?'

प्रश्न–(4) समाजवाद से क्या आशय है? इसकी प्रमुख विशेषतायें लिखिये।

उत्तर– औद्योगिक क्रान्ति का एक आवश्यक परिणाम समाजवाद का उदय था। समाजवाद के अनेक विचारकों ने भिन्न परिभाषायें की हैं परन्तु वे किसी परिभाषा पर सर्वसम्मति उत्पन्न नहीं कर पाये। कभी–कभी तो समाजवाद के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि 'समाजवाद एक ऐसी टोपी के समान है कि जो उसे धारण (पहनता है) करता है वह उसके सिर का आकार ग्रहण कर लेती है।'

परिभाषा– आरम्भ में इंग्लैण्ड में रॉबर्ट ऑवेन, फ्रांस में सिसमोदी, सेंट साइमन और चार्ल्स फोरियर आदि यूरोपियायी समाजवादी विचारक 1770 से 1840 के मध्य हुये। इन्होंने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बुराइयों का स्रोत पूँजीवादी व्यवस्था को माना। अतः वह इसका अन्त कर उत्पादन तथा वितरण के साधनों पर समाज (श्रमिकों) का स्वामित्व स्थापित करना चाहते थे। बर्ट्रेण्ड रसेल ने भूमि और सम्पत्ति के सामूहिक स्वामित्व को समाजवाद कहा।

इन समाजवादियों के चिंतन में जो कमी थी उसे जर्मन समाजवादी कार्ल मार्क्स (1818–1883) ने पूरा किया। इसने पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को समाप्त कर राज्य की शक्ति पर श्रमिकों के अधिकार को स्थापित करने तथा निजी सम्पत्ति की प्रथा का अन्त करने और उत्पादन तथा वितरण आदि के सभी साधनों पर समाज के स्वामित्व को स्थापित करने पर बल दिया। इसके द्वारा वह अन्त में वर्गहीन, शोषण–हीन और राज्य–विहीन समाज की स्थापना करना चाहता था।

समाजवाद की विशेषतायें– समाज की सर्वसम्मत कोई परिभाषा नहीं होने पर भी इसके अर्थ को समझने के लिये समाजवाद की सभी धाराओं में पाई जाने वाली विशेषताओं को जानना आवश्यक है। इनके विषय में सामान्यतः उनमें मतभेद नहीं हैं।

1. पूँजीवादी व्यवस्था को अन्यायपूर्ण मानना एवं उसे हटाना।
2. एक नवीन न्यायपूर्ण व्यवस्था (सर्वहारा वर्ग की सरकार) की स्थापना।
3. शिक्षा, संस्कृति तथा नैतिकता के क्षेत्र में नवीन मूल्यों की स्थापना।
4. श्रमिकों का संगठन करना तथा उन्हें राजनैतिक, आर्थिक अधिकार दिलाना।

5. पूँजीवादी व्यवस्था को हटाने के लिये सशस्त्र अथवा रक्तपूर्ण क्रान्ति को आवश्यक मानना।
6. उत्पादन तथा वितरण के साधनों पर समाज का नियंत्रण स्थापित करना।
7. निजी सम्पत्ति के अधिकार को समाप्त करना।

इकाई-3

दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न–1. इंग्लैण्ड की वैभवपूर्ण क्रांति (1688) के कारणों तथा प्रभावों की विवेचना कीजिये।

अथवा

ब्रिटेन में वैभवपूर्ण क्रांति के क्या कारण थे? इस क्रांति का इंग्लैण्ड के राजतंत्र पर क्या प्रभाव पड़ा?

अथवा

इंग्लैण्ड की 1688 की गौरवपूर्ण क्रांति के कारणों और परिणामों की विवेचना कीजिये।

अथवा

इंग्लैण्ड में शानदार क्रांति के कारण, घटनायें, परिणाम और महत्व की व्याख्या कीजिये।

अथवा

इंग्लैण्ड में शानदार क्रान्ति से आप क्या समझते हैं? उसके कारण एवं प्रभावों का वर्णन कीजिये।

उत्तर– क्रॉमवैल ने संसद और चार्ल्स प्रथम के संघर्षों में विजय प्राप्त की। गृह–युद्ध को समाप्त करने में सफलता प्राप्त की और रम्प शासन का सन् 1649–1660 तक संचालन किया। परन्तु इसके भी काल में संसद और क्रॉमवैल में पुनः संघर्ष आरम्भ हो गये और सेना ने भी क्रॉमवैल का विरोध किया और क्रॉमवैल इंग्लैण्ड का राजा नहीं बन पाया तथा 1658 में रम्प शासन समाप्त हो गया। सितम्बर, 1658 में उसकी मृत्यु हो गई।

इसके पश्चात् 1660–85 तक चार्ल्स द्वितीय राजा बना और उसने अपनी योग्यता से शासन चलाया परन्तु 1685 से 1688 तक जेम्स द्वितीय ने शासन का संचालन किया। इसके पक्ष में टोरी सांसद, एग्लीकन चर्च, स्कॉटलैण्ड, आयरलैण्ड और फ्रांस का लुई चौदहवां थे। फिर भी इसके काल में क्रान्ति हुई।

शानदार क्रान्ति के कारण और अर्थ– प्रभुत्व पर राजा और संसद में चलने वाला दीर्घ संघर्ष रक्त की एक बूँद भी बहाये बिना समाप्त हो गया तथा दोनों में सहयोग के युग का आरम्भ हुआ। इससे न केवल धार्मिक समस्या का समाधान हुआ बल्कि संसद की शक्ति सर्वोच्च बन गई। इसलिये इस क्रान्ति को गौरवपूर्ण, शानदार या महान् क्रान्ति कहा जाता है। इसकी पृष्ठभूमि में निम्न कारण थे–

1. रम्पशासन की असफलता– क्रॉमवैल ने रम्प शासन का संचालन बिना राजा के चलाया। फिर भी संसद और क्रॉमवैल या शासन के राष्ट्राध्यक्ष से संघर्ष दूर नहीं हुये। प्रमुख संघर्ष का मूल आधार 'सर्वोच्चता' अभी भी वैसा ही था। संसद सदस्य राजा की निरंकुशता पर नियंत्रण लगाना चाहते थे। क्रॉमवैल भी जेम्स प्रथम और चार्ल्स प्रथम के समान निरंकुश सत्ताधारी बनने का प्रयास कर रहा था। अतः जनता चाहती थी कि राजा भी हो और

वास्तविक शक्तियाँ संसद के पास हो, क्योंकि संसद के निरंकुश होने की कोई संभावना नहीं थी।

2. जेम्स प्रथम और चार्ल्स प्रथम कालीन अनुभव– जेम्स प्रथम के काल में ही संसद से संघर्ष आरम्भ हुये। वास्तव में जेम्स के पूर्व सामन्तीय निरंकुशता को नियंत्रित करने के लिये राजाओं ने राष्ट्रीय राजतंत्र की स्थापना की थी जिसमें मध्यमवर्गीय नागरिकों और संसद का महत्व और अपनी शक्ति वृद्धि की आकांक्षा उत्पन्न हो चुकी थी। चार्ल्स प्रथम ने पुनः निरंकुश दैवी अधिकारों की स्थापना करने का निश्चय किया और इसके लिये उसने संसद को दबाने का तथा उसकी शक्ति वृद्धि पर रोक लगाने का निश्चय किया था। अतः उसने संसद पर आक्रमण किया। सैनिक अत्याचार किये। धार्मिक और आर्थिक दमन भी किया। अतः अब संसद भी कृतसंकल्प हो गई कि राजा को नियंत्रित करे या हटा दे। इसके लिये एक लम्बा संघर्ष भी चला। अब चार्ल्स द्वितीय और जेम्स द्वितीय को यह चिंतन करने को विवश होना पड़ा कि संघर्ष से संसद अधिक शक्तिशाली होगी और संघर्ष से धन की अधिक आवश्यकता होगी तथा धन 'दैवी अधिकार सिद्धान्त नहीं' सामान्य, मध्यम जनता और संसद ही दिलवा सकती थी। अतः उन्हें अन्त में संसद की सर्वोच्चता स्वीकार करना पड़ी।

शानदार क्रान्ति के कारण और अर्थ

1. रम्पशासन की असफलता
2. जेम्स प्रथम और चार्ल्स प्रथम कालीन अनुभव
3. कैथोलिकों को प्रोत्साहन
4. विशपों पर मुकदमा
5. जेम्स के पुत्र का जन्म
6. जेम्स द्वारा स्थाई सेना बनाने का प्रयत्न
7. इंग्लैण्ड में विद्रोह
8. न्यायालय की कठोरता
9. संसद के कानून को स्थगित करने का आदेश
10. विलियम को आमंत्रण

3. कैथोलिकों को प्रोत्साहन– जेम्स ने कैथोलिकों को धार्मिक स्वतंत्रता देने के लिये ने 1687 में 'इन्डलजेंस की घोषणा' की जिसके अनुसार रोमन कैथोलिकों और डिसेन्टर्स के विरुद्ध दण्डात्मक विधान समाप्त कर दिया गया। जेम्स के मंत्री हैलीफॉक्स और रोबेस्टर जैसे उच्च धर्मशास्त्री थे, उन्हें हटा दिया गया। सेना के अफसरों पर रोमन कैथोलिक्स के नियंत्रण की नीति को आरम्भ करने के लिये 'डिस्पेसिंग' के अधिकार का प्रयोग किया गया। इन कार्यों का टोरी सदस्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा, क्योंकि वे एग्लीकन चर्च के भक्त थे और जेम्स के भी समर्थक थे। किन्तु अब वे जेम्स विरोधी हो गये और संसद में व्हिग संसद सदस्य पहले ही विरोधी थे। इस प्रकार जेम्स ने संसद में विरोधियों की संख्या बढ़ा ली।

4. विशपों पर मुकदमा– सन् 1688 में जेम्स ने चर्च में हस्तक्षेप करने का दूसरा प्रयत्न किया तथा 1687 की घोषणा प्रत्येक चर्च में पढ़कर सुनाना अनिवार्य कर दिया। कुछ पादरियों ने यह प्रार्थना की कि यह कार्य करने के लिये उन्हें बाध्य नहीं किया जाये परन्तु राजा ने इस प्रार्थना को अवैध बताया तथा प्रार्थना करने वाले केण्टबरी के आर्क विशप तथा 6 अन्य विशपों को बन्दी बनाया तथा उन पर मुकदमा चलाया परन्तु न्यायालय ने उन पर अभियोग ही स्वीकार नहीं किया वरन् उन्हें मुक्त कर दिया। इससे राजा की प्रतिष्ठा और शक्ति को भारी आघात लगा।

5. जेम्स के पुत्र का जन्म– जेम्स की दूसरी पत्नि मेरी ऑफ मोडेना के 1688 में पुत्र का जन्म हुआ। अब तक इंग्लैण्ड की जनता में जेम्स द्वितीय पर्याप्त बदनाम हो चुका था तथा यह धारणा बन चुकी थी जेम्स की मुक्ति पुत्रहीन अवस्था में हो जायेगी। अतः वह इस आशा से प्रसन्न थी कि जेम्स की उत्तराधिकारी उसकी प्रोटेस्टेंट पुत्री मेरी तथा उसका पति विलियम ऑफ ऑरेंज होगा। किन्तु जेम्स के पुत्र के जन्म का समाचार उनके लिये निराशाजनक था, क्योंकि उसके जन्म से ही कैथोलिक बनाया जायेगा। यह भी धारणा व्याप्त हो चुकी थी कि नवजात शिशु जेम्स और मोडेना का पुत्र नहीं था।

6. जेम्स द्वारा स्थाई सेना बनाने का प्रयत्न– जेम्स ने अपनी और स्थायी सेना बनाने का दृढ़ निश्चय किया। इससे संसद घबराने लगी, क्योंकि अन्त में इस सेना के द्वारा संसद का दमन किया जायेगा। संसद ने इसका विरोध किया और सेना को भंग करने की माँग की और सैनिकों की संख्या 30,000 तक बढ़ा ली। इसके कारण इंग्लैण्ड में विद्रोह हुये।

7. इंग्लैण्ड में विद्रोह– जेम्स द्वितीय के खिलाफ दो प्रमुख विद्रोह हुये। इसमें मनमाऊथ के ड्यूक का विद्रोह प्रमुख था। उसने चार्ल्स द्वितीय का स्वयं को वैध पुत्र बताया और अपने को उत्तराधिकारी घोषित किया। परन्तु सैजमूर के युद्ध में उसकी पराजय हुई तथा उसकी हत्या कर दी गई। बिलिम्सन के अनुसार जेम्स ने ही उसका वध करवाया था। व्हिग दल ने मनमाऊथ के समर्थन में राजा का विरोध किया और हटाने की माँग की। जनता भी उससे घृणा करने लगी।

8. न्यायालय की कठोरता– मनमाऊथ के विद्रोह में भाग लेने वालों पर राजा ने अभियोग चलाने के लिये एक विशेष न्यायालय की स्थापना की। इसका प्रमुख न्यायधीश जेफ्रे था। इसने अपराधियों को बहुत कठोर दण्ड दिये। 300 व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया। 800 व्यक्तियों को देश से निर्वासित कर दिया और अनेकों को गुलाम बनाकर बेच दिया। इंग्लैण्ड में यह 'हत्यारा न्यायालय' के नाम से विख्यात हो गया। इससे टोरी और भी अधिक भयभीत और विरोधी बने। जेम्स द्वितीय ने 1641 में दीर्घ संसद के द्वारा निर्मित कोर्ट ऑफ स्टार चेम्बर तथा कॉर्ट ऑफ हाई कमीशन आदि विशेष न्यायालयों को समाप्त कर दिया और इनकी स्थापना करवाने वाले अधिनियम की उपेक्षा कर एक नवीन 'कोर्ट ऑफ इक्लीजियास्टिकल कमीशन' नाम का न्यायालय स्थापित किया जो शीघ्र ही अपनी निरंकुशता और अत्याचारों के लिये कुख्यात हो गया।

9. संसद के कानून को स्थगित करने का आदेश– चार्ल्स द्वितीय के काल में एक परीक्षा अधिनियम पारित कर कैथोलिकों और डिसेन्टरों को सरकारी पदों से वंचित कर दिया गया था। सरकारी पद पाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को एग्लीकन चर्च का सदस्य होने की शपथपूर्वक घोषणा करना पड़ती थी।

जेम्स द्वितीय कैथोलिकों को इस बन्धन से मुक्त करना चाहता था। परन्तु संसद ने इसका विरोध किया। राजा ने यह घोषणा की कि राजा को यह अधिकार है कि वह संसद के कानून को स्थगित कर सकता है या किसी व्यक्ति को संसद के कानून को पालन करने से मुक्त कर सकता है। अतः उसने एग्लीकन चर्च और विश्वविद्यालयों में कैथोलिकों को नियुक्त करना आरम्भ कर दिया। इससे जेम्स द्वितीय का विरोध और अधिक बढ़ गया।

10. विलियम को आमंत्रण– सभी वर्गों के व्यक्ति जेम्स की धार्मिक निरंकुशता से असन्तुष्ट थे तथा जेम्स और कैथोलिक राजाओं से मुक्त होना चाहते थे। अतः 30 जून, 1688 को प्रमुख 7 व्यक्तियों ने हॉलैण्ड के राजा 'विलियम ऑफ ओरेंज' को इंग्लैण्ड आमंत्रित किया। वे उसे इंग्लैण्ड का राजा बनाना चाहते थे।

शानदार क्रान्ति– 30 जून, 1688 को संसद के कुछ सदस्यों और राजनीतिक दलों के व्यक्तियों ने जिसमें टोरी और व्हिग सदस्य भी थे, ने विलियम ऑफ ऑरेंज तथा उसकी पत्नि मेरी को इंग्लैण्ड आकर इंग्लैण्ड के धर्म तथा स्वतंत्रता की रक्षा करने को लिखा तथा स्थल और जल सेना के नायकों ने विलियम को मदद देने के लिये कहा। अतः विलियम सेना सहित नवम्बर, 1688 में इंग्लैण्ड आ गया। जनता ने उसका भारी स्वागत किया और जेम्स का किसी ने साथ नहीं दिया। अतः जेम्स बिना युद्ध किये भाग गया। विलियम की मदद से एक सम्मेलन बुलाया गया जिसमें सिंहासन को रिक्त घोषित किया गया और विलियम तथा मेरी को संयुक्त रूप से शासक बनाया गया। विलियम की पत्नि जेम्स की ही पुत्री थी।

क्रान्ति की विशेषतायें– इंग्लैण्ड में 1688 की इस क्रान्ति को शानदार अथवा गौरवपूर्ण क्रान्ति कहा गया। क्रान्ति की विशेषताओं से यह स्पष्ट है कि–

1. इसमें सत्ता परिवर्तन बिना रक्त की एक बूंद बहाये या किसी की हत्या किये बिना हुआ। न कोई गृह–युद्ध हुआ।
2. सत्ता परिवर्तन ने राजनीतिक, धार्मिक समस्याओं तथा प्रमुख मुद्दे को शांतिपूर्वक समाधान दे दिया जिसके लिये संघर्ष चला आ रहा था।
3. जनमत विजयी रहा और संसद की सर्वोच्चता स्थापित हुई।
4. संसद और राजा के संघर्ष का अन्त होकर परस्पर सहयोग के युग का आरम्भ हुआ।
5. संसद और सेना ने राजा को इंग्लैण्ड के साम्राज्य का निर्माण करने में और अन्तर्राष्ट्रीय महत्व और स्थान प्राप्त करवाने में मदद दी।
6. परम्परागत संवैधानिक सिद्धान्तों की पुष्टि के साथ इंग्लैण्ड लोकतंत्र की ओर बढ़ने लगा।

प्रश्न–2. 1688 की गौरवपूर्ण (वैभवपूर्ण) क्रान्ति के महत्व को स्पष्ट कीजिये। क्या जेम्स द्वितीय वैभवपूर्ण क्रान्ति के लिये उत्तरदायी था? विवेचना कीजिये।

अथवा

1688 की गौरवपूर्ण क्रान्ति के परिणामों की विवेचना कीजिये।

उत्तर– क्रान्ति के परिणाम और प्रभाव– इंग्लैण्ड में सत्ता परिवर्तन के पश्चात् इंग्लैण्ड एवं विश्व पर अनेक राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक परिणाम हुये।

1. संसद की वित्तीय शक्ति में वृद्धि– विलियम और मेरी इंग्लैण्ड के जनमत, संसद और सेना के सहयोग से राजा बना था। संसद ने उसे राजनीतिक कार्यों के लिये और इंग्लैण्ड को अन्तर्राष्ट्रीय विजयों के लिये वार्षिक रूप में धन विधेयक के द्वारा आर्थिक सहायता देना आरम्भ किया। इससे संसद का नियंत्रण शासन के सभी स्तरों पर हो गया। लोकसभा की शक्ति, लार्डसभा से अधिक प्रमाणित हुई। संसद की अनुमति के बिना कोई कर नहीं लगेगा।

2. अधिकार बिल– सत्ता परिवर्तन होते ही संसद ने अधिकार बिल पारित किया जिसे विश्व-विख्यात 'मेग्नाकार्टा' कहा गया इसमें निम्न अधिकार दिये गये थे–

(i) विलियम और मेरी इंग्लैण्ड के राजा-रानी घोषित किये गये।
(ii) कोई भी रोमन कैथोलिक या रोमन कैथोलिक से विवाह करने वाला इंग्लैण्ड का राजा या रानी नहीं बनेगा।
(iii) सम्राट संसद को विघटित नहीं कर सकता था।
(iv) सम्राट किसी कानून को स्थगित नहीं कर सकता था।
(v) राजा द्वारा निर्मित 'हाई कमीशन न्यायालय' आदि समाप्त कर दिये गये।
(vi) संसद के स्वतंत्र रूप से चुनाव होंगे। संसद के अधिवेशन बुलाना, सदस्यों को भाषण की स्वतंत्रता दी गई।
(vii) संसद से बजट पर अनुमति और स्वीकृति राजा को लेना आवश्यक था।
(viii) राजा की सेना गैर-कानूनी घोषित की गई।

3. उत्तराधिकार की समस्या का समाधान– सत्ता परिवर्तन के इस अवसर पर एक उत्तराधिकार अधिनियम पारित किया गया जिसके अनुसार विलियम और मेरी निस्संतान रहने पर जेम्स प्रथम की भांजी राजकुमारी सोफिया को राजसिंहासन पर बैठाना निश्चित किया गया। मेग्नाकार्टा में किसी रोमन कैथोलिक व्यक्ति या कैथोलिक से विवाहित व्यक्ति को सिंहासन पर बैठाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। इस अधिनियम में निम्नलिखित प्रतिबन्ध राजा पर लगाये गये थे–

(i) बिना संसद की अनुमति के राजा इंग्लैण्ड नहीं छोड़ सकता था।
(ii) राजा बिना संसद की अनुमति के या अभियोग सिद्ध न होने तक किसी न्यायाधीश को पदच्युत नहीं कर सकता था।
(iii) निम्न संसद भवन के द्वारा किसी व्यक्ति पर अभियोग लगाया गया हो तो राजा उसे क्षमा या मुक्त नहीं कर सकता था।

4. प्रेस की स्वतंत्रता– सत्ता परिवर्तन के बाद 1695 में संसद ने पूर्व के लाइसेंसिंग एक्ट को समाप्त कर निम्न सदन में नवीन अधिनियम पारित किया और प्रेस की स्वतंत्रता को सुरक्षित कर दिया। प्रेस या विचारों की स्वतंत्रता के विश्व पर अत्यन्त दूरगामी परिणाम निकले।

5. सहिष्णुता अधिनियम– सन् 1689 में सहिष्णुता अधिनियम पारित किया गया जिसके अनुसार रोमन कैथोलिकों और प्यूरिटन्स पर प्रतिबन्ध कठोर कर दिये गये परन्तु डिसेन्टरों को सार्वजनिक रूप से उपासना और पूजा के अधिकार दिये गये।

सारांश– इंग्लैण्ड में 1688 की क्रान्ति के लिये जेम्स द्वितीय पूर्णरूपेण उत्तरदायी था। उसने जनता के घृणापात्र कैथोलिक चर्च को प्रोत्साहन दिया, प्रोटेस्टेंटों पर मुकदमे चलाये। जेम्स के पुत्र का जन्म भी जनता के लिये उत्साहवर्द्धक नहीं था। जेम्स ने संसदीय कानूनों से स्वयं को अधिक अधिकार सम्पन्न बताया।

परिणामस्वरूप संसद ने विलियम ऑफ ऑरेंज को बुलाकर सत्ता परिवर्तन कर दिया और अत्यन्त दीर्घकाल से चली आ रही संसद और राजा के मध्य प्रभुत्व की लड़ाई को समाप्त

कर अनेक महत्वपूर्ण निर्णय कर दिये। उसने 'महान् मेग्नाकार्टा' की रचना की और राजा को नाममात्र का प्रधान बना दिया। रोमन कैथोलिकों पर कठोर प्रतिबन्ध लगाकर पोप, फ्रांस, स्पेन के हस्तक्षेप को समाप्त कर दिया। इसने विचार स्वातंत्र्य को सुरक्षित किया। संसद की सर्वोच्चता को निर्विवाद बनाया तथा यह सारा कार्य बिना रक्त-पात, गृह-युद्ध और संवैधानिक रूप से सम्पन्न हुआ अतः यह महान् क्रान्ति थी।

प्रश्न–3. 1776 ई. की अमेरिकी क्रांति के प्रभावों का वर्णन कीजिये।

अथवा

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के परिणामों की समीक्षा कीजिये।

उत्तर– परिणाम और महत्व– अमेरिका की स्वतंत्रता का संघर्ष न केवल यूरोप बल्कि विश्व इतिहास में तात्कालिक और दूरगामी तथा विश्वव्यापी परिणामों वाली प्रमुख घटना थी।

विश्व साम्राज्य की पराजय– इसने राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक दृष्टि से विश्व पर अनेक प्रभाव छोड़े। सर्वप्रथम तो यह एक तथ्य है कि अभी तक ब्रिटिश साम्राज्य शक्ति, सामुद्रिक विकास, साम्राज्य विस्तार, अधिकार, सर्वाधिक उपनिवेशों का स्वामी एक ऐसे देश से पराजित हुआ जो ब्रिटिश साम्राज्य का एक आधीन देश था और जिसके पास युद्ध के पूर्व शक्ति, संगठन, सेना, शस्त्रास्त्र आदि नहीं थे। जिसे विश्व से मदद की कोई आशा नहीं थी। इसकी प्रेरणा इसके बाद प्रत्येक स्वाधीनता चाहने वाले आधीन देश में सक्रिय रूप से इस विश्वास के साथ पहुँची कि इंग्लैण्ड अजेय नहीं है।

ब्रिटिश नीति में परिवर्तन– दूसरा परिणाम यह हुआ कि प्रतिक्रियावादी, घमण्डी अंग्रेजों, लार्ड्स, राजा तथा प्रधानमंत्रियों को यह समझ में आ गया कि शोषण की अतिरेकी प्रवृत्ति आत्मघाती है और यदि ऐसा नहीं किया तो एक-एक आधीन उपनिवेश अमेरिका की तरह संघर्ष और स्वतंत्रता के पथ पर चलने लगेगा। अतः ब्रिटिश सरकार का उपनिवेशों के प्रति दृष्टिकोण में आंशिक परिवर्तन हुआ। फिर भी सभी आधीन देश चाहे वे किसी के भी गुलाम हों संघर्ष और स्वतंत्रता के लिये सक्रिय हो उठे। लगभग सभी एशियायी देशों ने और यूरोपीय देशों ने यह प्रेरणा ली।

सप्तवर्षीय युद्ध– फ्रांस सप्तवर्षीय युद्ध में इंग्लैण्ड से पराजित होकर अमेरिका के पक्ष में लड़ रहा था और उसकी 1783 में पराजय हो गई। सैनिक और धन के युद्धों, विलासिता आदि में व्यय के कारण 1789 में लुई 16वां को स्टेट जनरल को बुलाना पड़ा तभी निरंकुश सत्ता के खिलाफ क्रान्ति हो गई। इसमें अमेरिकी संघर्ष जहाँ प्रेरणा था वहीं क्रान्ति का एक महत्वपूर्ण कारण भी था।

लोकतंत्र की स्थापना– इंग्लैण्ड में भी जार्ज तृतीय का व्यक्तिगत शासन समाप्त हो गया। नार्थ को त्याग पत्र देना पड़ा। इस प्रकार संसद की और जनमत की शक्ति में वृद्धि हुई तथा इंग्लैण्ड और अमेरिका में लोकतंत्र की स्थापना हुई तथा विश्व के अन्य देशों ने भी जनतंत्र प्रणाली को अपनाया। फ्रांस, भारत, बर्मा, इण्डोनेशिया, चीन आदि में लोकतंत्र स्थापित हुये। जर्मनी में भी वाईमर गणतंत्र स्थापित हुआ।

उपनिवेशों की खोज– महत्वपूर्ण उपनिवेशों के हाथ से निकल जाने से इंग्लैण्ड को भारी आर्थिक क्षति उठाना पड़ी जिसकी पूर्ति के लिये इंग्लैण्ड तथा अमेरिका के अन्य जिन देशों के

भी उपनिवेश थे वे भी विश्व में अन्यत्र नवीन उपनिवेश ढूंढने लगे। आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड इसी प्रकार के अंग्रेजी उपनिवेश थे।

आयरलैण्ड का लाभ– आयरलैण्ड को अमेरिकी युद्ध के द्वारा परोक्ष रूप से इंग्लैण्ड की सरकार ने उसके स्वयं के लिये कानून बनाने की स्वतंत्रता दिलवा दी गई जिससे आयरलैण्ड ने वैधानिक स्वतंत्रता प्राप्त करने में 1782 में मदद मिली।

धर्म राज्य से मुक्ति– अमेरिकी क्रान्ति ने चर्च राज्य, चर्च द्वारा नियंत्रित राज्य की अवधारणा को बदल दिया और ऐसे आदर्श राज्य की संकल्पना की गई जो धार्मिक नियंत्रण से मुक्त मानवतावादी हो और जिसका लक्ष्य लोक-कल्याण हो। इससे समाज की रचना में कुलीन तंत्र और उसके विशेषाधिकारों का भी महत्व घट गया और वह धराशायी हो गया। जो राष्ट्र स्वतंत्र हुये उन्होंने स्वतंत्रता-पूर्वक अपनी जीवन-प्रणाली, आदर्श, साहित्य, ज्ञान, तर्क, सिद्धान्तों आदि को जीवन में साकार किया।

अमेरिका की विजय के कारण– अमेरिका और इंग्लैण्ड में संघर्ष स्वतंत्रता और साम्राज्यवादी स्वार्थों का संघर्ष था। जिसमें अमेरिका की विजय हुई। इसके प्रमुख कारणों में प्रथम कारण यह था कि ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ उपनिवेशों से संघर्ष, एकता और स्वतंत्रता की भावना उत्पन्न हुई। इसकी उत्पत्ति में द्वितीय कारण विशेषकर ग्रेनविल, नार्थ आदि की शोषणपूर्ण, निरंकुश तथा अमेरिका के 'सत्याग्रह' की उपेक्षा थी। तृतीय कारण जार्ज वाशिंगटन का अदम्य उत्साह, न टूटने वाली आशा, विजय का दृढ़ विश्वास, सैनिक कुशलता और उनके सहायक थे जबकि अंग्रेजी सेनापति और सैनिक अकुशल थे। चतुर्थ कारण इंग्लैण्ड से अमेरिका की दूरी थी जिससे शस्त्र, भोजन पहुँचाने में कठिनाई हुई। पंचम कारण फ्रांस, स्पेन और हॉलैण्ड की अमेरिका को मदद और सप्तवर्षीय युद्ध में अंग्रेजी सेना और धन का विनाश भी अमेरिकी विजय के लिये उत्तरदायी था। षष्ठम कारण था इंग्लैण्ड से अमेरिका को गये हुये प्यूरिटन धर्म के निर्वासित व्यक्ति और अमेरिका में रखे गये बन्दी जिन्होंने अमेरिकी नेताकारियों की मदद की। अतः इंग्लैण्ड की पराजय हुई।

सारांश– अमेरिका का स्वतंत्रता संग्राम 'अंग्रेजों का अंग्रेजों' के खिलाफ और स्वतंत्रता तथा साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष था। जो ब्रिटिश शासन की निरंकुश, दमनकारी और अमेरिका के हितों की उपेक्षा के कारण हुआ जिसके लिये नार्थ और ग्रेनविल विशेष रूप से उत्तरदायी थे। प्यूरिटन ने इसमें जोश भरा तथा वाशिंगटन जैसे उत्साही नेताओं ने संघर्ष को सफल बनाया तथा उन्होंने विश्व में अनेक राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन किये तथा स्वतंत्रता संघर्षों को प्रेरणा दी तथा लोकतंत्र के महत्व को स्थापित किया। अंग्रेज अपनी अदूरदर्शिता, हठ और सम्पूर्ण यूरोप को अपना शत्रु बना देने के कारण पराजित हुये। इससे अंग्रेजों की अजेयता में विश्वास समाप्त हो गया।

प्रश्न–4. अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम में इंग्लैण्ड की पराजय तथा अमेरिका की सफलता के कारणों का परीक्षण कीजिये।

अथवा

अमेरिकन स्वतंत्रता संग्राम के क्या परिणाम थे? विश्व पर उनके प्रभाव का वर्णन कीजिये।

अथवा

अमेरिकन (अमेरिकी) स्वतन्त्रता संग्राम के कारणों की विवेचना कीजिये। (या व्याख्या कीजिये)

अथवा

अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम पर विस्तृत लेख (निबन्ध) लिखिये।

उत्तर– अमेरिका ब्रिटिश साम्राज्य का एक बहुत लाभदायक उपनिवेश था। जिसका ब्रिटिश सरकार बुरी तरह से शोषण कर रही थी। अतः अमेरिकी जनता ने ब्रिटिश सरकार को चुनौती दी तथा स्वतंत्रता युद्ध आरम्भ कर 1776 में मुक्ति प्राप्त की। इस युद्ध के कारणों, घटनाओं और उसके विश्वव्यापी परिणामों का वर्णन और महत्व का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

कारण– अमेरिका का स्वतंत्रता संग्राम एक विश्व विख्यात घटना थी। इसमें अट्ठारहवीं शताब्दि के सबसे अधिक विस्तृत, अजेय, सर्वशक्तिमान, सर्वाधिक धन-सम्पन्न और सर्वाधिक घमण्डी विश्व साम्राज्य को ललकारा गया था। इसके निम्नलिखित कारण थे–

(1) निर्वासित अंग्रेज– ब्रिटिश शासकों की असहिष्णु और भेदभावपूर्ण धार्मिक नीति के कारण प्यूरिटन और अन्य प्रोटेस्टेंट चर्च के अंग्रेजों को ब्रिटेन छोड़कर अमेरिका में बसना पड़ा। परन्तु यहां भी ब्रिटिश शासकों और उनके अधिकारियों ने दमन किये, उनका शारीरिक, राजनैतिक और आर्थिक शोषण किया। अमेरिकी अंग्रेज और अन्य नागरिकों पर ब्रिटिश सरकार ने कठोर प्रतिबन्ध लगा रखे थे जिसके कारण बहुत सस्ते दामों पर अपना माल उन्हें ब्रिटिश यात्रियों और सरकार को बेचना पड़ता था। अतः स्वतंत्रता की भावनायें उत्पन्न हुईं।

स्वतंत्रता संग्राम के कारण
1. निर्वासित अंग्रेज
2. उपनिवेशों के प्रति ब्रिटिश दृष्टिकोण
3. ग्रेनविल और उसकी भूमिका
4. डाऊंटसेंड के कर
5. सप्तवर्षीय युद्ध
6. बोस्टन चाय पार्टी
7. स्टाम्प कर

(2) उपनिवेशों के प्रति ब्रिटिश दृष्टिकोण– विश्व में सबसे अधिक शोषक, बेईमान और अत्यधिक स्वार्थी जाति ब्रिटिश जाति है। अपने लाभ के लिये वह किसी भी सीमा तक गिरकर औपनिवेशिक जनता को हानि पहुँचाने में उसे कोई संकोच नहीं होता था। अमेरिका में तो वह यह भी भूल गये कि उसमें अंग्रेज ही बसे थे। इसलिये उसकी आयात-निर्यात नीति, क्रय-विक्रय प्रणाली, कर-प्रणाली, न्याय-प्रणाली और औपनिवेशिक तथा विदेश नीति आदि सभी का लक्ष्य उपनिवेशों का शोषण और ब्रिटिश व्यापारियों और सरकार को अधिकतम लाभ पहुँचाना था। उन्होंने कभी मानव अधिकारों, जनकल्याण, उनकी गरीबी, अभाव या उन पर अत्याचारों के लिये कुछ नहीं किया। इसी का स्वाभाविक परिणाम स्वतंत्रता संग्राम था।

(3) ग्रेनविल और उसकी भूमिका– इंग्लैण्ड का प्रधानमंत्री ग्रेनविल ने अत्यन्त खराब नीतियों को उपनिवेशों में लागू किया तथा उनका पालन करवाने के लिये कठोरता का पालन किया। उसने गुड़, रस, शर्करा के आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिये। रेड इण्डियन्स से भूमि खरीदने पर प्रतिबन्ध लगाये। ब्रिटिश उपनिवेशों की रक्षा के लिये एक सेना का निर्माण किया जिसका सम्पूर्ण आर्थिक भार अमेरिका पर डाला गया।

(4) डाऊंटसेंड के कर– डाऊँटसेंड प्रधानमंत्री और नार्थ वित्तमंत्री बने। इन्होंने अमेरिका जाने वाले कागज, शीरे और चाय पर बढ़ती दर से नया कर लगा दिया। इससे अमेरिकी स्वायत्ता को संकट उत्पन्न हो गया।

(5) **सप्तवर्षीय युद्ध–** सप्तवर्षीय युद्ध में इंग्लैण्ड का अधिकार कनाडा पर हो गया और अमेरिकियों का फ्रांस से भय भी समाप्त हो गया। इस युद्ध में इंग्लैण्ड की आर्थिक दशा बहुत खराब हो गई। इसकी पूर्ति वह अमेरिका में कर बढ़ा कर करना चाहता था। इसके साथ ही वह सम्पूर्ण अमेरिका पर अधिकार करने का प्रयत्न करने लगा। अमेरिकी पहले से ही अभाव, कष्ट और संकट में थे अब उन्हें नवीन टैक्स भी देना थे। अतः असन्तोष और संघर्ष बढ़ने लगे।

(6) **बोस्टन चाय पार्टी–** लार्ड नार्थ ने चाय पर कर बढ़ा दिये। चाय भारत से अमेरिका पहुँचती थी। जब ब्रिटिश जहाज चाय लेकर अमेरिका पहुँचे तो अमेरिका ने इसका विरोध किया। कुछ क्रांतिकारियों ने मजदूरों के वेश में पहुँचकर 340 पेटियों को समुद्र में फैंक दिया। इस कारण ब्रिटिश सेनाओं ने अमेरिकी जनता पर अत्याचार किये। एक निर्दयी सेनापति को अमेरिका का राज्यपाल बनाया, जिसने स्वायत्त शासन समाप्त कर दिया। इस घटना को **'बोस्टन की चाय पार्टी'** कहा जाता है।

(7) **स्टाम्प कर–** सप्तवर्षीय युद्ध में फ्रांस के साथ संघर्ष में आर्थिक क्षति को पूरा करने के लिये अमेरिका में विभिन्न कर लगाये गये, उनमें स्टाम्प कर भी था। अन्य 12 उपनिवेशों ने इस कर को अस्वीकार कर दिया। अमेरिका में भी जनता ने इसके खिलाफ संघर्ष छेड़ दिया। यही युद्ध की तात्कालिक घटना भी बन गई।

स्वतंत्रता संग्राम और फिलाडेल्फिया कांग्रेस– 1775 में समस्त अमेरिकी उपनिवेश के प्रतिनिधियों का फिलाडेल्फिया में सम्मेलन बुलाया। इसमें कहा गया कि इंग्लैण्ड की संसद में जब तक अमेरिका को प्रतिनिधित्व नहीं दिया जायेगा अमेरिका कोई कर नहीं देगा और न ही इंग्लैण्ड को कोई कर लगाने का ही अधिकार होगा। परन्तु प्रधानमंत्री लार्ड नार्थ ने और राजा जॉर्ज तृतीय ने शक्ति से इस मांग को दबाने का प्रयत्न किया, अतः युद्ध की घोषणा कर दी गई।

घटनायें– अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम में कुछ घटनायें बहुत महत्वपूर्ण और निर्णायक थीं। इनका वर्णन निम्नलिखित है–

(1) **लैक्सिंगटन का युद्ध–** इस युद्ध में अमेरिका को बोस्टन के बन्दरगाह को घेरने में सफलता मिली। इससे उसे पता चला कि इंग्लैण्ड की सेना अमेरिका सेना से अधिक कुशल और श्रेष्ठ नहीं थी। वह विलासी, अनुभव-हीन तथा अकुशल सेनापतियों वाली सेना थी।

(2) **स्वतंत्रता की घोषणा–** फिलाडेल्फिया की दूसरी सभा ने 1776 में 'अमेरिका की स्वतंत्रता' को घोषित किया और ब्रिटिश सरकार के अधिकार और कानूनों की समाप्ति घोषित की गई। इसी के साथ ब्रिटिश कर, शासन व्यवस्था तथा गवर्नर आदि अवैध हो गये।

(3) **वंकर्सहिल का युद्ध–** अमेरिका का साथ फ्रांस, स्पेन और हॉलैण्ड ने भी दिया तथा वंकर्सहिल में संयुक्त मोर्चा जमाया।

(4) **बुकलिन का युद्ध–** बुकलिन के युद्ध में जब अमेरिका की सेना पराजित होकर भाग रही थी, उसमें जार्ज वाशिंग्टन ने अचानक बीच में ही पलटकर आक्रमण किया और जनरल होय को भगा दिया। इससे अमेरिका की अन्य सेनायें थम गईं और इससे युद्ध का रुख ही बदल गया।

(5) **साराटोगा का युद्ध–** अंग्रेजों ने फिलाडेल्फिया में वाशिंग्टन को घेर लिया परन्तु अमेरिकी जनरल गेट्स ने साराटोगा के युद्ध में इंग्लैण्ड को पराजित कर दिया। फ्रांस, स्पेन और हॉलैण्ड ने इस युद्ध में उसे मदद दी और अमेरिका को मान्यता प्रदान कर दी। रूस, डेनमार्क, स्वीडन, हॉलैण्ड और एशिया आदि ने भी अमेरिका को युद्ध सामग्री भेजी।

(6) **कार्नवालिस का समर्पण और वर्साय संधि–** वाशिंगटन ने अचानक कार्नवालिस को घेर कर आत्मसमर्पण के लिये बाध्य कर दिया। अब लॉर्ड नार्थ ने प्रधान मंत्री पद से त्याग पत्र दे दिया तथा नवीन प्रधानमंत्री रोकिंघम ने वर्साय में संधि वार्ता की। इसके अनुसार निम्नलिखित निर्णय हुये–

1. संयुक्त-राज्य अमेरिका एक स्वतंत्र देश होगा।
2. स्पेन को मिनारिका और फिलाडेल्फिया वापस दिये जायेंगे।
3. फ्रांस को सेन्टलूसिया, टावेगो और सिनीगाल दिये जायेंगे।
4. कनाडा को नोवास्कोशिया दिया जायेगा।
5. न्यूफाऊण्डलैण्ड इंग्लैण्ड के पास रहेगा।

प्रश्न–5. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम में इंग्लैण्ड की असफलता एवं अमेरिका की विजय के कारणों का परीक्षण कीजिये।

उत्तर– अमेरिका की विजय एवं इंग्लैण्ड की पराजय के लिये निम्नलिखित कारण प्रमुख रूप से उत्तरदायी थे–

(1) **भौगोलिक परिस्थितियाँ अमेरिका के अनुकूल होना–** अमेरिका ब्रिटेन से 3000 मील की दूरी पर स्थित था एवं लगभग 1000 मील के विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ था। यह समूचा क्षेत्र घने वनों से आच्छादित था। यहाँ की भौगोलिक स्थिति का ज्ञान यहाँ के निवासियों को था अतः उन्होंने सम्पूर्ण क्षेत्र को युद्ध क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया था। अंग्रेजों को यहाँ की भौगोलिक स्थिति का ज्ञान न होन के कारण अनेक कष्ट उठाने पड़े। यातायात एवं संचार के साधनों के अभाव में ब्रिटिश सेना वनों में भटक जाती थी। तीन हजार मील दूर रहकर इतने बड़े क्षेत्र में युद्ध का संचालन करना अंग्रेजों के लिये दुष्कर कार्य था। हजारों मील लम्बी समुद्री यात्रा तथा व्यय के बाद ही ब्रिटिश सेना अमेरिकी तटों पर पहुँचती थी। इन परिस्थितियों में अंग्रेजों का जीतना अत्यन्त कठिन कार्य था।

(2) **सैनिक कारण–** स्वतन्त्रता युद्ध के प्रारम्भ में अमेरिकी पक्ष की सेनायें अव्यवस्थित थीं। सैनिकों में अनुशासन का अभाव था। वाशिंगटन ने लिखा है, 'अमेरिकी सैनिक अपने अधिकारियों को झाड़ू से अधिक नहीं समझते थे।' उनके पास नौ सेना भी नहीं थी, परन्तु उपनिवेशों ने शीघ्र ही अपनी सैनिक कमियों को दूर करने का निश्चय किया। अमेरिकी कांग्रेस ने वाशिंगटन को सैनिक कमियों को दूर करने के विशेषाधिकार प्रदान किये। वाशिंटन ने उपनिवेशों की सैनिक कुशलता में वृद्धि की। दूसरी ओर इंग्लैण्ड की सैनिक शक्ति यद्यपि अच्छी थी, परन्तु इस सेना का प्रयोग सावधानी से नहीं किया गया। युद्ध के समय अंग्रेज सेनापतियों द्वारा की गयी

असावधानियाँ शत्रुके लिये वरदान सिद्ध हुयीं। अंग्रेज जनरल अयोग्य थे, उन्होंने युद्ध को किसी निश्चित योजना के बिना चलाया। कीथ फेलिंग का विचार है कि, "ब्रिटेन के सैनिक इतिहास में इस युद्ध के समान और कोई युद्ध बुरी तरह नहीं लड़ा गया। मनुष्य और युद्ध सामग्री की कोई तैयारी नहीं की गयी।" ब्रिटिश जनरल बुरगोइन योग्यता, परन्तु कलहप्रिय था। जनरल हो ने अपनी शिथिलता के कारण अनेक अवसरों को खोया। युद्ध तथा उपनिवेश मन्त्री लार्ड जर्मेन नितान्त अयोग्य था। ब्रिटिश सेनापतियों में आपसी तालमेल तथा सौहार्द का अभाव था। इस प्रकार ब्रिटिश सेना तता सेनापतियों की अयोग्यता ब्रिटिश हार का कारण बनी।

(3) ब्रिटिश सरकार द्वारा उपनिवेशों की शक्ति का गलत आकलन– वार्नर, मार्टिन तथा रेम्जे म्योर के अनुसार ब्रिटेन ने उपनिवेशों की वास्तविक शक्ति का आकलन करने में भूल की। एक अमेरिकन सैनिक विशेषज्ञ का दावा था कि अमेरिका पर विजय के लिये चार रेजीमेंट पर्याप्त होंगी, परन्तु यह अनुमान मिथ्या धारणाओं तथा गलत सूचनाओं पर आधारित था। सम्भवतः इसी कारण अंग्रेजों ने रण क्षेत्र में उतरने के पूर्व युद्ध की पूर्ण तैयारी नहीं की। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन के अधिकारियों की यह धारणा थी कि यह युद्ध अधिक लम्बा नहीं चलेगा तथा शीघ्र ही कोई समझौता हो जायेगा। युद्ध प्रारम्भ होने के पश्चात् भी वे इसी विचारधारा पर युद्ध करते रहे।

(4) इंग्लैण्ड की नौ सैनिक शक्ति की दुर्बलता– साउथगेट ब्रिटेन की असफलता का प्रमुख कारण इंग्लैण्ड की नौ सैनिक दुर्बलता को मानते हैं। सप्तवर्षीय युद्ध में अपनी नौ सैनिक श्रेष्ठता स्थापित करने के पश्चात् इंग्लैण्ड ने अपनी नौ सैनिक कुशलता को बढ़ाने के कोई प्रयत्न नहीं किये। जबकि फ्रांस और हॉलैण्ड ने अपनी नौ शक्ति में सुधार किया। इंग्लैण्ड फ्रांस के समुद्र तट की नाकेबन्दी करने तथा उसे उपनिवेशों को सहायता देने से रोक नहीं सका। फ्रांसीसी नौ सैनिक शक्ति के भय के कारण ही इंग्लैण्ड की नाविक शक्ति विभाजित हो गयी तथा वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति का उपयोग उपनिवेशों के विरुद्ध नहीं कर सका।

(5) इंग्लैण्ड के राजा जार्ज तृतीय का उत्तरदायित्व– वार्नर, मार्टिन और म्योर ने लिखा है, 'अमेरिकन उपनिवेशों का ब्रिटेन के हाथ से निकल जाने का उत्तरदायित्व जार्ज तृतीय पर सबसे अधिक है।' वह हठी स्वभाव का था। उसने तथा उसके मन्त्रियों ने अमेरिकन उपनिवेशों के मामलों में अत्यधिक हस्तक्षेप किया। वार्नर–मार्टिन के अनुसार, "जार्ज तृतीय के राज्याभिषेक के समय तक बस्तियाँ परिपक्व हो चुकी थीं, किन्तु मातृ देश यह न समझ सका और सम्भवतः यही प्रमुख कारण था जिसकी वजह से इतनी समस्यायें उत्पन्न हुयीं।" विलियमसन का कथन है कि इंग्लैण्ड की हार का कारण राजा के शत्रु नहीं, अपितु राजा के मित्र थे।

(6) इंग्लैण्ड के निवासियों का अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम के प्रति दृष्टिकोण– इंग्लैण्ड मे जार्ज तृतीय का व्यक्तिगत शासन अत्यन्त अप्रिय था। बार्क और फॉक्स ने जार्ज तृतीय की अमेरिकन नीति का विरोध किया। अंग्रेज यह अनुभव कर रहे थे कि उपनिवेशवासी अपनी स्वतन्त्रता के लिये युद्ध कर रहे हैं। बर्क ने कहा था, "मैं

अमेरिका के विरोध से सन्तुष्ट हूँ। अन्याय तथा अत्याचार के कारण अमेरिकी पागल हो उठे हैं। क्या अंग्रेज इस पागलपन के लिये उन्हें सजा देंगे, जिसका बीजारोपण अंग्रेजों ने ही किया।" उनका विचार था कि अमेरिका में जार्ज तृतीय की पराजय इंग्लैण्ड में भी उसके व्यक्तिगत शासन का अन्त करा देगी। इस प्रकार इंग्लैण्ड की जनता के बड़े वर्ग की सहानुभूति अमेरिकयों के साथ थी। इसी कारण जार्ज तृतीय को अमेरिकी उपनिवेशों से युद्ध के लिये जर्मन सैनिकों को भर्ती देकर भेजना पड़ा।

(7) फ्रांस, स्पेन एवं हॉलैण्ड द्वारा उपनिवेशों की सहायता– इंग्लैण्ड की पराजय का एक कारण यह था कि इस समय उसके किसी भी यूरोपीय शक्ति से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध नहीं थे। फ्रांस, स्पेन तथा हॉलैण्ड ने इंग्लैण्ड से बदला लेने के लिये उपनिवेशों को धन और सैनिक शक्ति की मदद की। फिशर ने लिखा है, "अमेरिका का युद्ध एक घरेलू झगड़ा नहीं रह गया था, बल्कि उसने एक अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष का रूप धारण कर लिया था।"

(8) उपनिवेशवासियों की स्वतन्त्रता की उत्कट इच्छा– अमेरिकन उपनिवेशों की एकता, दृढ़ता, उत्साह तथा स्वतन्त्रता होने की उत्कट इच्छा ब्रिटेन की असफलता का कारण बनी। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध उन्होंने एक पवित्र भावना के साथ युद्ध लड़ा था। उपनिवेशवासियों ने सम्पूर्ण उपनिवेश को कुछ क्षेत्रों में परिवर्तित कर दिया था। अंग्रेज सेना यद्यपि उपनिवेशों की सेना को पराजित कर देती थी, परन्तु यह क्रम कभी समाप्त न होने वाला था। पराजित सेनायें विजयी अंग्रेजी सेनाओं के पीठ फेरते ही पुनः युद्ध के लिये तैयार हो जाती थीं। उपनिवेशवासियों की स्वतन्त्रता की प्रबल भावना को आगे अन्ततः अंग्रेजों को हथियार डालने पर विवश होना पड़ा।

(9) वाशिंगटन का कुशल नेतृत्व– अमेरिकी उपनिवेशों को जार्ज वाशिंगटन जैसा साहसी, दूरदर्शी तथा योग्य सेनापति मिलने के कारण ही अमेरिका की विजय सम्भव हो सकी। उसने अपने देशवासियों तथा सेना में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये अदम्य उत्साह तथा बलिदान की भावना प्रज्वलित की। रेम्जे म्योर के अनुसार, "वाशिंगटन के नेतृत्व ने उपनिवेशवासियों के मन में विश्वास तथा साहस को उत्पन्न कर दिया था, जिसके कारण उन्हें इस महान तथा दुष्कर संघर्ष में अन्तिम विजय प्राप्त हुयी।"

प्रश्न–6. 1789 की फ्रांसीसी क्रान्ति के कारणों पर प्रकाश डालिये।

अथवा

क्रान्ति के समय फ्रांस की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का वर्णन कीजिये।

अथवा

फ्रांस की क्रांति से पूर्व फ्रांस की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दशा का वर्णन कीजिये।

अथवा

1789 की क्रांति के पूर्व फ्रांस के समाज की संरचना का वर्णन कीजिये।

अथवा

1789 ई. की फ्रांसीसी क्रांति के कारणों का वर्णन कीजिये।

उत्तर– यूरोप में फ्रांस की क्रांति ने विश्व–व्यापी प्रभाव डाले तथा फ्रांस की राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति को बदल कर रख दिया। इस क्रांति के कारणों की खोज विभिन्न वर्गों ने की तथा अपने को इसमें प्रमुख कारण बताया। परन्तु फ्रांस की क्रांति राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक असन्तोष का प्रगटीकरण और फ्रांस की पुरातन व्यवस्था के खिलाफ एक जबरदस्त प्रतिक्रिया थी।

कारण– फ्रांस में क्रांतिकारी वातावरण पिछले दो सौ वर्ष से बनता आ रहा था जिसने 1789 में एक विकराल स्वरूप धारण किया। इसके निम्नलिखित कारण थे–

(A) राजनैतिक कारण– फ्रांस की राजनैतिक प्रणाली, उसके आधारभूत सिद्धान्त पुरातन और अनुपयोगी हो चुके थे, इसमें निम्नलिखित दोष क्रांति के कारण बने–

एकतांत्रिक, स्वेच्छाचारी शासन– फ्रांस का सम्पूर्ण शासन एक व्यक्ति के विवेक पर निर्भर था। व्यक्ति जो सम्राट था अपने जनता के प्रति कर्त्तव्य और सेवाभावना को भूल गया था। उसके समर्थक और अनुयायी विलासी, भ्रष्ट, स्वेच्छाचारी, चरित्रहीन और निरंकुश तथा अत्याचारी थे। जिन्होंने किसानों, मजदूरों और सामान्य वर्ग का दमन, अपमान और शोषण किया।

शासन की व्यवस्था में कुलीनों को विशेष महत्व और उच्च स्थान प्राप्त था। प्रमुख पद यह अपने धन से खरीद लेते थे। न्याय भी मनमाने ढंग से करते थे। राजा–रानी के चरित्र भी अत्यन्त दूषित थे। प्रान्तों में कुलीन राजाओं के समान व्यवहार करते थे। बिना अपराध के वे किसी को भी बन्दी बना लेते थे और उसे सजा दे सकते थे। शासन, न्याय और कानून सुन्दरता, वर्ग, लिंग, सम्बन्ध तथा विवेक से प्रभावित हो जाते थे, अतः उनमें निष्पक्षता, सिद्धान्त और न्याय आदि कहीं नहीं थे।

(B) सामाजिक दशा– फ्रांस के समाज में उस समय चार वर्ग थे– (1) पादरी (2) कुलीन (3) साधारण एवं (4) मध्यम वर्ग।

(1) **पादरी–** पादरी वर्ग में भी उच्च और निम्न पादरी थे। इनमें उच्च पादरी वर्ग में पोप, विशप, आर्कविशप और कार्डीनल थे। इनके पास बहुत धन था तथा ये बहुत शान–शौकत से रहते थे। यह बहुत बड़ी मात्रा में धन व्यय करते थे। धन प्राप्ति के इनके पास अनेक अनुचित साधन थे। 'टाईथ' नामक कर वैध साधन था। उच्चवर्गीय पादरी निम्नवर्गीय पादरियों से घृणा करते थे तथा उनका अपमान करते थे। इसी प्रकार साधारण जनता में भी इनका सम्मान नहीं था। निर्धन पादरी अवश्य जनता के प्रेम के पात्र और उसके साथी थे। अतः साधारण वर्ग और निर्धन पादरियों में उच्च पादरियों के खिलाफ असन्तोष और विद्रोह की भावनायें थीं। अतः क्रांति के आरम्भ होते ही दोनों ने उनका साथ दिया।

(2) **कुलीन–** कुलीनों को शासन, न्याय, सेना, दरबार में केन्द्र और प्रान्तों में अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे। यह अपना सारा समय विलासिता और फिजूलखर्ची में बिताते थे। इनमें घमण्ड बहुत अधिक था तथा इसके कारण यह मध्यम वर्ग और साधारण वर्ग का अपमान और शोषण करते थे। इनके अत्याचारों से दोनों ही पीड़ित थे। राज्य की ओर से यह सभी कर साधारण वर्ग पर लगाते थे और उनसे निर्दयता से वसूल करते थे। किसानों को मारना, बेदखल करना, बन्दी बनाना, उनसे बेगार करवाना और बहुत कम मात्रा में उन्हें मजदूरी देना उनके लिये रोजाना के कार्य थे। अतः इस वर्ग की निरंकुशता, विलासिता, अत्याचार, फिजूलखर्ची से जनता और मध्यम वर्ग में असन्तोष उत्पन्न हो गया।

(3) **साधारण वर्ग–** किसान और मध्यम वर्ग जनसंख्या का 80 प्रतिशत था। परन्तु एक ओर यह कुलीनों के राजनैतिक और प्रशासनिक अत्याचारों से पीड़ित था तो दूसरी ओर उच्च पादरियों के द्वारा प्रताड़ित था। इस वर्ग पर भारी करों का भार था। किसानों का एक बड़ा भाग एक ही समय भोजन कर पाता था। भुखमरी, अभाव और अपमान ने इन्हें अपराधी बना दिया था तथा इन्हें कभी भी बन्दी बनाकर जेल में डाला जा सकता था। अतः मध्यम वर्ग ने क्रांति योजना बनाई और साधारण वर्ग ने उसे पूरा किया।

(4) **मध्यम वर्ग–** इसमें डॉक्टर, वकील, इन्जीनियर, शिक्षक और छोटे व्यापारी आदि थे। यह वर्ग शिक्षित, तर्कशील, कुछ धन सम्पन्न और विचारशील था। अतः इन्होंने देश की आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक दशा को बदलने का निश्चय किया। इन्होंने सामान्य किसानों और श्रमिकों को आमंत्रित किया तथा उन्हें सम्पन्न कुलीन और पादरियों के खिलाफ भड़काया और विश्वास दिलाया कि क्रांति अवश्य सफल होगी। इसमें बौद्धिक जागरण का भी विशेष योगदान था।

(C) आर्थिक दशा– फ्रांस की आर्थिक दशा बहुत खराब और प्रतिगामी थी। सम्पूर्ण फ्रांस का केन्द्रीय और प्रान्तीय शासन धन के अभाव में दिवालिया हो चुका था। जो जितना सम्पन्न वर्ग था उतना ही कम कर देता था और समस्त करों का भार निर्धन और मध्यम वर्ग पर था। यहां तक कि नमक पर भी कर देना पड़ता था। एक्साइज, उत्पादन एवं आय आदि करों के भार के कारण बहुत भ्रष्टाचार फैल गया था तथा श्रमिक और किसान कर देने की असमर्थता के कारण बन्दी बनाये जाते थे, निर्वासित किये जाते थे और दण्डित किये जाते थे। मृत्युदण्ड भी दिये जाते थे। इस प्रकार एक ओर निर्धन वर्ग करों के भार से दबा हुआ भूखा, नंगा और परेशान था तथा उस पर सभी कर उसे देना पड़ते थे। स्थिति यहां तक आ चुकी थी कि कर न देने के कारण उन्हें जेलों में और उनके अपने घरों में बन्दी बना दिया जाता था।

राष्ट्रीय ऋण बढ़ता जा रहा था परन्तु कुलीन और पादरी विलासिता में डूबे थे और कर नहीं देते थे तथा उनकी आय भी साधारण वर्ग से बहुत अधिक थी। अतः इनके खिलाफ असन्तोष बढ़ गया जिससे क्रांति शीघ्र उत्पन्न हो गई। तूर्गो, नेकर आदि अर्थशास्त्री और प्रधानमंत्रियों ने भी आर्थिक दशा और कुलीनों की विलासिता की पोल खोलकर क्रांति को प्रोत्साहन दिया।

(D) धार्मिक दशा– क्रांति के पूर्व फ्रांस में धार्मिक दशा भी क्रांति के लिये उत्तरदायी थी। चर्च के उच्च पदाधिकारी अत्यन्त घमण्डी, विलासी और शान–शौकत वाले थे। वे न तो जनता के दुःखों की चिन्ता करते थे और न निर्धन पादरी वर्ग को ही सहायता देते थे। जनता और निर्धन पादरी उच्च पादरियों से घृणा करते थे। उच्च पादरियों की आय के अनेक अवैध साधन थे तथा वे सदैव कुलीनों का साथ देकर साधारण वर्ग पर अत्याचार करते थे।

(E) बौद्धिक कारण– फ्रांस के दार्शनिक ने गत दो सौ वर्षों से फ्रांस के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन की व्याख्या कर समाज को बता रहे थे कि निरंकुश राजतंत्र, कुलीन और उच्च पादरी जो कि सामान्य जनता का शोषण और उत्पीड़न कर रहे थे, इस दशा को जनतंत्र स्थापित कर बदला जा सकता है। दैवी अधिकार सिद्धान्त एक झूठा सिद्धान्त था अतः उन्होंने जनता के सार्वभौम सिद्धान्त का प्रतिपादन करके निरंकुश राजतंत्र और कुलीन तंत्र को बदलने की प्रेरणा दी। इनमें मिराबो, रूसो, वाल्टेयर, मान्टेस्क्यू, न्यूटन, दिदरो, तुर्गो आदि दार्शनिकों ने परिवर्तन के लिये प्रेरणा दी।

(F) अन्य और तात्कालिक कारण– अमेरिका की क्रांति भी फ्रांस की क्रांति के लिये प्रेरणा बनी और तत्कालीन कारण आर्थिक दशा बनी जब राजा की धन की मांग को ठुकरा कर कुलीन और पादरियों ने राष्ट्रीय सभा को बुलाकर साधारण वर्ग पर टैक्स लगाने को कहा परन्तु सामान्य वर्ग ने सामान्य सदस्यों की संख्या बढ़ाकर और तीनों सदनों के बहुमत से निर्णय करने को कहा अतः राजा ने अधिवेशन बुलाया और साधारण वर्गों की मांगें स्वीकार कर क्रांति को स्वीकार कर लिया तथा क्रांति उपस्थित हो गई।

निष्कर्ष– फ्रांस की क्रांति कोई एक या दो कारणों का परिणाम नहीं थी। यह तो परिस्थिति की आवश्यकता तथा परिस्थिति के खिलाफ एक विस्फोट था। सामाजिक वर्ग किसी न किसी रूप में राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं बौद्धिक कारणों के कारण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से क्रांति की तैयारी और मांग कर रहे थे। 1789 में कुलीन, पादरी और साधारण वर्ग ने भी स्टेट जनरल की मांग करके क्रांति को आमंत्रित किया।

प्रश्न–7. फ्रांसीसी क्रान्ति के विभिन्न चरणों का वर्णन कीजिये।

उत्तर– वित्तीय आवश्यकता से विवश और फ्रांस के तीनों वर्गों की माँग पर लुई सोलहवें ने राज्य–परिषद् (स्टेट्स जनरल) को आमंत्रित किया और काउन्सलर पक्यीर के शब्दों में यह क्रान्ति को आमंत्रण था। स्टेट जनरल के अधिवेशन के लिये सामान्य रूप से 5 मई, 1789 का दिन निर्धारित किया गया था। पादरी और सामन्तों ने प्रत्यक्ष विधि से अपने सदनों का निर्वाचन कर 5 मई से अपने–अपने अधिवेशन आरम्भ कर दिये। परन्तु तृतीय सदन के अधिवेशन में विलम्ब हुआ। इसका कारण उसका अप्रत्यक्ष निर्वाचन होना था।

क्रान्ति भावना का प्रगटीकरण– 1302 में स्थापित और 1614 से बिना अधिवेशन वाली राज्य–परिषद् को बुलाने की घोषणा के साथ फ्रांस के तीनों वर्गों में उत्साह की लहर प्रवाहित होने लगी। कुलीन और पादरियों में वह अवसर पाने का उत्साह था जिससे कि वे अब सामान्य वर्ग पर और अधिक करारोपण करवा सकेंगे तथा अपने विशेषाधिकारों की रक्षा करने में और राजा द्वारा उन पर लगाये जाने वाले करों से बच सकेंगे। तृतीय वर्ग भी स्वर्ण अवसर की प्राप्ति से प्रसन्न था कि अब वह एक नवीन राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्था को स्थापित करने और निरंकुश, विशेषाधिकारों को समाप्त करने के लिये क्रान्ति कर सकेगा। अतः स्टेट्स जनरल की घोषणा के साथ ही तृतीय भवन ने अपनी संख्या वृद्धि के लिये आन्दोलन आरम्भ कर दिया। राजा और प्रधानमंत्री कुछ निश्चय नहीं कर सके तथा कुलीन और पादरी इस भ्रम में रहे कि सभी निर्णय तीन भवनों के तीन वोटों में बहुमत के आधार पर होंगे। अतः संख्या वृद्धि की माँग के प्रति वे उदासीन रहे। अतः राजा ने साधारण वर्ग की

संख्या का निर्धारण निर्वाचक–गण पर छोड़ दिया। 18 मई, 1789 को निर्वाचकों ने केटलवी के अनुसार 631 सदस्यों को निर्वाचित किया। यह संख्या कुलीन और पादरियों की संख्या के योग से 38 अधिक थी। यह साधारण वर्ग की प्रथम विजय थी।

द्वितीय प्रमुख माँग निर्वाचन के बाद थी कि राज्य–परिषद् के तीनों सदनों के प्रतिनिधि एक साथ बैठकर समस्याओं पर विचार करें। सामान्य सदस्यों ने एक शिकायत पत्र दिया जिन्हें 'केहियर्स' कहा जाता था। इसमें संविधान निर्माण, अधिकारों की व्याख्या, समानता, स्वतंत्रता को स्थापित करने, गिरफ्तारी पत्रों की प्रथा की समाप्ति, राज्य–परिषद् द्वारा कानून बनाना एवं कर निर्धारित करना तथा कुलीन और पादरियों पर भी कर लगाना आदि प्रमुख माँगें और प्रस्ताव थे। यह क्रान्ति के स्पष्ट संकेत थे।

राष्ट्रीय सभा का प्रथम और अन्य क्रान्तिकारी कार्य– तृतीय सदन जब एक साथ बैठकर बहुमत से निर्णय करने की माँग कर रहा था तब कुलीन और पादरियों ने 5 मई को अपने–अपने पृथक् भवनों में बैठकर उदार नीति समाप्त करने के लिये तीव्र दबाव डाला। अतः तृतीय सदन का प्रथम दो सदनों से संघर्ष अनिवार्य हो गया। अतः तृतीय सदन ने माँग की कि–

तीनों सदन साथ बैठें, बहुमत से निर्णय करें और एक व्यक्ति एक मत का सिद्धान्त अपनाया जाये तथा 11 जून को तृतीय सदन ने केहियर्स की जाँच का दिन निर्धारित किया। परन्तु पाँच सप्ताह के वाद–विवाद के बाद मिराबो के कहने पर केहियर्स को प्रमुख मुद्दा नहीं बनाया। वास्तव में इसके नेताओं का ध्यान सार्वभौम सत्ता पर तृतीय सदन का अधिकार करवाना था। अतः इस सम्मेलन में कुलीन और पादरियों को भी शामिल होने के लिये आमंत्रित किया तथा 13 जून, 1789 को प्रथम तीन पादरी लेसीव, जेलेट और वेलर्ड और 14 जून को 9 अन्य पादरी साधारण सभा के साथ आ गये। इन्होंने 'विवेक की ज्योति में, लोककल्याण तथा अपनी अन्तर्रात्मा की आवाज शामिल होने की घोषणा की थी।' यद्यपि यह पादरी निम्न और उच्च पादरियों से असन्तुष्ट थे परन्तु इनके प्रतिनिधित्व से साधारण सभा का उत्साह इतना बढ़ा कि उसने स्वयं को 17 जून, 1789 को 'राष्ट्रीय सभा' घोषित कर दिया।

हिल्येर ब्लेक के अनुसार यह क्रान्ति का प्रथम आरम्भ था। उसने लिखा कि, 'यद्यपि इस आन्दोलन की वैधानिक उत्पत्ति नहीं थी, किन्तु यह वही क्षण था कि जहाँ से क्रान्ति ने क्रान्ति के रूप में कार्य करना आरम्भ कर दिया। स्वयं को राष्ट्रीय सभा घोषित कर उसने प्रभुत्व का एक निश्चित अंश अपने साथ जोड़ दिया जो साम्राज्य (राजा और कुलीनों) की कानूनी प्रभुता पर चोट करता था।' अब कोई भी कर राष्ट्रीय सभा की अनुमति के बिना नहीं लगाया जा सकता था। तृतीय सदन ने यद्यपि स्वयं को 'राष्ट्रीय सभा' घोषित कर दिया परन्तु राजा ने 27 जून को संयुक्त अधिवेशन की अनुमति देकर इसे वैधानिक रूप प्रदान किया।

टेनिस कोर्ट की शपथ– तृतीय सदन ने राष्ट्रीय सभा की घोषणा के पश्चात् राष्ट्रीय सभा के सदस्यों ने दूसरा प्रमुख कार्य टेनिस कोर्ट में शपथ ग्रहण करने का किया। वास्तव में राष्ट्रीय सभा की घोषणा पर हस्ताक्षर में विलम्ब करना आरम्भ कर दिया। राष्ट्रीय सभा अपना अधिवेशन 20 जून, 1789 को करना चाहती थी परन्तु राजा ने सभा भवन में ताला लगवा दिया। जब सदस्यों ने वहाँ पहुँचकर कारण जानना चाहा तो उन्हें राजा की ओर से राजकीय समारोह का फिर भवन की मरम्मत का कारण बताया गया। इससे सदस्य उत्तेजित

हो गये। निकट ही टेनिस कोर्ट के छोटे से मैदान में सदस्य जम गये। भयंकर सर्दी में एक पादरी ने रात्रि में अपने सेन्ट लुई चर्च में सदस्यों को शरण दी। 20 जून, 1789 को सदस्यों ने शपथ ग्रहण की कि, 'जब तक हम संविधान का निर्माण नहीं कर लेते तब तक भंग नहीं होंगे।' 21 जून, 1789 को राजा के छोटे भाई कोंत दे आर्तुआ ने सदस्यों को पुनः टेनिस कोर्ट में जाने को रोका। उधर राजा ने 23 जून, 1789 को आदेश दिया कि तीनों भवन अलग-अलग अपना अधिवेशन करें तथा तृतीय भवन की घोषणा को समाप्त करने की घोषणा की। इस आदेश का पालन करवाने जब सैनिक पहुँचे तो सैनिकों की संगीनों के सामने पहुंचकर **मिरबो** ने गर्जना की–

'जाओ और जिसने तुम्हें यहाँ भेजा है उसको बताओ कि हम यहाँ जनता की इच्छा से आये हैं और हम केवल तभी यहाँ से जायेंगे जब हमें तलवार की नोंक से ढकेला जायेगा।' इसके शीघ्र बाद यह भी प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किया कि, 'जो भी प्रतिनिधियों (राष्ट्रीय सभा के) से हाथ लगायेगा उसे राष्ट्र का बदनाम गद्दार समझा जायेगा और उसके लिये मृत्यु-दण्ड का विधान होगा।'

राष्ट्रीय सभा को मान्यता– राष्ट्रीय सभा के प्रतिनिधियों के संघर्ष, शपथ तथा प्रतिनिधियों को हानि पहुँचाने वालों को मृत्युदण्ड की घोषणा तथा राजा के 23 जून, 1789 के आदेश का परिणाम यह हुआ कि 24 जून और 25 जून को अधिकांश पादरी और 50 कुलीनों ने राष्ट्रीय सभा में शामिल होने की घोषणा कर दी। एक बार पुनः राजा एकाकी पड़ गया और घबरा गया अब उसे विवश होकर सभा भवन से अपने सैनिक हटाने पड़े, सभा करने की अनुमति देना पड़ी तथा 27 जून 1789 को लुई ने अपने जन्मदिन पर राष्ट्रीय सभा को स्वीकार कर लिया। यह राष्ट्रीय सभा की अथवा तृतीय सदन की दूसरी महत्वपूर्ण विजय थी। इस विजय ने यह स्पष्ट कर दिया कि राजा, कुलीन और उच्च पादरी शक्तिहीन हैं।

संविधान सभा की घोषणा– राष्ट्रीय सभा की मान्यता के पश्चात् 8 जुलाई, 1789 को उसने एक समिति का गठन करके उसे संविधान निर्माण करने का कार्य सौंप दिया तथा राष्ट्रीय सभा ने अपना ही नाम बदलकर राष्ट्रीय संविधान सभा रख दिया। यह राष्ट्रीय सभा का एक और महत्वपूर्ण कदम था।

दमन-चक्र और बस्तील का पतन– कुलीन, पादरी और राजा ने राष्ट्रीय संविधान सभा को मान्यता देकर भी उसके खिलाफ षडयंत्र रचा तथा 11 जुलाई, 1789 को नेक्कर को पदच्युत कर दिया। मेरी एन्टोयनेट ने क्रान्तिकारियों का दमन करने के लिये लगभग 40 हजार सेना को आस्ट्रिया से बुला लिया। क्रान्ति विरोधी बेरोन दी ब्रिटिमूइल को प्रधानमंत्री बनाया। 12 जुलाई, 1789 को देमूले (क्रान्तिकारी) ने पेरिस की मीनार पर चढ़कर राजा के विश्वासघात, दमन और उससे अपनी रक्षा के लिये शस्त्र उठाने का आव्हान किया। इसी समय लगभग 10 हजार फ्रांसीसी नागरिकों तथा सैनिकों को घेर लिया। परन्तु असन्तुष्ट फ्रेंच सैनिक इस भीड़ के साथ मिल गये। राष्ट्रीय संविधान सभा ने अति शीघ्रता से 'राष्ट्रीय रक्षक दल' का संगठन करके संघर्ष आरम्भ कर दिया।

बस्तील का पतन– जब राजा द्वारा दमन-चक्र चलाया जा रहा था और नेशनल गार्ड सघर्ष कर रहा था तभी एक आकस्मिक घटना घट गई। यद्यपि राष्ट्रीय संविधान सभा का

इसका कोई सम्बन्ध नहीं माना जाता परन्तु गुडविन के अनुसार यह अत्यन्त दूरगामी परिणाम वाली घटना थी।

14 जुलाई, 1789 को क्रान्तिकारियों ने बस्तील पर एक संगठित आक्रमण किया। पाँच घंटे के निरन्तर संघर्ष के पश्चात् तथा क्रान्तिकारियों ने अपने 200 सैनिक गंवा कर बस्तील पर विजय प्राप्त कर 40 प्रतिशत शस्त्रों पर अधिकार कर लिया। इस विजय पर सम्पूर्ण फ्रांस में हर्ष की लहर दौड़ गई। अब राजतंत्रवादी समझ चुके थे कि सैनिक शक्ति से उसकी विजय सम्भव नहीं थी। इसके कारण काउन्ट ऑफ आर्तुओं को अपने प्राण बचाने के लिये भागना पड़ा। राजा बुरी तरह घबरा चुका था तथा कोई कुलीन या महारानी राजा की रक्षा नहीं कर रहे थे। अतः राजा ने 17 जुलाई, 1789 को क्रान्ति के तिरंगे ध्वज को स्वीकार कर अपने सैनिकों को हटा लिया और राष्ट्रीय रक्षक दल को मान्यता दे दी तथा नेक्कर को भी पुनः नियुक्त कर दिया। इस प्रकार राष्ट्रीय सभा या संविधान सभा की यह महत्वपूर्ण विजय सिद्ध हुई।

मानव अधिकारों की घोषणा– राजा के बार-बार के विश्वासघात और सेना द्वारा दमन तथा क्रान्ति विरोधी कार्यों के कारण संविधान सभा के सदस्यों ने यह आवश्यक समझा कि शीघ्रातिशीघ्र मानव अधिकारों की घोषणा कर उन्हें लागू करवा दिया जाये तथा विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया जाये। अगस्त 4; 1789 को मानव अधिकारों का प्रस्ताव पारित कर दिया जिसके पक्ष में 570 और विरोध में 433 मत पड़े। संविधान निर्माण का कार्य बाद में पूरा किया गया। 27 अगस्त, 1789 को की गई मानव अधिकारों की घोषणा के अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणाम हुये। **लार्ड एक्टन** ने लिखा कि, 'एक छोटा कागज का टुकड़ा पुस्तकालयों से अधिक गुरुत्तर और नैपोलियन की समस्त सेनाओं से अधिक शक्तिशाली था।' **थामस** ने इसे 'आधुनिक युग का नैतिक सिद्धान्त' की संज्ञा दी तो हेजन ने इसकी विश्वव्यापी महत्ता पर प्रकाश डालते हुये कहा कि विश्व में प्रत्येक स्थान पर इस घोषणा का अध्ययन और अनुकृति की गई। विश्व में राजनैतिक प्रणाली के विकास में यह निर्विवाद तथ्य स्वतंत्रता चाहने वाले प्रत्येक देश ने अपने सिद्धान्तों को इस घोषणा में खोजा एवं पाया। किसी ने इसकी विध्वंसकारी शक्ति के सम्बन्ध में कहा कि यह 'प्राचीन शासन-प्रणाली का मृत्यु-पत्र' था।

होटल डी वैले की घटना– 4 अगस्त को कुलीन और पादरी प्रत्यक्ष रूप से अपने अधिकार त्यागने लगे। सामंतवाद अपनी विशिष्टताओं सहित एक ही बैठक में समाप्त कर दिया गया और फ्रांस में नवीन युग का आरम्भ हुआ। मानव अधिकार पारित तो हो गये परन्तु उन पर राजा के हस्ताक्षर होना शेष थे।

परोक्ष में कुलीन कुचक्री अभी भी राजा पर दबाव डाल रहे थे। अतः उसने हस्ताक्षर करने में विलम्ब किया। किसी ने 1 अक्टूबर, 1789 को अफवाह उड़ा दी कि राजा ने विदेशी सेनाओं को क्रान्तिकारियों के दमन के लिये बुलाया है और तिरंगे झण्डे का अपमान किया है। इससे फ्रांस में राजा और रानी पर सन्देह बढ़ गया। फ्रांस में हिंसक घटनायें घटने लगीं।

इसी समय एक और घटना घट गई जिसमें संविधान सभा का कोई हाथ नहीं था परन्तु शीघ्र ही यह क्रान्तिकारी आन्दोलन का एक हिस्सा बन गई। घटना 3 अक्टूबर, 1789 को

'होटल डी वैले' पर घटी। श्रमिक स्त्रियाँ जब भोजन के लिये होटल पहुँची तो मालिक ने रोटियाँ समाप्त होने की सूचना दी। इस पर स्त्रियों ने हंगामा खड़ा कर दिया तभी क्रान्तिकारी नेता दाँते भी वहाँ पहुँच गया तथा इस भीड़ को राजा के पास जाकर रोटी वाले की शिकायत करने को कहा। अतः भीड़ शीघ्र ही संघर्ष के लिये तैयार हो गई। 5 अक्टूबर, 1789 को भीड़ ने वर्साय को घेर लिया। राजा ने समस्या समाधान का यद्यपि आश्वासन दिया (दूत के द्वारा) परन्तु एक शाही रक्षक ने गोली चला दी जिससे भीड़ उत्तेजित हो गई और 6 अक्टूबर, 1789 ने वर्साय के महल का फाटक तोड़ दिया तथा राजा–रानी और उसके पुत्र को भीड़ ने घेर लिया तथा भीड़ 'रोटी वाला, रोटी वाले की पत्नि और उनके पुत्र' को साथ लेकर पेरिस आ गई जहाँ ट्यूलरीज के महल में राजा को रख दिया। इसी के साथ राष्ट्रीय सभा भी पेरिस आ गई।

राजा का पलायन असफल हुआ– 6 अक्टूबर, 1789 को राजपरिवार पेरिस में ले आया था। राजा–रानी ने वहाँ से भागने की योजना बनाई। इसी योजना के क्रम में राजपरिवार ने सर्वप्रथम राष्ट्रीय सभा (संविधान सभा) का विश्वास प्राप्त करने के लिये क्रान्ति के पक्षधर बनने का नाटक किया तथा 4 फरवरी, 1790 फिर 1790 में क्रान्तिकारियों की सभाओं को सम्बोधित किया तथा क्रान्ति सैनिकों की अभद्रता को सहन किया। मिराबो की 2 अप्रैल, 1791 में मृत्यु हो जाने से राष्ट्रीय सभा में मतभेद हो गये। अतः 20 जून को लुई का भाई भाग गया। 21 जून, 1791 को राजा–रानी रात्रि में ढाई बजे भागे। परन्तु रात्रि में घोड़े गाड़ी से भागना एक मूर्खता निकली और राजा–रानी पुनः पकड़ लिये गये और 22 जून, 1791 को पुनः पेरिस में बन्दी के रूप में रख दिया गया। 26 अगस्त, 1791 का राजपद निलम्बित कर दिया गया। परन्तु संविधान की शपथ लेने पर 14 सितम्बर 1791 को राजपद लौटा दिया।

1791 के संविधान का निर्माण– 8 जुलाई, 1789 को राष्ट्रीय सभा ने संविधान निर्माण करने के लिये एक विशेषज्ञ समिति बना दी थी। जो निरन्तर एवं शीघ्रतापूर्वक संविधान निर्माण में लगी हुई थी। इसके साथ ही राष्ट्रीय सभा ने संविधान सभा का भी रूप ले लिया था और 4 अगस्त, 1789 को मानव अधिकारों की घोषणा भी कर दी थी। संविधान के निर्माण में बस्तील की घटना से 27 अगस्त से 1 अक्टूबर तक वाद–विवाद होता रहा। 3 सितम्बर, 1791 को संविधान बनकर तैयार हो गया तथा 13 सितम्बर, 1791 को राजा ने संविधान पर हस्ताक्षर कर दिये और 18 सितम्बर, 1791 को संविधान के आरम्भ होने की घोषणा कर दी गई। राष्ट्रीय सभा या संविधान सभा ने राजा को वैधानिक प्रधान बनाया तथा एक सदनीय व्यवस्थापिका की स्थापना की। इसके निर्वाचन के लिये परोक्ष निर्वाचन प्रणाली निर्धारित की गई। पृथक् न्याय विभाग स्थापित कर दिया। पृथक् पादरी विधान 1790 बनाया गया। इस प्रकार फ्रांस में निरंकुशता और विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया गया।

प्रति निषेधात्मक प्रस्ताव– राष्ट्रीय सभा ने संविधान निर्माण और उसे कार्यान्वित करने की घोषणा के साथ ही एक प्रतिनिषेधात्मक प्रस्ताव पारित किया जिसके अनुसार उसने अपने सदस्यों पर चुनाव में खड़े होने पर प्रतिबन्ध लगा दिया और राष्ट्रीय सभा स्वयं भंग हो गई।

मूल्यांकन– स्टेट जनरल और फिर राष्ट्रीय सभा के कार्यों की समीक्षा के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि उसे प्राचीन निरंकुश, स्वेच्छाचारी शासन–प्रणाली तथा विशेषाधिकारों की समाप्ति के लिये निरन्तर संघर्ष करना पड़े जिसमें उन्हें क्रमशः सफलता मिलती चली गई। राष्ट्रीय सभा की माँग, तृतीय सदन की संख्या वृद्धि, तीनों सदनों की एक सभा राष्ट्रीय सभा का निर्माण, मानव अधिकारों की घोषणा, राजा–रानी को पेरिस लाना, संविधान का निर्माण आदि में पूर्ण सफलता मिली। दूसरी ओर राजाओं के उल्लंघन, सैनिक कार्यवाही, बस्तील दुर्ग की विजय, विशेषाधिकारों की समाप्ति आदि में भी जहाँ प्रतिनिधियों को सफलता मिली वहीं राजपरिवार और कुलीनों को असफलता मिली। हैजन ने लिखा कि, 'संविधान सभा का सुधार कार्य विशाल पैमाने पर था। यह अपने ढंग का अनोखा था। इसका ध्वंसात्मक कार्य स्थाई और बहुत महत्वपूर्ण था किन्तु रचनात्मक कार्य बहुत कम स्थाई निकला।'

राष्ट्रीय सभा अथवा संविधान सभा के कार्यों में केन्द्र को दुर्बल रखना, चर्च विधान से देश की एकता में संकट उत्पन्न करना, प्रतिनिषेधात्मक प्रस्ताव की मूर्खता आदि कार्यों से देश में और विदेश में समस्याओं को उत्पन्न किया। यद्यपि राष्ट्रीय सभा के कार्यों में यह दोष थे, परन्तु संघर्ष, निर्माण और अतिशीघ्रता के निर्णय से इन दोषों का आ जाना कोई बड़ी बात नहीं थी।

प्रश्न–8. विश्व पर फ्रांस की क्रांति के स्थायी प्रभावों की विवेचना कीजिये।

अथवा

फ्रांस की क्रांति के विश्व पर विभिन्न प्रभावों का वर्णन कीजिये।

अथवा

1789 की फ्रांस की क्रांति के प्रभावों का परीक्षण कीजिये।

अथवा

1789 ई. की फ्रांसीसी क्रांति के परिणामों की विवेचना कीजिये।

अथवा

विश्व पर फ्रांस की क्रांति के स्थायी प्रभावों का विवेचन कीजिये।

अथवा

'फ्रांस की क्रांति में से निकले सिद्धान्त विश्व के लिये मार्गदर्शक सिद्धान्त थे।' स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– फ्रांस की क्रांति में विध्वंसात्मक और रचनात्मक अभिनव सिद्धान्तों का जन्म हुआ जिन्होंने विश्व को नवीन परिवर्तनों का संदेश दिया तथा इसने विश्व की राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक दशा पर व्यापक और दूरगामी प्रभाव डाले।

(1) समानता– फ्रांस की क्रांति के पूर्व यूरोप में सामन्तवाद फैला हुआ था और कुलीनों को विशेषाधिकार प्राप्त थे, उच्च पद केवल उन्हीं को प्राप्त हो सकते थे। वे करों से मुक्त थे और करों का सारा बोझ मध्यम व निम्न श्रेणी के लोगों को वहन करना पड़ता था। फ्रांस की क्रांति के परिणामस्वरूप कुलीनों व सामन्तों के विशेषाधिकारों का अन्त कर दिया गया और अर्द्ध–दास प्रथा तथा कृषि–प्रथा समाप्त हुई। इन सिद्धान्तों का प्रसार विश्व के अन्य देशों में भी हुआ।

(2) स्वतंत्रता– फ्रांस की क्रांति के पूर्व यूरोपीय जनता को किसी प्रकार की कोई स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी। राजा सामंतों की कठपुतली था, क्रांति ने राजा की निरंकुशता समाप्त

कर फ्रांस में गणतंत्र स्थापित किया। क्रांति के पश्चात् मानव अधिकारों की घोषणा की गई, जो सारे यूरोप व विश्व के अन्य पराधीन देशों के लिये प्रेरणा-स्त्रोत बनी।

(3) **लौकिक सम्प्रभुता की स्थापना**– क्रांति के पश्चात् गणतंत्र की स्थापना हुई तथा जनता को बताया गया कि सारी प्रभुसत्ता का स्त्रोत वह स्वयं है, अतः सरकार का आधार जनता की इच्छा है। यह लौकिक प्रभुसत्ता की भावना जो फ्रांस की क्रांति से निकली सारे विश्व में व्याप्त हो गई।

(4) **राष्ट्रीयता की भावना**– क्रांति के परिणामस्वरूप फ्रांस में राजतंत्र का पतन हुआ। क्रांतिकारियों ने राष्ट्रीयता की जो भावना जगाई थी उसके कारण फ्रांस की सेना विभिन्न मोर्चों पर अजेय सिद्ध हुई। नेपोलियन के नेतृत्व में इसी भावना ने फ्रांस को महान् राष्ट्र सिद्ध कर दिया। इसी भावना के कारण आस्ट्रिया, प्रशा, स्पेन व रूस ने नेपोलियन से लोहा लिया। राष्ट्रीयता की भावना के कारण ही इटली व जर्मनी का एकीकरण सम्भव हो सका। इस तरह राष्ट्रीयता की भावना फ्रांस में उदय होकर धीरे-धीरे सम्पूर्ण यूरोप व शेष विश्व में फैल गई।

(5) **सामन्तवाद की समाप्ति व प्रजातन्त्र का उदय**– फ्रांस की क्रांति से पूर्व सारे यूरोप में सामन्तवाद फैला हुआ था। क्रांति ने सबसे पहले सामन्तों के विशेषाधिकारों का अन्त किया, राजतंत्र समाप्त हुआ व चर्च के विशेषाधिकार भी समाप्त कर दिये गये। इन विचारों का प्रसार सारे यूरोप में हुआ और फ्रांस की तरह अन्य देशों में भी लोकतंत्र का उदय हुआ।

(6) **शिक्षा का प्रसार**– प्रथम कौंसिल नेपोलियन के काल में शिक्षा की बहुत प्रगति हुई। पेरिस विश्वविद्यालय स्थापित हुआ तथा अनेक स्थानों पर राजकीय स्कूल खोले गये। इसी आदर्श पर लन्दन, न्यूयार्क तथा बर्लिन विश्वविद्यालय स्थापित हुये।

(7) **लोक-कल्याण की भावना**– फ्रांस की क्रांति के कारण लोक-कल्याण की भावना को काफी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। युद्धों में व्यस्त रहने के बावजूद नेपोलियन बोनापार्ट ने अनेक जन-हितकारी कार्य किये। कारखानों व खानों में कार्य करने वाले मजदूरों की दशा को सुधारा गया, दास प्रथा का अन्त हुआ तथा अर्द्ध-दास प्रथा समाप्त हुई। शिक्षण संस्थायें व अस्पताल खोले गये, सड़कों व नहरों का निर्माण किया गया और देश के व्यापार एवं वाणिज्य को उन्नत बनाया गया। यूरोप के क्रांतिकारी आन्दोलनों को इन बातों से काफी प्रोत्साहन मिला। आगे इसी स्वतंत्रता, समानता व भ्रातृत्व की भावना का प्रभाव विश्वव्यापी पड़ा और अनेक देशों में साम्राज्यवाद समाप्त होकर लोकतंत्र का उदय हुआ।

स्थायी प्रभाव (विशेष सन्दर्भ)– फ्रांस की क्रांति ने विश्व पर स्थायी और अस्थायी प्रभाव डाले। इनमें स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व के आदर्श विश्व के निरंकुश शासकों ने चाहे जितने कुचले परन्तु यह सम्भव नहीं हो पाया तथा जर्मनी और इटली का निर्माण हुआ और सन् 1830 एवं सन् 1848 में क्रांतियां हुईं। क्रांति ने विश्व को मानव अधिकार दिये जो क्रांति के पूर्व विश्व के लिये अपरिचित थे और जो बाद में विश्व के प्रत्येक देश के लिये परिचित ही नहीं मूल अधिकारों के रूप में अनिवार्य हो गये और प्रत्येक संविधान में उन्हें स्थान मिला। यद्यपि इनमें अनेक संशोधन हो गये परन्तु इनकी मूल भावना और उद्देश्य चिरस्थायी हो गये।

निष्कर्ष– फ्रांस की क्रान्ति ने विश्व में विशेषाधिकारों और निरंकुश शासन तंत्रों को समाप्त करके विश्व में प्रजातंत्रों को जन्म दिया। राष्ट्रीयता जो व्यक्तिवाद और सामन्तवाद के कारण स्वप्न के समान थी, मूर्तरूप धारण करने लगी। राष्ट्रीयता, विश्व-बन्धुत्व तथा मानव अधिकारों को इस क्रान्ति ने जगाया।

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न-(1) जॉर्ज वाशिंगटन का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

उत्तर- जॉर्ज वाशिंगटन– अमेरिका के बर्जीनिया स्थान पर 11 फरवरी, 1732 को जॉर्ज वाशिंगटन का जन्म हुआ था। सन् 1749 में भूमापक के रूप में कार्य कर रहे थे। उसके पश्चात् सेना में गये।

प्रथम राष्ट्रपति– जॉर्ज वाशिंगटन अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति थे। परन्तु वे अमेरिका को स्वतंत्रता दिलाने के लिये तथा अदम्य साहस और अटूट धैर्य के कारण लोकप्रिय थे। संघर्ष में उन्होंने अपार कष्ट सहन किये।

सैनिक सफलता– 6 नवम्बर, 1752 को वे मेजर के पद पर नियुक्त हुये। यद्यपि उन्हें युद्ध में निरन्तर पराजय मिली। फिर भी आकस्मिक रूप से ब्रिटिश सेनाओं पर आक्रमण कर पराजित किया और कार्नवालिस को समर्पण करने के लिये विवश किया। जिसके कारण लार्ड नार्थ को इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र देने के लिये विवश किया।

अमेरिका का नेतृत्व– 1758 में वह वर्जीनिया के प्रतिनिधि चुने गये। 1761 में उन्होंने 1887 मील लम्बी यात्रा घोड़ेगाड़ी से की। 1774 में फिलाडेल्फिया सम्मेलन में बर्जीनिया की ओर से अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। 16 जून, 1775 अमेरिकी संयुक्त प्रान्तों के अध्यक्ष बने। उन्हीं की योजना और कार्यक्षमता से इंग्लैण्ड को बाध्य होकर अमेरिका को मान्यता देना पड़ी। मई, 1787 में पुनः फिलाडेल्फिया सम्मेलन में गये और अध्यक्ष बनाये गये। 17 सितम्बर, 1787 में संविधान पर हस्ताक्षर किये और 30 अप्रैल, 1789 को राष्ट्रपति निर्वाचित हुये।

अमेरिका का निर्माण– राष्ट्रपति बनने के पश्चात् अमेरिका की संरचना का कार्य सर्वप्रमुख था। इसमें दो विचारधारायें थीं- प्रथम संघवादी और द्वितीय केन्द्रीय सत्ता की। अन्त में संघवाद को स्वीकार किया।

त्यागपत्र– वाशिंगटन के नेतृत्व में अमेरिकी, सरकार, प्रशासन, न्याय, उद्योग, कृषि, सामुद्रिक यातायात संगठित और विकसित हो चुके थे। अब उन्होंने राष्ट्रपति के पद से त्यागपत्र देकर 4 जुलाई, 1798 में वाशिंगटन में जनरल तथा प्रधान सेनापति का पद ग्रहण किया और 14 दिसम्बर, 1799 को इस महान् सेनापति और देशभक्त का निधन हो गया।

प्रश्न-(2) थॉमस जैफरसन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

उत्तर- थॉमस जैफरसन– अमेरिका के तृतीय राष्ट्रपति टामस जैफरसन थे। सन् 1733 में इनका जन्म अपने पिता पीटर जैफरसन के यहाँ हुआ। पिता ने इनकी शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया था। वह एक जमींदार थे तथा उनके यहाँ अनेक दास कार्य करते थे। उनके गणित के प्राध्यापक विलियम स्माल का उनके ऊपर गहरा प्रभाव था। महाविद्यालयीन शिक्षा के बाद वकालत करने लगे तथा एक विधवा स्त्री से विवाह किया। उनका पारिवारिक जीवन सुखी था।

स्वतंत्रता संग्राम में योगदान– 1776 से 1779 तक वह लेजिस्लेटर रहा। 1779 में जैफरसन ने मुक्त शिक्षा का विधेयक पारित करवाने का प्रयत्न किया। 10 मई, 1775 में द्वितीय फिलाडेल्फिया की बैठक में 'शस्त्र उठाने के कारण और आवश्यकता' की उग्र घोषणा की रचना जैफरसन ने ही की थी।

लोकतंत्र के पक्षधर– दासों का स्वामी स्वतंत्रता का महान् पक्षधर बना तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ उसने स्वशासन के अधिकारों को स्वीकार किया। वह दासों पर अत्याचार और निरंकुशता का घोर विरोधी था। अपने उदारवादी, प्रजातंत्रवादी विचारों के कारण उसने इन प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया।

नेपोलियन और जैफरसन– जैफरसन ने नेपोलियन से लुई जियाना को खरीदा इससे अमेरिका का क्षेत्रफल दुगना हो गया। यह सदैव से स्पेन का बन्दरगाह था। जैफरसन ने नेपोलियन की साम्राज्यवादी नीतियों का दृढ़तापूर्वक विरोध किया। इसके पश्चात् 1803 में न्यू आर्लियन्स बन्दरगाह खरीदा। यह अन्न भंडार का विश्व में सबसे बड़ा क्षेत्र बना। इससे उसकी लोकप्रियता में बहुत वृद्धि हो गई।

इस प्रकार जैफरसन शिक्षा का पोषक, स्वतंत्रता सेनानी, प्रजातंत्र को दृढ़ करने वाला, उदार तथा दासता विरोधी था। उसने अपनी समाधि पर लिखवाया 'यहाँ स्वाधीनता की घोषणा का लेखक दफनाया गया है।' विल्सन ने लिखा कि जैफरसन अपनी उपलब्धियों के कारण नहीं बल्कि मानवता के प्रति रुख के कारण अमर है।

प्रश्न–(3) 'बोस्टन टी पार्टी' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

उत्तर– चाय पर कर– सन् 1770 में प्रधानमंत्री नार्थ ने शीरे और कागज से यद्यपि कर हटा दिया परन्तु चाय पर कर जारी रखा तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत से चाय ले जाकर अमेरिका पहुँचाने का आदेश दिया जिसका अमेरिकियों ने विरोध किया।

बोस्टन टी पार्टी– क्रोधित अमेरिकियों ने 1773 में साच्यूसेट्स की राजधानी बोस्टन में जब चाय से लदा एक जहाज पहुँचा तो विरोधकर्ताओं ने चाय की 340 पेटियाँ समुद्र में फैंक दीं। इससे नाराज होकर ब्रिटिश सरकार ने सैनिकों द्वारा दमन–चक्र चलाया तथा एक सेनापति को वहाँ का राज्यपाल बनाया। अमेरिका की स्वायत्ता को पूरी तरह समाप्त कर दिया। इस घटना को ही 'बोस्टन टी पार्टी' कहा जाता है।

प्रश्न–(4) टेनिस कोर्ट की शपथ पर एक टिप्पणी लिखिये।

अथवा

'टेनिस कोर्ट की शपथ' का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

उत्तर– टेनिस कोर्ट की शपथ– तृतीय सदन ने राष्ट्रीय सभा की घोषणा के पश्चात् राष्ट्रीय सभा के सदस्यों ने दूसरा प्रमुख कार्य टेनिस कोर्ट में शपथ ग्रहण करने का किया। वास्तव में राष्ट्रीय सभा की घोषणा पर हस्ताक्षर में विलम्ब करना आरम्भ कर दिया। राष्ट्रीय सभा अपना अधिवेशन 20 जून, 1789 को करना चाहती थी परन्तु राजा ने सभा भवन में ताला लगवा दिया। जब सदस्यों ने वहाँ पहुँचकर कारण जानना चाहा तो उन्हें राजा की ओर से राजकीय समारोह का फिर भवन की मरम्मत का कारण बताया गया। इससे सदस्य उत्तेजित हो गये। निकट ही टेनिस कोर्ट के छोटे से मैदान में सदस्य जम गये। भयंकर सर्दी में एक पादरी ने रात्रि में अपने सेन्ट लुई चर्च में सदस्यों को शरण दी। 20 जून, 1789 को सदस्यों ने शपथ ग्रहण की कि, 'जब तक हम संविधान का निर्माण नहीं कर लेते तब तक भंग नहीं होंगे।' 21 जून, 1789 को राजा के छोटे भाई कोंत दे आर्तुआ ने सदस्यों को पुनः टेनिस कोर्ट में जाने को रोका। उधर राजा ने 23 जून, 1789 को आदेश दिया कि तीनों भवन अलग–अलग अपना अधिवेशन करें तथा तृतीय भवन की घोषणा को समाप्त करने की घोषणा की। इस आदेश का पालन करवाने जब सैनिक पहुँचे तो सैनिकों की संगीनों के सामने पहुंचकर मिरवो ने गर्जना की– 'जाओ और जिसने तुम्हें यहाँ भेजा है उसको बताओ कि हम यहाँ जनता की इच्छा से आये हैं और हम केवल तभी यहाँ से जायेंगे जब हमें तलवार की नाक से ढकेला जायेगा।' इसके शीघ्र बाद यह भी प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किया कि, 'जो

भी प्रतिनिधियों (राष्ट्रीय सभा के) से हाथ लगायेगा उसे राष्ट्र का बदनाम गद्दार समझा जायेगा और उसके लिये मृत्यु–दण्ड का विधान होगा।'

प्रश्न–(5) फ्रान्स की राज्य क्रान्ति में दार्शनिकों के योगदान का संक्षिप्त उल्लेख कीजिये।

उत्तर– फ्रांस के सभी दार्शनिक इंग्लैण्ड की विचारधारा और राजनैतिक प्रणाली से प्रभावित थे। अतः निरंकुशता और स्वेच्छाचारी तंत्र के खिलाफ वह संसदीय प्रणाली और उत्तरदायी लोकतंत्र स्थापित करना चाहते थे। उनका विश्वास राज्य की शक्तियों के विभाजन में भी था। सभी दार्शनिक यह कार्य बिना हिंसा के करना चाहते थे। वे जनता को अंधविश्वासों से मुक्त कर विवेकी, तर्कशील, संघर्षशील बनाना चाहते थे तथा शासन और सरकार चलाने में समर्थ बनाना चाहते थे तथा जनता को राजनीति और सरकार पर अंकुश लगाने के लिये तैयार और सबल करना चाहते थे।

प्रमुख दार्शनिक– मॉण्टेस्क्यू, वाल्टेयर और रूसो इस काल के प्रमुख दार्शनिक थे तथा वैज्ञानिक न्यूटन ने भी विज्ञान के माध्यम से राजनीतिक विचारधारा को प्रभावित किया। इनके अतिरिक्त क्वेस्त्रे, हॉलवैश, हैल्वेशियस भी थे। ज्ञानकोषकार दिदरो, अर्थशास्त्री कैने, कूर्ने आदि भी प्रमुख विचारक थे।

प्रश्न–(6) इंग्लैण्ड की वैभवपूर्ण (गौरवपूर्ण) क्रान्ति के महत्व का संक्षिप्त आकलन कीजिये।

उत्तर– इंग्लैण्ड में 1688 की क्रान्ति के लिये जेम्स द्वितीय पूर्णरूपेण उत्तरदायी था। उसने जनता के घृणापात्र कैथोलिक चर्च को प्रोत्साहन दिया, प्रोटेस्टेंटों पर मुकदमे चलाये। जेम्स के पुत्र का जन्म भी जनता के लिये उत्साहवर्द्धक नहीं था। जेम्स ने संसदीय कानूनों से स्वयं को अधिक अधिकार सम्पन्न बताया। परिणामस्वरूप संसद ने विलियम ऑफ ऑरेंज को बुलाकर सत्ता परिवर्तन कर दिया और अत्यन्त दीर्घकाल से चली आ रही संसद और राजा के मध्य प्रभुत्व की लड़ाई को समाप्त कर अनेक महत्वपूर्ण निर्णय कर दिये। उसने 'महान् मेग्नाकार्टा' की रचना की और राजा को नाममात्र का प्रधान बना दिया। रोमन कैथोलिकों पर कठोर प्रतिबन्ध लगाकर पोप, फ्रांस, स्पेन के हस्तक्षेप को समाप्त कर दिया। इसने विचार स्वातंत्र्य को सुरक्षित किया। संसद की सर्वोच्चता को निर्विवाद बनाया तथा यह सारा कार्य बिना रक्त–पात, गृह–युद्ध और संवैधानिक रूप से सम्पन्न हुआ अतः यह महान् क्रान्ति थी।

इकाई–4

दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न–1. नेपोलियन बोनापार्ट का उत्कर्ष (उत्थान) कैसे हुआ? समझाइये।

अथवा

नेपोलियन के उदय में किन परिस्थितियों का योगदान था? लिखिये।

अथवा

नेपोलियन के सम्राट बनने तक शक्ति में वृद्धि का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

उत्तर– नेपोलियन बोनापार्ट फ्रांस का सर्वाधिक प्रसिद्ध सम्राट था। इसका जन्म 15 अगस्त 1769 में कार्सिका द्वीप में हुआ था। यह एक वकील का पुत्र था तथा पेरिस और ब्रेने में शिक्षा प्राप्त करने के बाद सेना में भर्ती हो गया।

उत्कर्ष का क्रम– नेपोलियन का उदय और इसकी शक्ति में वृद्धि बहुत तेजी से हुई। साथ ही उसकी महत्वाकांक्षा में भी वृद्धि हुई जिससे उसने प्रत्येक अवसर का लाभ उठाकर उन्नति की।

(1) प्रारम्भिक सैनिक सफलता– नेपोलियन 1785 ई. में सेना में द्वितीय लेफ्टीनेंट बना। बाद में क्रांति का विरोध कर उसने राजतंत्रवादियों का विश्वास पाया इसके पश्चात्

टूलो से फ्रांसीसी जहाजी बेड़े को सुरक्षित निकालने के कारण उसे ब्रिगेडियर बनाया गया। फिर नेशनल कन्वेन्शन की भीड़ के आक्रमण से रक्षा करने के कारण उसे सेना का सेनापति बनाया गया।

(2) **डायरेक्ट्री शासन में उत्कर्ष**– नेपोलियन ने लोकप्रियता प्राप्त करके और डायरेक्टरों के चरित्र, भ्रष्टाचार और अनिश्चित दशा तथा फूट को भलीभाँति समझकर स्वयं फ्रांस का शासक बनने की योजना बनाई। इसके अन्तर्गत उसने इटली और आस्ट्रिया को जीतकर लोकप्रियता पाई तथा भावी योजना के लिये भारी मात्रा में धन भी पाया। इससे नेपोलियन को लोकप्रियता, शक्ति और धन मिल गया।

फ्रांस की अराजकता ने नेपोलियन को सत्ता दी– डायरेक्टरों के भ्रष्टाचार, अदूरदर्शिता तथा उनकी प्रशासन क्षमता के अभाव ने नेपोलियन को डायरेक्टरी शासन को समाप्त करने का अवसर प्रदान किया। मिस्त्र से लौटकर शासन के प्रमुख सेनापतियों, संसद के प्रधानों, गुप्तचर तथा पुलिस प्रधान को अपने पक्ष में करके और डायरेक्टरों को जनता में बदनाम करके उसने सत्ता पर अधिकार कर लिया।

तीन काउन्सलर और नेपोलियन– नेपोलियन ने सत्ता उलटने के पश्चात् कन्सूलेट व्यवस्था स्थापित की इसमें तीन कन्सूलेट सलाहकार थे– (1) नेपोलियन बोनापार्ट (2) एबेसियेस और (3) ड्यूको। इनमें नेपोलियन प्रमुख और सर्वप्रथम सलाहकार था।

संविधान से शक्ति प्राप्त की– नेपोलियन ने एक ऐसा संविधान बनाया जिसमें सम्पूर्ण शक्ति और सर्वोच्चता नेपोलियन को मिली। संविधान का आधार था 'विश्वास नीचे से और सत्ता ऊपर से मिलती है। संविधान में संसद के तीनों सदनों में निर्वाचन की व्यवस्थायें की गईं। इसके कारण सरकार के प्रत्येक विभाग में पदाधिकारियों की नियुक्ति और मनोनयन पूर्ण रूप से नेपोलियन के हाथों में थे। इसी प्रकार व्यवस्थापिका के निर्णय को स्वीकार करना या अस्वीकार करना, लम्बित करना आदि नेपोलियन के अधिकार में थे। संसद को बुलाना, भंग करना, स्थगित करना आदि भी नेपोलियन के अधिकार क्षेत्र में थे। इस प्रकार संविधान के द्वारा नेपोलियन की शक्ति को वैधानिकता और सर्वोच्चता मिली।'

षड्यन्त्रों ने भी शक्तिशाली बनाया– नेपोलियन से राजतंत्रवादी, कैथोलिक और जेकोवियन नाराज थे। नेपोलियन को इनमें से किसी ने गोली से मारने का प्रयत्न किया और एक संघर्ष भी हुआ जिसमें नेपोलियन के 20 अंगरक्षक मारे गये। इसके पश्चात् 1804 में एक बार पुनः यह प्रयत्न किया गया। अतः नेपोलियन ने इन षड़यन्त्रों का लाभ उठाते हुये अपने प्रत्येक विरोधी का दमन करना आरम्भ कर दिया। उसने सर्वाधिकार ग्रहण कर लिये और संविधान का भी जनता से अनुमोदन करवा लिया।

जन–स्वीकृति– जनता नेशनल कन्वेन्शन और राजतंत्र दोनों से असन्तुष्ट और परेशान हो चुकी थी। उसका विचार था कि नेपोलियन जैसा दृढ़ निश्चयी और सुधारक व्यक्ति ही फ्रांस को अराजकता, अशान्ति, संघर्ष, विद्रोह और विदेशी आक्रमणों से बचाकर उन्नति के रास्ते पर ले जा सकता है। अतः जनता ने उसकी सभी बातों और कार्यों को स्वीकार कर लिया।

विदेशी आक्रमण– फ्रांस पर सदैव जर्मनी, हॉलैण्ड, आस्ट्रिया के आक्रमण होते रहते थे और इनका भय बना रहता था लेजिस्लेटिव, नेशनल कन्वेन्शन डायरेक्टरी शासन और

नेपोलियन को इनसे संघर्ष भी करना पड़े। डायरेक्टरों की अदूरदर्शिता से यह संघर्ष और अधिक बढ़ गये। जिससे नेपोलियन को लोकप्रिय होने का अवसर मिला।

निष्कर्ष– नेपोलियन में शैशवावस्था से ही नेतृत्व, शासन, शीघ्र निर्णय, कठोर परिश्रम, महत्वाकांक्षा और अवसर न खोने के गुण थे। जिनके कारण उसने फ्रांस में उत्पन्न प्रत्येक स्थिति और दशा का लाभ स्वयं को लोकप्रिय बनाकर सम्राट बनने में किया तथा उसने अपनी शक्ति को सर्वोच्च बना लिया। नेपोलियन की महत्वाकांक्षा, उत्कर्ष, युद्ध क्षमता से सम्पूर्ण यूरोप थर्राने लगा। उसकी शक्ति इतनी अधिक हो चुकी थी कि यूरोप के सभी राष्ट्रों को उसके खिलाफ एक होकर संघर्ष करना पड़ा।

प्रश्न–2. 'नेपोलियन की शासन पद्धति पुरातन व्यवस्था और क्रान्ति का मेल था।' स्पष्ट कीजिये कि ऐसा कैसे हो सका?

अथवा

'नेपोलियन बोनापार्ट ने स्वयं को क्रान्ति का उत्तराधिकारी तथा क्रान्ति के विरुद्ध होने वाली प्रतिक्रिया की उपज सिद्ध किया था।' इस कथन की व्याख्या कीजिये।

अथवा

'नेपोलियन क्रांति का पुत्र था।' व्याख्या कीजिये।

अथवा

आप नेपोलियन के इस कथन को कैसे सिद्ध करेंगे 'कि वह फ्रेंच क्रान्ति की उपज था तथा उसने फ्रेंच क्रान्ति को नष्ट कर दिया।'

अथवा

'मैं क्रान्ति का पुत्र हूँ– मैंने क्रान्ति को नष्ट कर दिया।' नेपोलियन के इस कथन से आप क्या अभिप्राय समझते हैं?

उत्तर– क्रान्ति के प्रति नेपोलियन के दृष्टिकोण– एक बार नेपोलियन ने कहा कि 'क्रान्ति की उत्पत्ति तथा नष्ट करना दोनों मेरे हाथों का ही खेल है।' उसके इस कथन पर **प्रो. हेजेन** ने निम्न टिप्पणी की है– 'उसके इन दोनों कथनों में बहुत कुछ झूठ और बहुत कुछ सत्य था। कौंसल व्यवस्था और उसके बाद साम्राज्य व्यवस्था दोनों के अन्तर्गत क्रान्ति का बहुत–सा कार्य अक्षुण्य बना रहा, परन्तु नये शासक के विचारों और उसके निजी स्वार्थों के लिये अनेक चीजें भी नष्ट कर दी गई थीं।'

क्रान्ति का पुत्र– नेपोलियन वस्तुतः क्रान्ति का पुत्र था। यदि फ्रांस में क्रान्ति नहीं हुई होती और प्राचीन व्यवस्था के वर्ग पर आधारित विशेषाधिकार बने रहते तो एक निर्धन परिवार में जन्म लेने वाले नेपोलियन बोनापार्ट के लिये सम्राट बनना तो दूर, बड़ा सेनाध्यक्ष बनने का भी अवसर नहीं था। पुरानी व्यवस्था में राज्य के उच्च–पद केवल कुलीनों को ही दिये जाते थे।

परन्तु जब नेपोलियन अपने को क्रान्ति का पुत्र कहता था तो शायद उसका आशय होता था कि क्रान्ति के सिद्धान्त अर्थात् स्वतंत्रता, समानता तथा बन्धुत्व में उनकी श्रद्धा है और वह इन मूलभूत सिद्धान्तों की रक्षा के लिये सब कुछ करने को तैयार है। अब हम अधोलिखित बिन्दुओं में यह देखते हैं कि नेपोलियन ने इन सिद्धान्तों की रक्षा किस रूप में की है।

(1) **क्रान्ति के कार्यों में परिवर्तन**– **प्रो. हेज** के शब्दों में, 'नेपोलियन ने व्यवहार में स्वतंत्रता की अपेक्षा समानता पर अधिक बल देकर और बन्धुता की व्याख्या अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ में नहीं वरन् राष्ट्रीय अर्थ में करके क्रान्ति को बदल दिया।'

चूंकि उसने अपनी शासन व्यवस्था में प्राचीन शासन प्रणाली तथा क्रान्ति के सिद्धान्तों का संगठन किया था, अतः प्रो. हेज ने इन शब्दों द्वारा टिप्पणी की कि 'नेपोलियन के संस्मरणों से ज्ञात होता है कि वह क्रान्ति का वास्तविक उत्तराधिकारी तथा सच्चा पुत्र था। उसे महान् शक्ति जनता की इच्छा से प्राप्त हुई थी जिससे वह स्वतंत्रता, समानता तथा बन्धुत्व की भावना के क्रान्तिकारी विचारों का पोषण कर सका।'

(2) **समानता का समर्थक–** नेपोलियन क्रान्ति के आदर्श का पालन करने वाला और समानता का समर्थक था। जब वह युवक था तो उसे रूसो के विचार में जीवन की झलक दिखाई दी। परन्तु जब सत्ता उसके हाथ में आ गई तो उसने समानता के सिद्धान्त को इस कारण स्वीकार किया, क्योंकि एक तो उसे इसी कारण जीवन में सफलता प्राप्त हुई थी और दूसरे फ्रांस की जनता अब भी राजा के शासन को पसन्द करती थी। नेपोलियन ने निम्नलिखित उपायों को प्रायोगिक रूप दिया–

(i) **सामन्ती व्यवस्था का अन्त–** नेपोलियन ने बूर्बो वंश के लोगों को 15 वर्ष तक फ्रांस में प्रविष्ट नहीं होने दिया। उसके पश्चात् जब उन लोगों को फ्रांस में आने की आज्ञा मिली तो वे उस व्यवस्था को आधे से अधिक भूल चुके थे। नेपोलियन ने अपनी निरंकुशता के पौधे को लगाया, परन्तु पुरानी व्यवस्था की विषमता और विशेषाधिकारों को स्थापित करने का उसने कभी प्रयास नहीं किया।

(ii) **नागरिक समानता–** फ्रांस में सब नागरिक समान माने गये। वे सब प्रकार से कानूनों द्वारा शासित थे। उन सभी के लिये एक समान करों की अदायगी की व्यवस्था की गई थी।

(iii) **शिल्पी श्रेणियों को समाप्त करना–** क्रान्ति के पूर्व व्यवसायों तथा व्यापार पर शिल्पी श्रेणियों का एकाधिकार होता था। क्रान्ति काल में इन शिल्पी श्रेणियों को समाप्त कर दिया गया।

(iv) **धार्मिक तथा सामन्तीय करों की अन्त्येष्टि–** अब फ्रांस में कोई एक वर्ग दूसरे वर्ग से किसी प्रकार का कर वसूल नहीं कर सकता था। धार्मिक करों को भी खत्म कर दिया गया था, उन्हें दोबारा लागू नहीं किया गया।

(v) **राज्य सेवाओं में समानता–** राज्य की सैनिक तथा असैनिक सेवाओं के द्वार सब लोगों के लिये खोल दिये गये। प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार दिया गया कि वह अपनी योग्यतानुसार राज्य के उच्च-पद पर पहुँच सकता है मानव अधिकारों की घोषणा में उद्घोषित इस सिद्धान्त को नेपोलियन ने बड़ी मजबूती के साथ स्थापित किया। उन्नति के लिये राज्य के अध्यक्ष के प्रति भक्ति भावना का होना आवश्यक था।

हेजन के शब्दों में– 'उसके बड़े-बड़े सेनाध्यक्ष साधारण परिवार में पैदा हुये थे।'..... बोनापार्ट की यह धारणा नहीं थी कि सब व्यक्ति नैसर्गिक प्रतिभा अथवा सामाजिक स्थिति की दृष्टि से समान है। फिर भी उसने कानून के सामने समानता के सिद्धान्तों को, जो क्रान्ति की [illegible] अमूल्य देन थे, बनाये रखा।

क्रान्ति का नष्टकर्ता– क्रान्ति का प्रभुत्व आदर्श स्वतंत्रता को माना गया था अर्थात् शासन द्वारा व्यक्ति को इतनी स्वतंत्रता दी जानी चाहिये, जिससे कि वह राज्य द्वारा लगाये करों को

सरलतापूर्वक अदा कर सके। परन्तु नेपोलियन स्वतंत्रता देने के पक्ष में नहीं था। उसने इस तथ्य को उजागर करने के लिये प्रचार का सहारा लिया कि फ्रांस की जनता स्वतंत्रता नहीं चाहती है।

(1) **स्वतंत्रता का अपहरण–** नेपोलियन के शासन-काल में जनता को पुस्तकें लिखने, समाचार-पत्रों में अपने वक्तव्य या लेख देने तथा स्वतंत्र भाषण देने की जरा भी स्वतंत्रता नहीं थी। सैंसर की अनुमति के बिना यह सब कार्य नहीं किये जा सकते थे। समाचार-पत्रों पर इतना कठोर नियंत्रण था कि सन् 1805 में ट्रेफल्गर के युद्ध की पराजय का समाचार सन् 1814 में नेपोलियन के पतन होने तक किसी भी फ्रांसीसी समाचार-पत्र में नहीं छपा। नेपोलियन ने बौद्धिक तथा मानसिक दोनों प्रकार की स्वतंत्रता छीन ली थी।

(2) **कठोर शासन–** सन् 1810 ई. तक नेपोलियन ने फ्रांस में पुलिस को बहुत अधिकार दे दिये। उस वर्ष एक नवीन कानून के अनुसार राज्य-परिषद् के आदेश पर किसी भी व्यक्ति को बिना मुकद्दमा चलाये कारागार में रखा जा सकता था। प्रो. थामसन ने लिखा है, 'वह पुरानी व्यवस्था के मुद्रित पत्रों को दोबारा चालू करना चाहता था।'

(3) **धर्म तथा शिक्षा पर शासन का प्रभुत्व–** देश में धर्म तथा शिक्षा दोनों पर शासन का नियंत्रण था। नेपोलियन ने अपनी इच्छानुसार चर्चों को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की थी। स्कूल, कॉलेज आदि भी अपनी इच्छानुसार चलाये थे।

(4) गणतंत्र की स्थापना– क्रान्ति द्वारा राजतंत्र का अन्त कर दिया गया था और उसके स्थान पर गणतंत्र की स्थापना की गई थी।

(5) भ्रातृत्व भाव की समाप्ति– क्रान्ति ने भाई-चारे की भावना को पुनः जीवित किया था। क्रान्तिकारी, अन्तर्राष्ट्रीय मानवता तथा बन्धुत्व की भावना को जीवित रखकर ही आगे बढ़ पाये थे, परन्तु नेपोलियन ने इस भावना को दूसरे दृष्टिकोण से देखा। उसने केवल फ्रांसीसियों में ही भ्रातृत्व की भावना को जाग्रत किया। विश्व-बन्धुत्व की भावना को भुला दिया।

दोनों उक्तियों का मूल्यांकन– इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि नेपोलियन द्वारा कथित दोनों उक्तियां सही थीं अर्थात् 'मैं क्रान्ति का पुत्र हूं' तथा मैंने क्रान्ति को नष्ट कर दिया है।

समानता की भावना को उजागर करके उसने क्रान्ति के विचारों की रक्षा की तथा बन्धुत्व को कुचलकर उसने क्रान्ति को तोड़ा व कुचल दिया।

ग्रान्ट तथा टेम्परले के शब्दों में– 'नेपोलियन क्रान्ति का पुत्र था परन्तु उसने उन आन्दोलनों के उद्देश्यों और सिद्धान्तों को उलट दिया था। वह क्रान्ति का पुत्र था, ऐसा पुत्र जिसने अपनी माता क्रान्ति की हत्या कर दी थी।'

प्रश्न–3. प्रथम कौंसिल के रूप में नेपोलियन बोनापार्ट के सुधारों की विवेचना कीजिये।

अथवा

प्रथम सलाहकार या प्रथम कन्सूलेट से क्या अभिप्राय है? इस रूप में नेपोलियन ने कौन से सुधार कार्य किये? वर्णन कीजिये।

अथवा

नेपोलियन की विधान संहिता के विशेष वर्णन के साथ उसके प्रशासनिक सुधारों का वर्णन कीजिये।

अथवा

'नेपोलियन के सुधार उसकी विजयों से अधिक स्थायी थे।' इस कथन की विवेचना कीजिये।

अथवा

फ्रांस के तीन सलाहकारों के नाम बताते हुये स्पष्ट कीजिये कि फ्रांस में सुधारों का श्रेय किसे प्राप्त हुआ?

अथवा

नेपोलियन के आन्तरिक सुधारों का वर्णन कीजिये।

उत्तर– फ्रांस में डायरेक्टरी शासन को नेपोलियन ने नवम्बर, 1799 में समाप्त कर दिया और तीन कन्सूलेटों की घोषणा की। इनमें प्रथम स्वयं नेपोलियन, द्वितीय एबेसियेस और तृतीय ड्यूको थे। इन्होंने एक नवीन संविधान के द्वारा जन आकांक्षाओं की पूर्ति का जनता को आश्वासन दिया और फ्रांस की रक्षा तथा उसके गौरव की वृद्धि के वचन दिये। इस प्रकार प्रथम कन्सूलेट का शासन और सुधार कार्य नेपोलियन द्वारा आरम्भ हुये।

कन्सूलेट– शासन में प्रथम काउन्सिल के रूप में एक प्रकार से सारी शक्तियां नेपोलियन के हाथों में केन्द्रित हो गईं। उसने सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। नये संविधान की रचना की गई, जिस पर जनता ने पूर्ण सहमति प्रदान की। विदेशों में सफल सैनिक-अभियान किये। देश में सुधारों का पता लगाया गया जिसमें से कुछ तो देश-विदेश के लिये वरदान साबित हुये। नेपोलियन ने फ्रांस के लिये विधि संहिता तैयार करवाई, जो आज भी फ्रांस की कानूनी पद्धति का प्रमुख स्रोत है, 2 दिसम्बर, सन् 1804 को पोप की उपस्थिति में बड़े वैभवपूर्ण वातावरण में नेपोलियन का राज्याभिषेक किया गया या उसने कहा- 'मैं क्रान्ति का रोमान्स बन्द करने के लिये, आक्रमणों को करने के लिये अपव्ययों को सही करने और विजयों को प्राप्त करने के लिये आया हूँ।' आगे नेपोलियन ने कहा, 'फ्रांस का राजमुकुट धूल में पड़ा था, उसे तलवार की नोंक से उठाकर मैंने सर पर रख लिया।'

कन्सूलेट से संविधान का निर्माण– जनता देश में स्वतंत्रता तथा भाई-चारे का शासन चाहती थी इसलिये दो समितियों का निर्माण किया गया ताकि संविधान की नये सिरे से रचना की जा सके। उस समय के सुविख्यात राजनीतिज्ञ ऐबेसिएज के नेतृत्व में 1795 के संविधान में संशोधन कराया गया, क्योंकि पुराने संचालक मण्डल के संविधान में अनेक त्रुटियां रह गईं थीं। संविधान के पक्ष में मतदान कराया गया। 20 लाख व्यक्तियों में से केवल 1,562 मतदाताओं ने संविधान के विरोध में मत दिये। अतः संविधान निर्माण का कार्य शुरू किया गया।

1. तीन कौंसिलों का मनोनयन– नवीन संविधान के निर्माण हेतु तीन कौंसिलों-ऐबेसियेज तथा ड्यूको को नियुक्त किया गया। इसमें प्रथम कौन्सल नेपोलियन था। नये संविधान के अनुसार कार्यपालिका की सारी शक्तियां तीनों कौन्सिलों में नियुक्त थीं परन्तु व्यावहारिक रूप में नेपोलियन के हाथ में प्रशासन सम्बन्धी सारी शक्तियां सिमट गई थीं। प्रथम कौन्सल देश के उच्च पदाधिकारियों राजदूतों, न्यायाधीशों आदि को नियुक्त करता था। उसे विदेशों से सन्धि तथा युद्ध के भी अधिकार दिये गये। इस प्रकार नेपोलियन को शासन सम्बन्धी असीमित अधिकार प्राप्त थे।

2. व्यवस्थापिका सभा– कानूनों का निर्माण करने के लिये चार सभाओं में प्रबन्ध किया गया। इन सभाओं के सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार के रूप में होता था। इन्हीं लोगों में से राज्य सभा, सीनेट, ट्रिब्यूनेट तथा व्यवस्थापिका सभा के अध्यक्ष को भी चुना जाता था।

(i) **राज्य सभा–** यह प्रथम सभा कानून बनाने का कार्य करती थी।

(ii) **ट्रिब्यूनेट–** यह द्वितीय सभा थी। इसमें सदस्यों की संख्या 100 रखी गई थी। सीनेट नामधारी चौथी सभा को साधारण चुनावों में सफल प्रत्याशियों की सूची में उन्हें निर्वाचित करने का अधिकार दिया गया। इस सभा का कार्य राज्य सभा द्वारा प्रस्तावित कानूनों तथा बिलों पर वाद-विवाद द्वारा उनका समर्थन आदि करना था।

(iii) **तृतीय सभा (व्यवस्थापिका सभा)–** यह तृतीय सभा थी जो कानूनों का निर्माण करती थी। इसके सदस्यों का चुनाव भी सीनेट द्वारा होता था।

(iv) **सीनेट–** यह चतुर्थ तथा अन्तिम सभा थी। इसमें 60 सदस्य होते थे। इन्हें भी प्रथम कौन्सल मनोनीत करता था। यह सभा कानूनों को अन्तिम रूप से या तो पारित करती थी या रद्द कर देती थी। यह तीनों को भी निर्वाचित करती थी। कौन्सलों को दस वर्ष के लिये चुना जाता था। इस प्रकार संविधान की पूरी रक्षा का भार सीनेट के ऊपर ही था।

3. प्रान्तीय तथा स्थानीय शासन व्यवस्था– नये संविधान ने प्रान्तीय तथा स्थानीय शासन व्यवस्था के पुरातन रूप को भी बदलने का कार्य किया। प्रान्तीय सूबेदारों, नायब सूबेदारों, नगरों के मेयर तथा पुलिस के उच्च अधिकारियों की नियुक्ति प्रथम कौन्सल करता था। शासन की शक्ति मेयर आदि के हाथों में सौंप दी गई ताकि शासन का कार्य सुचारू रूप से चले। नेपोलियन धीरे-धीरे फ्रांस का सर्वेसर्वा बनता जा रहा था। फ्रांस के शासन की सम्पूर्ण शक्ति नेपोलियन बोनापार्ट के हाथों में समाती जा रही थी। वह बहुधा कहा करता था कि 'क्रान्ति मैं स्वयम् हूँ।'

4. संविधान का मूल्यांकन– साधारणतः संविधान लोकतंत्रों के सिद्धान्तों पर आधारित प्रतीत होता था, परन्तु वास्तविकता कुछ और ही थी। लोकप्रिय शासन की ओट में संविधान के नियम निरंकुश राजतंत्र का प्रदर्शन करते थे जनता के अधिकारों की ओर नाममात्र का ध्यान दिया गया था। राज्य की सम्पूर्ण शक्ति एक प्रकार नेपोलियन के हाथ में केन्द्रित हो गई थी।

प्रथम कौन्सल के रूप में नेपोलियन के सुधार– नेपोलियन नवम्बर, 1799 ई. में फ्रांस का प्रथम कौन्सल बन गया था। सन् 1804 में वह फ्रांस का सम्राट बन गया था। यह सन् 1799 से 1804 तक का यह शासन-काल कौन्सल शासन-व्यवस्था के अन्तर्गत आता है। नेपोलियन ने सुधारों का कार्य कौन्सल शासन-व्यवस्था के युग में ही किया। नेपोलियन ने निम्नांकित सुधार किये थे-

(1) स्थानीय शासन का केन्द्रीयकरण– जार्ज डब्लू. साउथगेट के शब्दों में- 'बूर्बोन शासन के अत्यधिक केन्द्रीयकृत शासन का क्रान्ति के आरम्भिक दिनों में स्थानीय शासन की एक

विशद पद्धति द्वारा अत्यधिक विकेन्द्रीकरण कर दिया गया था। इस गलती को अब नेपोलियन ने सुधार दिया।'

जिले और कम्यून को नहीं बदला गया, परन्तु उनका शासन निर्वाचित पदाधिकारियों से लेकर (प्रीफैक्टो) तथा (मेयरों) के हाथों में दे दिया गया। इन लोगों का चुनाव नेपोलियन (प्रथम कौन्सल) स्वयं करता था। ये लोग उसी के नियंत्रण में कार्य करते थे। इस व्यवस्था पर टिप्पणी करते हुये- **प्रो. हेजन** ने लिखा है, 'इस अत्यधिक केन्द्रीयकृत प्रशासन में लोगों का सार्वजनिक मामलों में सीधा दखल तो भले ही समाप्त हो गया, परन्तु इसमें यह लाभ भी था कि सरकार की अज्ञाप्तियों को तुरन्त और एक समान रीति से कार्यान्वित किया जा सकता था।'

(2) **आर्थिक सुधार**– सन् 1789 के निरंकुश राजतंत्र तथा 1799 के डायरेक्टरी के पतन के कारण देश की आर्थिक स्थिति विचारणीय हो गई थी। नेपोलियन ने इस स्थिति को समझ लिया। अतः उसने राज्य द्वारा कर इकट्ठा करने की नीति में सुधार किया, घूस लेने वाले कर्मचारियों को दण्डित किया गया। **(प्रो. हेजन)** के शब्दों में– 'आर्थिक, धार्मिक, न्यायिक, शिक्षा सम्बन्धी सभी क्षेत्रों में उसने व्यक्ति की स्वतंत्रता को समाप्त करके राष्ट्री केन्द्रीयकरण और सैनिक तानाशाही की प्रवृत्ति दिखाई।'

इतिहासकार हेरल्ड ने लिखा है 'इस अनुभवहीन नवयुवक सैनिक अधिकारी ने जिस तत्परता तथा निर्भीकता से प्रशासन की समस्याओं को सुलझाया, वह अति मानवीय है। इस तीस वर्षीय प्रथम कौन्सल ने सत्तारूढ़ होने के बाद कुछ ही समय में ऐसा दक्ष प्रशासन स्थापित कर दिया, जैसा पिछले 150 वर्षों में नहीं देखा गया था।'

(3) चर्च में सुधार– क्रांति के शुरू के दिनों में राष्ट्रीय महासभा ने चर्च तथा मठों की सम्पत्ति का अपहरण कर लिया था। अतः पादरियों ने विद्रोह की नीति अपनाई थी। क्रान्तिकारियों ने पादरियों पर देशद्रोही होने तथा विदेशी होने का आरोप लगाया था। कैथोलिक चर्च की मान्यता छीन ली गई थी।

प्रो. हेजन के शब्दों में, इस प्रकार फ्रांस में कैथोलिक चर्च की फिर से स्थापना हो गई, परन्तु राष्ट्रीय सरकार के साथ इसका सम्बन्ध लुई चौदहवें के काल की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ हो गया। यह व्यवस्था इतनी सफल रही कि सन् 1801 से 1905 तक चर्च और राज्य के सम्बन्ध इसी के आधार पर बने रहे।

(1) **कानून संहिता की रचना**– सन् 1789 में फ्रांस में कोई एक कानून संहिता नहीं थी। लगभग 285 कानून संहितायें अलग-अलग भागों में काम करती थीं। जो बात एक शहर में कानून सम्मत थी। वही दूसरे शहर में गैर-कानूनी मानी जाती थी। राष्ट्रीय महासभा की इच्छा थी कि एक सरल और सुबोध कानून संहिता बनाई जाये। राष्ट्रीय कन्वेन्शन ने इस सम्बन्ध में प्रयत्न भी किया, परन्तु गृहयुद्ध छिड़ जाने के कारण यह कार्य सम्पन्न नहीं हो सका। सन् 1800 में प्रथम कौन्सल नेपोलियन ने इस कार्य को हाथ में लिया।

नेपोलियन ने स्वयं कहा, 'मेरी सैकड़ों विजयें नहीं वरन् विधि संग्रह मुझे अमर करेगा।'

नेपोलियन के विधान के सम्बन्ध में प्रो. हेज के इन शब्दों को भी नहीं भुलाया जा सकता, फ्रेंच विधानों को संसार में काफी समय तक सुविधा तथा प्रबुद्धता परिपूर्ण माना जाता रहा।

नेपोलियन को महान् न्यायकर्ता के रूप में मान्यता देना उचित ही है।

(5) **राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचलन**– नेपोलियन ने पांच प्रकार की शिक्षा संस्थाओं का निर्माण किया–

(i) **प्राथमिक शिक्षा**– कम्यूनों, प्रीफैक्टों या नगरपालिकाओं की देख-रेख में चलाने का कार्य किया गया।

(ii) **माध्यमिक विद्यालय**– इसमें फ्रांसीसी, लैटिन भाषा या प्रारम्भिक विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी। इन विद्यालयों पर सरकार का नियंत्रण रहता था।

(iii) **उच्च विद्यालय**– इनके अध्यापकों को राज्य द्वारा नियुक्त किया जाता था। ये प्रत्येक शहर में खोले गये।

(iv) तकनीकी विद्यालय, सिविल सेवा विद्यालय तथा सैनिक विद्यालय ये सभी सरकारी नियंत्रण में रहते थे।

(v) **विश्वविद्यालय**– देश में 'फ्रांस विश्वविद्यालय' के नाम से एक विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। इस विश्वविद्यालय के पदाधिकारियों की नियुक्ति स्वयं प्रथम कौन्सल के द्वारा होती थी। इस विश्वविद्यालय में लायसेंस पाये बिना कोई भी व्यक्ति नया विद्यालय नहीं खोल सकता था।

लुई फिशर के शब्दों में– 'वह लोगों को शिक्षा के कार्य को अवसरवादिता की खिलवाड़ की दृष्टि से व्यक्तिगत जोखिम तथा धन-समर्पण पर छोड़ना राजनीतिक दृष्टि से पागलपन समझता था।'

प्रो. हेज के शब्दों में– 'नेपोलियन ने पूरा प्रयत्न किया कि राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली धन की कमी तथा अनुभवी शिक्षकों के अभाव में ग्रस्त न रहे।'

(6) **सार्वजनिक निर्माण कार्य**– नेपोलियन के पास बड़ी संख्या में युद्ध बन्दी थे उनके द्वारा नेपोलियन ने थोड़े से व्यय में अनेक प्रकार के सार्वजनिक, निर्माण कार्य करवा डाले। उसने लगभग 229 बड़ी सड़कों का निर्माण करवाया, पुरानी नहरों की फिर से मरम्मत की गई तथा शेर, बुर्ग तथा तूलोन जैसे कई बड़े बन्दरगाहों का विकास किया गया। उनकी रक्षा के लिये सेना रखी गई।

प्रो. हेज के शब्दों में– 'देश का आर्थिक विकास इतनी तेजी से हुआ कि इंग्लैण्ड भी चिन्तित हो उठा।'

इसके साथ पेरिस नगर को भी सुन्दर बनाया गया। राजकीय महलों की मरम्मत करके उन्हें फिर से सजाया गया।

(7) **औपनिवेशिक राज्य का विस्तार**– नेपोलियन ने फ्रांस के औपनिवेशिक विस्तार की ओर भी ध्यान दिया। सन् 1800 ई. में उसने स्पेन से लुइयाना का प्रदेश ले लिया। कुछ काल के पश्चात् उसने हैती पर अधिकार करने के लिये जनरल लेक्लर्क के नेतृत्व में एक बड़ी सेना भेजी। सन् 1803 में उसने लुईयाना का क्षेत्र अमेरिका (संयुक्त राज्य) को बेच दिया।

(8) **उपाधियों का जीवनदान**– क्रान्तिकारियों ने सम्मानसूचक उपाधियों को समाप्त कर दिया था परन्तु नेपोलियन ने उन्हें पुनः प्रचलित किया। देश के प्रति विशिष्ट सैनिक या असैनिक सेवा करने वाले व्यक्तियों को पुनः उपाधियों का वितरण शुरू कर दिया। नेपोलियन ने ये उपाधियां किसी विशेष सम्प्रदाय, वंश, लिंग, पद या धर्म के आधार पर वितरण नहीं

कीं। **प्रो. हेजेन के शब्दों में**, 'नेपोलियन ने 48,000 उपाधियों में से असैनिक अधिकारियों को केवल 1,400 उपाधियां प्रदान की थीं।'

(9) **सैंसर का निर्माण**– नेपोलियन जनता को पूर्ण स्वतंत्रता नहीं देना चाहता था। इसलिये उसने पुस्तकों, समाचार–पत्रों आदि पर सैंसर बिठा दिया। सैंसर की पूर्व स्वीकृति के बिना कोई भी पुस्तक या समाचार–पत्र का प्रकाशन नहीं हो सकता था।

(10) **पादरियों के साथ दयालुता का व्यवहार**– क्रान्ति की उथल–पुथल में देश में अनेक पादरी तथा धर्माधिकारी फ्रांस से भागकर यूरोप के अन्य देशों में चले गये थे। नेपोलियन ने भगोड़ों, पादरियों तथा क्रान्ति से असन्तुष्ट लोगों के लिये पुनः फ्रांस में आकर रहने के लिये छूट दी। परन्तु उन पर यह शर्त रखी गई कि वह देशभक्ति तथा राजभक्ति की गारन्टी देंगे।

नेपोलियन द्वारा किये गये सुधारों का महत्व– नेपोलियन ने जो सुधार अपने देश के हित में किये उनका फ्रांस के इतिहास में बड़ा महत्व है। **जार्ज पैरिसेट** के शब्दों में– '19वीं शताब्दी में फ्रांस का इतिहास अनेक दृष्टियों से नेपोलियन के द्वारा किये गये परिवर्तनों तथा सुधारों के विरुद्ध कठोर प्रतिक्रिया थी। वस्तुतः ये ही उसके रचनात्मक कार्य थे, जिन्होंने उसे अत्तिला और चंगेज खां की कोटि से अलग रखा।'

उसने पोप के साथ समझौता करके ईसाई धर्म के प्रति विरोध की भावना को समाप्त कर दिया। उसने कलाओं को संरक्षण दिया। पेरिस को यूरोप का सबसे सुन्दर नगर बनाने का श्रेय नेपोलियन को ही दिया जाता है। उसके सुधारों के कारण नेपोलियन संसार के रंग–मंच पर इतना लोकप्रिय हो गया कि अगले दस वर्षों तक उसकी धाक जमी रही।

क्रांति का पालन कहां तक किया?– नेपोलियन के सुधारों को पढ़ने के बाद लगता है कि क्रांति के प्रथम सिद्धान्त 'स्वतंत्रता' का उसने पालन नहीं किया बल्कि द्वितीय सिद्धान्त 'समानता' का उसने सर्वाधिक पालन किया। तृतीय सिद्धान्त 'बन्धुत्व' को उसने राष्ट्रीयत्व के रूप में ढालकर पालन किया।

निष्कर्ष– नेपोलियन एक विजेता, योद्धा था परन्तु इससे भी अधिक उसमें प्रशासन की मौलिक क्षमता थी। वह अपने समय के सभी राजाओं से अधिक प्रतिभाशाली था। उसके राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक सुधार तो महत्वपूर्ण हैं परन्तु उसका नेपोलियन कोड विश्व में सबसे अधिक महत्वपूर्ण और लोकप्रिय था। स्वयं नेपोलियन के अनुसार उसकी सेनायें पराजित हो सकती हैं, उसका साम्राज्य भी नष्ट हो सकता है परन्तु उसका नेपोलियन कोड अमर रहेगा।

प्रश्न–4. नेपोलियन के पतन में स्पेन के युद्ध की भूमिका के विशेष सन्दर्भ में कारणों का उल्लेख कीजिये।

अथवा

नेपोलियन के पतन के कारणों पर प्रकाश डालिये।

अथवा

'नेपोलियन के पतन में व्यापार निषेध, मास्को अभियान और स्पेनी पर आक्रमण कहां तक उत्तरदायी थे?' स्पष्ट कीजिये।

अथवा

लियन बोनापार्ट के पतन के कारणों की विवेचना या वर्णन कीजिये।

अथवा

'नेपोलियन के पतन के लिये उसकी साम्राज्यवादी और स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति उत्तरदायी थी।' यह कथन कहाँ तक सत्य है?

उत्तर– इटली के कार्सिका द्वीप में 15 अगस्त, 1769 में जन्मा बालक फ्रांस के उप–लेफ्टीनेण्ट के पद से प्रगति करता हुआ 1802 में फ्रांस का सम्राट बन गया और समस्त यूरोप को पदाक्रान्त कर 1807 में अपनी शक्ति की चरम सीमा पर पहुँच गया, किन्तु दूसरे राष्ट्रों को अपना अनुचर बनाने वाला नेपोलियन 1808 से पतनोन्मुख होने लगा तथा 1815 में वह अपने साम्राज्य, राज्य, पद, प्रतिष्ठा के साथ स्वयं समाप्त हो गया। नेपोलियन के पतन के लिये निम्न कारण विचारणीय हैं–

1. **अति महत्वाकांक्षी**– नेपोलियन का सम्पूर्ण जीवन अति महत्वाकांक्षाओं से परिपूर्ण था। 1793 में वह उप लेफ्टीनेंट था परन्तु टूलों के बन्दरगाह की विजय के कारण ब्रिगेडियर बना 1795 में नेशनल कन्वेन्सन की रक्षा कर वह प्रमुख सेनापति बना तथा आस्ट्रिया इटली को पराजित कर और डायरेक्टरी को समाप्त कर सत्ता पर अधिकार किया। फिर सम्पूर्ण यूरोप को आधीन बनाया परन्तु इंग्लैण्ड पर अधिकार की उसकी महत्वाकांक्षा ने उसे अनेक युद्ध करने के लिये तत्पर बनाया और इसी आकांक्षा में वह सम्पूर्ण यूरोप का शत्रु बन गया और सभी के संयुक्त प्रयासों से वह पराजित हुआ।

2. **आक्रामक साम्राज्यवाद**– नेपोलियन एक सैनिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था तथा उसकी उन्नति और शक्ति का आधार सैनिक शक्ति या शस्त्र शक्ति थी। सम्राट बनते ही उसने छोटे और बड़े यूरोपीय देशों पर आक्रमण कर अपने साम्राज्य में मिलाना आरम्भ किया। अनेक देशों को अपनी इच्छानुसार तोड़कर नवीन राज्यों का निर्माण किया तथा अपने भाइयों को राजा बनाया जैसे जोसेफ को स्पेन और नेपल्स का राजा बनाया, हॉलैण्ड का राजा लुसियन को बनाया। रूस पोलैण्ड पर नेपोलियन के अधिकार के कारण, प्रशा राईन प्रदेश पर अधिकार और देश के विभाजन के कारण, आस्ट्रिया बारम्बार पराजित होने के कारण और इसी प्रकार स्वीडन, स्पेन, पुर्तगाल, इटली, रोम, हॉलैण्ड (बेल्जियम) नेपोलियन के साम्राज्यवादी आक्रमणों से परेशान थे तथा उसके साम्राज्य को मिटाने के लिये कृत संकल्पित हो गये।

3. **निरन्तर युद्ध**– सम्राट बनने के बाद नेपोलियन ने 1804 से लगभग प्रतिवर्ष निरन्तर संघर्ष किये। उसने कुछ राष्ट्रों के साथ दो–दो बार और कुछ के साथ अनेक बार युद्ध किये। आस्ट्रिया तो 1798 से ही नेपोलियन से संघर्ष कर रहा था। इनमें से अनेक युद्ध नेपोलियन की प्रतिष्ठा तथा सैनिक शक्ति के लिये अत्यन्त घातक सिद्ध हुये। इन युद्धों में नेपोलियन की शक्ति क्षीण होती चली गई जिससे मित्र संघ उसे पराजित करने में सफल हो गये।

4. **राष्ट्रीय भावना**– यह एक सर्व मान्य सिद्धान्त है कि आक्रामक देश ने जब भी किसी निर्बल देश को आधीन बनाया तो वहाँ राष्ट्रीय भावनाओं का उदय हुआ तथा उन्होंने अपनी स्वतंत्रता, देश–रक्षा आदि के लिये संघर्ष किये। साम्राज्यवादी संघर्षकर्ताओं की भावना लूट, दमन और विस्तार की होती है जबकि आधीन देश की संघर्ष की प्रेरणा अपने अस्तित्व की रक्षा की होती है। इसी भावना से स्पेन, रूस, स्वीडन, प्रशा और आस्ट्रिया लड़े और नेपोलियन का अन्त में पतन हुआ।

5. **नेपोलियन का मिथ्याभिमान**– इतिहास में नेपोलियन के पूर्व भी अनेक साम्राज्यवादी, विस्तारवादी और विश्व को अपने आधीन बनाने की आकांक्षा रखने वाले विजेताओं ने चाहे जितना नर संहार किया हो, मानव सभ्यताओं को नष्ट किया हो, आधीन देशों के चाहे जितने टुकड़े किये हों, उन्हें लूटा हो या अत्याचार किये हों परन्तु उनकी आकांक्षा कभी पूरी नहीं हुई बल्कि इस आकांक्षा वाले आक्रमणकारी स्वयं अपने देश के साथ बर्बाद हो गये। विशाल टर्की राज्य, सिकन्दर का साम्राज्य आदि नष्ट होने से नहीं बचे।

नेपोलियन ने भी इसी मिथ्याभिमान से आत्म संतुष्टि करने का प्रयास किया परन्तु सफल नहीं हुआ। फ्रेंकफर्ट का संधि प्रस्ताव उसने ठुकरा दिया। अपने साथियों के परामर्श को नहीं माना। जबकि पराजय स्पष्ट रूप से हो चुकी थी। इससे नेपोलियन का मिथ्याभिमान, हठ और स्वेच्छाचारिता ही प्रगट होती है। इसी ने उसका पतन अवश्यम्भावी कर दिया।

6. **इंग्लैण्ड की जलशक्ति**– नेपोलियन कभी अपने जहाजी बेड़े को इतना शक्तिशाली नहीं बना पाया कि वह इंग्लैण्ड से समुद्र में मुकाबला कर सके। 1799 में मिस्त्र से लौटते समय और ट्राफल्गर के युद्ध में नेपोलियन नेल्सन से पराजित हुआ तथा पुर्तगाल में वैलिंग्टन ने 1808 में नेपोलियन से अपनी रक्षा समुद्र में जाकर ही की थी।

नेपोलियन इंग्लैण्ड को पराजित करने की अथवा इंग्लिश चैनल पर अधिकार करने की लालसा को पूरा करने के लिये यूरोपीय राष्ट्रों पर इंग्लैण्ड से माल न मंगाने के लिये दबाव डालने लगा अतः अनेक युद्ध हुये तथा नेपोलियन अन्त में भूमि पर ही पराजित हो गया।

7. **नेपोलियन की भूलें**– डायरेक्टरी शासन में उसकी आस्ट्रिया पर विजय तथा फ्रेंच आन्तरिक संघर्षों में उसकी सफलता, उसके द्वारा सत्ता परिवर्तन आदि ने नेपोलियन की सैनिक प्रवृत्ति, निरंकुशता, स्वेच्छाचारिता को इतना अधिक बढ़ा दिया तथा वह इतना अधिक घमण्डी हो गया कि वह समझने लगा कि उससे अधिक अच्छा कोई सेनापति, कूटनीतिज्ञ, राजनीतिज्ञ, योजना निर्माता और यूरोप की कमजोरी को समझने वाला नहीं था।

उसके इस घमण्ड ने संविधान में उसे अपनी शक्ति को सर्वोच्च रखने, सैनिक अभियानों में अपने परामर्शदाताओं (मास्को अभियान में) की उपेक्षा करना, शत्रु पक्ष की आक्रमण नीति और रण-कौशल का पता न लगाना, अपने स्वयं के अभाव को न देखना, स्पेन में क्रान्तिकारी तथा राष्ट्रीय जागृति की उपेक्षा, वहां जबरदस्ती जोसेफ को राजा के रूप में थोपना, प्रशा और पोलैण्ड का नवीन राज्य बनाना तथा व्यापार-निषेध के लिये यूरोपीय देशों को बाध्य करना आदि की भयंकर भूलें उससे करवाईं।

लिपजिग में पराजित होने पर भी फ्रेंकफर्ट-संधि प्रस्ताव स्वीकार न कर उसने देश, जनता और राष्ट्रीय भावना के साथ विश्वासघात किया। इस समय उसने केवल अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान की बात सोची, राष्ट्र की रक्षा नहीं की। यह उसकी सबसे अक्षम्य भूल थी जो उसने की तथा उसका दण्ड उसे पेरिस के पतन के रूप में मिला।

8. **पोप से संघर्ष**– यूरोप और विशेषकर फ्रांस के कैथोलिकों पर असीम प्रभाव रखने वाले पोप पायास सप्तम पर भी नेपोलियन ने व्यापार-बहिष्कार के लिये दबाव डाला परन्तु पाप ने इसे अस्वीकार कर दिया अतः उसने पोप के राज्य पर अधिकार कर लिया। इसके बदल मे पोप ने भी नेपोलियन को ईसाई धर्म से बहिष्कृत कर दिया। पोप ने स्पेन, फ्रांस आदि

के कैथोलिकों को संघर्ष की प्रेरणा दी अतः नेपोलियन ने पोप को अप्रैल, 1808 में बन्दी बना लिया जो 1814 तक फ्रांस में बन्दी रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि समस्त कैथोलिक देश और कैथोलिक जनता नेपोलियन के खिलाफ हो गई। फ्रांस में भी उसका विरोध हुआ।

9. **व्यापार बहिष्कार नीति (विशेष संदर्भ)**– नेपोलियन की पराजय में अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण उसकी व्यापार-निषेध प्रणाली थी। इस प्रणाली को नेपोलियन ने इंग्लैण्ड को राजनीतिक रूप में अपने आधीन बनाने के लिये माण्ट गैलार्ड के परामर्श पर बनाया था। इसके द्वारा वह इंग्लैण्ड की आर्थिक नाकेबन्दी करके इंग्लैण्ड को भुखमरी, मुद्रा प्रसार, बेकारी, कारखानों की तालाबन्दी तथा श्रमिक-मालिक विवाद और आन्तरिक अराजकता में फंसाकर कमजोर करना चाहता था। अतः उसने यूरोपीय राष्ट्रों को इंग्लैण्ड का माल अपने यहाँ मँगाने से रोका।

इसके परिणाम नेपोलियन की अपेक्षा के विपरीत निकले। नेपोलियन के आधीन सभी यूरोपीय देशों में इंग्लैण्ड के माल का अभाव उत्पन्न होने से असन्तोष और अराजकता उत्पन्न होने लगी। नेपोलियन ने इन देशों का दमन तो किया परन्तु आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति कर अभाव को दूर नहीं किया। जिसके कारण प्रत्येक देश और उसकी जनता नेपोलियन को इसके लिये उत्तरदायी और शत्रु मानती थी।

इस कारण कुछ देश चोरी छिपे माल मँगाने लगे। स्वयं नेपोलियन ने आइलो के युद्ध के समय हॉलैण्ड के माध्यम से 50 हजार ओवरकोट इंग्लैण्ड से मंगाये। अतः नेपोलियन ने इंग्लैण्ड के माल को रोकने के लिये अनेक बार आज्ञप्तियाँ निकालीं तथा इन्हें कार्यान्वित करवाने के लिये 1808 से 1813 तक पुर्तगाल, स्पेन, पोप के राज्य, आस्ट्रिया, हॉलैण्ड, स्वीडन, रूस से अनेक युद्ध भी किये। इन युद्धों में 1808 को स्पेन में, 1809 में आस्ट्रिया में और 1812 में रूस में ऐसी पराजयें हुई तथा इनसे उत्पन्न दुर्दशा के कारण बाद के युद्धों में नेपोलियन जीत नहीं सका।

10. **स्पेन से युद्ध (विशेष सन्दर्भ)**– नेपोलियन ने पुर्तगाल और स्पेन पर इंग्लैण्ड का माल देश में न मांगने का आदेश दिया, किन्तु पुर्तगाल ने इसे अस्वीकार कर दिया। स्पेन में उसके शत्रु बूर्वन वंश का राज्य था। अतः स्पेन से 1806 में पुर्तगाल का आधा राज्य देने का आश्वासन देकर संधि कर ली। इसी के अनुसार भारी संख्या में माल भेजने की अनुमति ले ली। पुर्तगाल पर अधिकार कर 1808 में फ्रांस ने स्पेन पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि स्पेन के राजा-रानी और मंत्री भाग गये थे। परन्तु जनता ने बेचैन के युद्ध में नेपोलियन के भाई जोसेफ को मार भगाया तथा ड्यूपोण्ट को बन्दी बना लिया। इसके पश्चात् युद्ध 1813 तक चलता रहा और इसमें वैलग्टन स्पेन की मदद को आ गया। जूनो, ने, सॉल्ट, मयूर आदि फ्रांसीसी सेनापति पराजित हुये और सेलोमन के युद्ध में जोसेफ को फिर मेड्रिड छोड़कर भागना पड़ा।

नेपोलियन का यह आक्रमण बिल्कुल व्यर्थ हो गया। स्पेन ने व्यापार निषेध का पालन नहीं किया बल्कि उसके ही एक सेनापति को मदद के लिये बुला लिया। इससे नेपोलियन की प्रथम पराजय और दुर्दशा हुई तथा आस्ट्रिया और रूस ने तो युद्ध की तैयारियाँ आरम्भ कर

दी। एक के बाद एक देश में व्यापार निषेध की धज्जियाँ उड़ने लगीं और नेपोलियन इधर-उधर अपनी सेनायें लेकर दौड़ता रहा। इसी के पश्चात् 1809 में पहली बार आस्ट्रिया ने और 1812 में शेष बची नेपोलियन की शक्ति को विनाश के कगार पर पहुंचा दिया। इसलिये स्पेन का युद्ध नेपोलियन को बर्बाद करने वाला वृण सिद्ध हुआ।

मास्को अभियान (विशेष संदर्भ)– यद्यपि रूस 1807 में नेपोलियन से पराजित हो चुका था तथा उसे विवश होकर इंग्लैण्ड से माल न मंगाने की शर्त स्वीकार करना पड़ी थी तथा 'ग्रान्ड डची ऑफ वारसा' के नवीन राज्य का निर्माण एवं नेपोलियन के भाई को वहां का राजा स्वीकार करना पड़ा था। इस प्रदेश को रूस अपना ही मानता था इसलिये वह असन्तुष्ट था। इसके साथ ही रूसी राजकुमारी से विवाह प्रस्ताव और उसके पति के राज्य ओल्डेन वर्ग को अपने राज्य में शामिल कर लिया था। नेपोलियन ने जिसके कारण रूस नेपोलियन विरोधी था। जैसे ही उसे स्पेन में नेपोलियन की पराजय का और आस्ट्रिया से 1809 में फ्रांस की पराजय का समाचार मिला रूस ने तटस्थ देशों को माल लेकर रूस में आने की अनुमति दे दी और फ्रांस के माल पर भारी कर लगा दिये। इसी समय वह चतुर्थ संघ का भी सदस्य बन चुका था।

रूस की इन कार्यवाहियों को नेपोलियन सहन न कर सका और उसने रूस पर आक्रमण कर दिया। यह आक्रमण जनवरी, 1812 में आरम्भ हुआ। इस युद्ध में नेपोलियन ने अनेक राजनीतिक और सैनिक भूलें कीं तथा मास्को की तरफ बढ़ता गया। 14 सितम्बर, 1812 को उसका मास्को पर अधिकार हो गया तथा लेकिन उसे वहाँ कुछ प्राप्त नहीं हुआ बल्कि उसके सैनिक भूख, प्यास, रसद और सर्दी से मरने लगे जिसके कारण 22 अक्टूबर, 1812 को उसने फ्रांस लौटना आरम्भ किया। इसी समय रूसियों ने छापामार युद्ध कर उसकी अधिकांश सेना को समाप्त कर दिया तथा नेपोलियन केवल 20 हजार सैनिक ही लेकर फ्रांस लौट पाया। जो सैनिक नेपोलियन स्पेन, प्रशा और आस्ट्रिया को पराजित करके अपने साथ लाया था, उन्होंने नेपोलियन का साथ छोड़ दिया। इस प्रकार तीन लाख सैनिक नेपोलियन का साथ छोड़ गये और लगभग ढाई लाख युद्ध में मारे गये।

इससे यूरोप और फ्रांस में नेपोलियन की प्रतिष्ठा और शक्ति को भारी आघात लगा तथा यूरोपीय देशों ने संगठन और संयुक्त सेनाओं के द्वारा नेपोलियन का मुकाबला किया तथा उसे अपनी स्थिति सुधारने का अवसर न देते हुये पहले अक्टूबर, 1813 में लिपजिक में पराजित किया तथा अप्रैल, 1814 में वंश सहित नेपोलियन को अपदस्थ कर एल्बा भेज दिया। दूसरी बार 18 जून, 1815 को वाटर लू में पराजित कर सेन्ट हेलना में रख दिया जहां उसकी 5 मई, 1821 में मृत्यु हो गई।

सारांश– यह एक विश्वव्यापी और युगों-युगों से प्रमाणित सत्य है कि विश्व में सभी राष्ट्र अपनी-अपनी आकांक्षायें, संगठन, शक्ति, स्वतंत्रता आदि की भावनायें रखते हैं तथा किसी अन्य देश को अपने स्वार्थों के लिये इन्हें नष्ट करने का अधिकार नहीं होता है। यदि किसी ने इन्हें नष्ट करने का प्रयास किया भी तो उससे विश्व शांति को सदैव संकट ही उत्पन्न हुआ है। आक्रामक देश और आक्रमण के शिकार देश कभी शांत नहीं रह सके। आक्रामक देश दूसरे देश को गुलाम बनाने के लिये संघर्ष करते रहे और गुलाम देश अपनी राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता के लिये दीर्घकाल तक प्रयत्न करते रहे।

प्राचीन काल में सत्ताकांक्षी, साम्राज्यवादी और धन-लौलुप देश कुछ काल के लिये विजयी और सर्वोच्च दिखाई दिये बाद में उनका ऐसा पतन हुआ कि कई शताब्दियों तक अभाव, अपमान और पराजय के गर्त में पड़े रहे। नेपोलियन इस तथ्य को अपने अभियान, हठ व शक्तिमद के कारण समझ नहीं सका तथा उसका वही हाल हुआ जो टर्की साम्राज्य अथवा सिकन्दर का हुआ।

प्रश्न–5. वियेना काँग्रेस के उद्देश्य, सिद्धान्त और समस्याओं पर प्रकाश डालिये।

अथवा

वियेना कांग्रेस के प्रमुख सिद्धान्तों का विश्लेषण कीजिये।

अथवा

वियेना काँग्रेस ने यूरोप की समस्याओं को सुलझाने में कौनसे कार्य किये? क्या वे सफल रहे?

अथवा

'वियेना काँग्रेस की कार्य-प्रणाली और सम्मेलन प्रतिक्रियावादी था।' स्पष्ट कीजिये।

अथवा

वियेना समझौते का वर्णन करते हुये उसके परिणामों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये।

अथवा

वियेना कांग्रेस के प्रमुख सिद्धान्तों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

अथवा

वियेना कांग्रेस क्यों बुलाई गई? उसके महत्वपूर्ण निर्णयों एवं कार्यों का मूल्यांकन कीजिये।

अथवा

वियना कांग्रेस के सिद्धान्त क्या थे? उन्हें कैसे लागू किया गया?

उत्तर– नेपोलियन की पराजय के साथ क्रांति युग समाप्त हो गया। क्रांति-काल में और नेपोलियन के युग में जो यूरोपीय नक्शे में परिवर्तन हुये थे, उनको समाप्त करने के लिये और यूरोप का पुनर्निर्माण करने के लिये यूरोप के प्रमुख राजनीतिज्ञ आस्ट्रिया की राजधानी वियेना में एकत्रित हुये। इसी को **'वियेना सम्मेलन'** का नाम दिया गया था।

वियेना सम्मेलन के उद्देश्य– विभिन्न राष्ट्रों के मध्य युद्धों की स्थिति को दूर करना और यूरोप में शान्ति स्थापित करने का प्रमुख उद्देश्य था। पूरे यूरोप में राष्ट्रीय और क्रांतिकारी विचारों की उत्पत्ति को रोकना और पुराने राजतंत्रों को पुनः स्थापित करना, नेपोलियन के साथ जिन देशों ने और जनता ने सहयोग दिया था उन्हें दण्डित करना तथा उसके विरोधियों को पुरस्कृत करना और फ्रांस के जीते हुये प्रदेशों का बंटबारा करना आदि लक्ष्य उसके सम्मुख थे।

वियेना में ही आयोजन के कारण– इस काल में यूरोप के राजतंत्रों में सर्वाधिक प्रभावी और सक्रिय आस्ट्रिया का प्रधानमंत्री मेटरनिख था। उसके प्रस्ताव पर वियेना का स्थान निश्चित किया गया। मेटरनिख ने इसके लिये तर्क यह दिये कि यह स्थान यूरोप के मध्य में है तथा नेपोलियन के आक्रमणों का सर्वाधिक केन्द्र आस्ट्रिया था। मेटरनिख वियेना में सम्मेलन करके यह बताना चाहता था कि युद्ध में सर्वाधिक विनाश उसका हुआ है जिससे वह अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सके। मेटरनिख की आकांक्षा यूरोप में सर्वप्रमुख बने रहने की थी। इसके अतिरिक्त वह सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी था और सम्राट भी उसी के विचार का था। वह

अपनी जनता पर यह प्रभाव छोड़ना चाहता था कि आस्ट्रिया की सत्ता यूरोप में सर्वोपरि है और आस्ट्रियन नागरिक उस पर गौरव कर सकते है और साथ ही उसके प्रति भक्त बने रहे। अन्य राष्ट्रों ने इतने बड़े आयोजन के लिये इच्छा प्रकट नहीं की।

प्रतिनिधि– सितम्बर, 1814 ई. में वियेना कॉंग्रेस का आरम्भ होना था परन्तु नेपोलियन के लौटने के कारण नवम्बर, 1814 में इसका आरम्भ हुआ और 9 जून, 1815 को कॉंग्रेस के प्रतिनिधियों के इस पर हस्ताक्षर हुये। इसमें 90 बड़े, 63 छोटे राजा थे। टर्की इसमे शामिल नहीं हुआ। इनके अतिरिक्त इनके परामर्शदाता अनेक यूरोपीय राजाओं के प्रतिनिधि, विदेश मंत्री आदि भी थे। इस सम्मेलन में इंग्लैण्ड, रूस, आस्ट्रिया और प्रशा चार महाशक्तियाँ सभी कुछ निर्धारित करने वाली शक्तियाँ थी। इन्हीं ने वियेना सम्मेलन के उद्देश्य, कार्य प्रणाली, सिद्धान्त और निर्णय के कार्य किये। इसका अध्यक्ष मेटरनिख था।

महाशक्तियों की प्रवृत्तियाँ– चारों शक्तियाँ अपने–अपने निहित स्वार्थों तथा प्रवृत्तियों को लेकर उपस्थित हुई। वास्तव में वियेना में राजतंत्रों का प्रतिनिधित्व था, जनता का वहाँ कोई प्रतिनिधित्व नही था।

आस्ट्रिया– आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसीस प्रथम का उद्देश्य यूरोप में प्रमुखता, अधिक लाभ तथा अपने हितों की रक्षा करना था इसके अतिरिक्त क्रान्ति के विचारों का दमन करना था तथा निरकुश राजतंत्र प्रणाली को अक्षुण्य बनाना था। मेटरनिख इस सम्मेलन में बुरी तरह छाया रहा।

रूस– जार अलैक्जेण्डर प्रथम रूस का प्रतिनिधि था। वह समझता था कि नेपोलियन की पराजय मे उसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका थी तथा उसे ही सर्वाधिक बलिदान करना पड़ा। इसलिये सर्वाधिक लाभ उसे ही मिलना चाहिये। इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया उसकी बढ़ती हुई राजनीतिक शक्ति से भयभीत थे। जार भी मेटरनिख पर व्यंग्य करता था।

प्रशा– सैनिकवाद में विश्वास करने वाला प्रशा का प्रतिनिधि राष्ट्रवाद का समर्थक था वह अपने देश को विशुद्ध जर्मन राष्ट्र तथा शक्तिशाली बनाना चाहता था और जर्मन प्रदेश तथा जर्मन बहुल प्रदेश प्राप्त करने आया था। ब्ल्यूशर का नेपोलियन को पराजित करने में महत्वपूर्ण हाथ था इसलिये वह उसकी कीमत वसूल करने आया था।

इंग्लैण्ड– विदेश मंत्री कैसलरे इसमें इंग्लैण्ड का प्रतिनिधि था। वैलग्टन ने नेपोलियन को पराजित किया था इसलिये कैसलरे की दृष्टि फ्रांस के उपनिवेशों पर थी तथा वह सतर्क था कि व्यापार में कोई बाधा उत्पन्न न हो। वह शक्ति संतुलन में विश्वास करता था तथा सम्मेलन में मेटरनिख के बाद महत्वपूर्ण व्यक्ति था।

फ्रांस– फ्रांस का प्रधानमंत्री तालीरां था। इसी के कारण फ्रांस से संधि हुई। तालीरां एक देशभक्त व्यक्ति था और चाहता था कि फ्रांस की कम से कम हानि हो। इसलिये उसने वैधता के सिद्धान्त को भी मान लिया था तथा नेपोलियन के आत्मघाती और देशघाती रूप के समय फ्रांस की रक्षा करने के लिये आगे आया। अतः फ्रांस को यूरोपीय राज्यों में पुनर्स्थापित करना उसका उद्देश्य था।

वियेना कांग्रेस की समस्यायें– वियेना कॉंग्रेस के सम्मुख अनेक समस्यायें थीं–

1. नेपोलियन से युद्ध के कारण विभिन्न राष्ट्रों के मध्य तथा जनता और राजाओं के मध्य विरोध और मतभेदों की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। अतः यूरोप में शान्ति की स्थापना इसका प्रमुख उद्देश्य था। महाशक्तियाँ क्रान्ति भावना को अशांति का कारण मानती थीं।
2. नेपोलियन को सहायता देने वाले राज्यों को दण्डित करना भी इसका उद्देश्य था जिससे वे भविष्य में परम्परागत राजतंत्रों के विरुद्ध किसी को मदद न करें।
3. यूरोप का पुनर्निर्माण करना अर्थात् नेपोलियन और क्रान्ति पूर्व की विभिन्न राष्ट्रों की सीमायें और वंशों की पुनर्स्थापना करना उद्देश्य था।
4. फ्रांस पुनः प्रजातंत्रवादी और क्रान्तिकारी न बन सके इसलिये उस पर नियंत्रण रखना।
5. चर्च की समस्या का समाधान करना भी उद्देश्य था। क्रान्तिकारियों और नेपोलियन ने चर्च की व्यवस्था, अधिकार आदि में मनमाने परिवर्तन किये थे अतः विभिन्न देशों में चर्च की स्थापनायें, सम्पत्ति की व्यवस्था आदि करनी थी।
6. फ्रांस की क्रान्ति ने समस्त विश्व को प्रभावित किया था तथा उसके सिद्धान्तों से राजतंत्रों के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो गया था इसलिये हर कीमत पर इनका दमन करना और राष्ट्रीय भावनायें उत्पन्न न होने देना इसका उद्देश्य था।
7. फ्रांस के विजित प्रदेशों के बंटवारे की समस्या सबसे अधिक कठिन थी, क्योंकि सभी अधिक से अधिक प्राप्त करना चाहते थे।

कार्य–प्रणाली– वियेना सम्मेलन की प्रणाली सुनिश्चित और सुनियोजित नहीं थी तथा वह एक मेले के समान थी जिसमें विशाल संख्या में प्रतिनिधि नृत्य, संगीत, समारोह आदि में व्यस्त रहे। कॉंग्रेस के निर्णय वास्तव में गुप्त रूप से सम्मेलन के पूर्व या सम्मेलन के आरम्भ में ही महाशक्तियाँ कर चुकी थीं। वास्तव में इसका लगभग 8 माह में एक दिन प्रथम और अन्तिम अधिवेशन हुआ जिसमें बहुत शीघ्रता से निर्णयों का अनुमोदन कर दिया गया।

आधारभूत तत्व– वियेना कॉंग्रेस की महाशक्तियों ने अपने निर्णयों में तीन आधारभूत तत्वों का पालन किया–

1. **न्यायोचित् राजवंश की पुनर्स्थापना**– इसके अन्तर्गत फ्रांस में बूर्णन वंश की स्थापना की गई तथा स्पेन, इटली, जर्मनी में भी इसे अपनाया गया।
2. **शक्ति संतुलन**– कैसलरे के कारण यूरोप में किसी भी राष्ट्रों को बहुत अधिक शक्तिशाली न बनाने का विचार किया जो अपने पड़ौसी या यूरोप के लिये संकट बन जाये। अतः शक्ति सन्तुलन इसका आधारभूत तत्व था।
3. **पुरस्कार और दण्ड**– जिन देशों ने नेपोलियन को मदद दी उन्हें आर्थिक और प्रादेशिक रूप में दण्डित करना तथा जिन्होंने उसे पराजित करने में मित्र राज्यों की मदद की उन्हें पुरस्कृत करना प्रमुख तत्व था।

वियेना कांग्रेस के निर्णय या धारायें (शर्तें)– वियेना कांग्रेस का अधिवेशन, 9 जून, 1815 ई. में आरम्भ हुआ। इसमें महान् शक्तियां इंग्लैण्ड, रूस, प्रशा तथा आस्ट्रिया द्वारा

लिये गये निर्णयों को फ्रांस ने स्वीकार कर लिया। यही निर्णय संधि की धारायें या शर्तें कहलायीं।

(अ) प्रादेशिक व्यवस्था–

1. **फ्रांस–** फ्रांस में बूर्बो वंश स्थापित किया गया। उसके दुर्ग मित्र राष्ट्रों के आधीन करके सीमायें सीमित कर दी गयीं। फ्रांस पर 70 करोड़ फ्रेंक हर्जाना लादा गया।
2. **इंग्लैण्ड–** इंग्लैण्ड को फ्रांस का सैंटलूशिया, बोवेगा तथा मारीशस, हॉलैंड से सीलोन, गायना तथा स्पेन से ट्रिनीडाड के उपनिवेश प्राप्त हुये।
3. **प्रशा–** राइन नदी के तट पर फ्रांस का मुकाबला करने के लिये प्रशा को स्वीडिश, पोमरेनिया, सेवसनी का उत्तरार्द्ध और थोर्न तथा डेजिंग सहित पोसेन की डची देकर उसकी सीमा का विस्तार किया गया।
4. **हॉलैण्ड–** हॉलैण्ड में पुनः औरेंज वंश का शासन स्थापित किया गया तथा उसमें बेल्जियम को मिला दिया गया कि जो पहले आस्ट्रिया के अधीन था।
5. **स्पेन तथा नेपल्स–** दोनों ही देशों में पुराने शासकों का शासन स्थापित किया गया।
6. **जर्मनी–** जर्मनी में 39 राज्यों के एक संघ की स्थापना की गयी। इसका अध्यक्ष आस्ट्रिया का राजा बनाया गया।
7. **इटली–** इटली को पुनः क्रान्ति से पूर्व की अनेक छोटी-छोटी रियासतों में विभाजित कर दिया गया। पोप का राज्य उसे वापस कर दिया गया।
8. **पोलैण्ड–** पोलैण्ड को रूस, आस्ट्रिया तथा प्रशा में बाँट दिया गया। पोलैण्ड का नाममात्र भी शेष न रहा।
9. **स्विट्जरलैण्ड–** स्विट्जरलैण्ड को शक्तिशाली बनाने के लिये उसमें तीन नये प्रदेश मिला दिये गये तथा उसकी स्वतंत्रता व तटस्थता को यूरोप की शक्तियों ने स्वीकार कर लिया।
10. **सार्डीनिया–** सार्डीनिया के राज्य में पीडमांड को मिला दिया गया। जिनेवा भी उसे दिया गया। इस प्रकार फ्रांस की दक्षिणी सीमा पर सार्डीनिया का शक्तिशाली राज्य स्थापित किया गया।
11. **आस्ट्रिया–** आस्ट्रिया को पोलैण्ड का कुछ भाग मिला। आस्ट्रिया से बेल्जियम का प्रदेश लेकर हॉलैण्ड को दे दिया गया। इसके बदले में आस्ट्रिया को इटली में वेनेशिया और लोम्बार्डी के प्रदेश दे दिये गये। अल्जीरिया और बेवेरिया प्रान्त भी उसे मिल गये।
12. **रूस–** रूस को वारसा की डमी प्रदान की गई। इसके अतिरिक्त उसने स्वीडन से फिनलैण्ड, टर्की से बिसरेविया तथा टर्की के दक्षिण-पूर्व के अन्य प्रदेश भी दिये गये।

(ब) अन्य व्यवस्थायें– यूरोप के इस पुनर्निर्माण कार्य के अतिरिक्त वियेना कांग्रेस में निम्नलिखित अन्य व्यवस्थायें की गईं–

(1) क्रान्ति का दमन किया गया।
(2) पोप की सत्ता पुनः स्थापित की गई।
(3) दास प्रथा की समाप्ति हेतु प्रस्ताव पारित किये गये।

(4) अंतर्राष्ट्रीय कानून बनाने का प्रयास।
(5) यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था की स्थापना।

वियेना कांग्रेस के दोष–

(1) **प्रतिक्रियावादी–** कांग्रेस की नीति पूर्ण प्रतिक्रियावादी थी। उदारवादी और राष्ट्रीय भावनाओं की पूर्ण अवहेलना की गयी।
(2) **छोटी शक्तियों की उपेक्षा–** चार बड़ी शक्ति इसमे सर्वेसर्वा थीं। वे निजी स्वार्थवश अन्य छोटे राज्यों के हितों की ओर भी ध्यान देने में असमर्थ रहे।
(3) **स्थायी शान्ति नहीं–** चारों शक्तियों ने स्थायी शान्ति की अपेक्षा अपनी सीमाओं को बढ़ा लिया।
(4) **नये राज्यों की बलात् स्थापना–** भाषा, प्रजातीयता तथा धर्म सम्बन्धी भिन्नता के बाद भी नये राज्यों की स्थापना कर दी गयी।
(5) इटली और जर्मनी की एकता की ओर ध्यान नहीं दिया गया।
(6) राष्ट्रीयता की भावना की उपेक्षा की गई।
(7) क्रान्तिकारी एवं जनता की इच्छा पर कोई ध्यान नहीं दिया गया।
(8) पक्षपातपूर्ण विजित प्रदेशों का बँटवारा किया गया।
(9) पूर्वी समस्या की ओर भी कोई ध्यान नहीं दिया गया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वियना कांग्रेस के निर्णय में अनेक दोष निहित थे और यही कारण था कि कांग्रेस के निर्णय अधिक समय तक कायम न रह सके। हेजन ने लिखा है कि "वियेना कांग्रेस के निर्णय के असफल होने का प्रमुख कारण यह था कि इसने नवीन सिद्धांत की अवहेलना की तथा प्रतिक्रियावादी सिद्धांत को अपनाया। इसने इतनी समस्यायें हल नहीं की जितनी कि उत्पन्न कर दीं और 1815 ई. से अब तक यूरोप का इतिहास वियेना सम्मेलन की भारी भूलों को संशोधित करने का इतिहास है।"

वियेना सम्मेलन की असफलता– वियेना कांग्रेस ने अनेक मूलभूत, अदूरदर्शी तथा अव्यावहारिक भूलें की थीं जिनके कारण वियेना कांग्रेस को अपने उद्देश्यों और कार्यों में सफलता नहीं मिली।

निरंकुशता का प्रभाव– वियेना कांग्रेस के सभी प्रमुख प्रतिनिधि और सदस्य निरंकुश थे तथा उन्होंने राष्ट्रीयता की उपेक्षा तथा क्रांति का दमन किया। प्रजातंत्रवादियों को बन्दी बनाया।

विरोधी राष्ट्रीय राज्यों को मिलाना– विभिन्न राष्ट्रीय जातियों को एक ही राज्य में संयुक्त रूप से रखने के कारण विभिन्न देशों में कभी भी शान्ति स्थापित नहीं हो पाई। डेनमार्क, स्वीडन, इटली और पोलैंड में ऐसा ही हुआ।

प्रमुख देशों में विवाद– आस्ट्रिया, इंग्लैण्ड, रूस, प्रशा और फ्रांस में विभिन्न प्रदेशों के बंटवारे पर परस्पर विवाद थे। नवीन प्रदेश, बन्दरगाह और क्षतिपूर्ति लेने के बाद भी वे असन्तुष्ट बने रहे। जैसे प्रशा सेक्सनी न मिलने से असन्तुष्ट था। आस्ट्रिया को इटली के प्रदेश देने से इटली नाराज था।

राष्ट्रीय जागरण– मेटरनिख के खिलाफ और निरंकुशता एवं विशेषाधिकार के खिलाफ पुनः राष्ट्रीय भावनाये जागीं और क्रान्तियां हुईं तथा राष्ट्रीय संघर्षों के सम्मुख निरंकुश शक्तियां पराजित हुईं। राष्ट्रीय शक्तियों के दमन के लिये जो संयुक्त व्यवस्था बनाई गई। उसमें आरम्भ से ही मतभेद हो गये और राष्ट्रीय आन्दोलन बढ़ते गये। जर्मनी और इटली के उदाहरण इसके प्रमुख उदाहरण थे। स्वयं मेटरनिख का भागना प्रजातंत्र और राष्ट्रवाद की विजय थी।

वियेना कांग्रेस का महत्व– वियना कांग्रेस सामूहिक प्रयत्नों एवं यूरोपीय प्रयासों की मूर्तरूप थी। कांग्रेस ने शान्ति स्थापना में अस्थाई सफलता प्राप्त की। उसने पुनः निरंकुशता को यूरोप मे स्थापित कर दिया तथा यह यूरोपीय व्यवस्था का प्रथम प्रयास था। इसने राष्ट्रीयता, क्रांति और उसके प्रमुख तत्वों तथा निरंकुश राजतंत्रों और कुलीन तंत्र के विशेषाधिकारों के खिलाफ जन असन्तोष को भलीभाँति नहीं समझा। न ही उसके महत्व और शक्ति को ही पहचाना बल्कि मेटरनिख और यूरोपीय देश अपने स्वार्थों की पूर्ति में लगे रहे। इसी प्रयास में वह असफल हो गई।

सारांश– वियेना सम्मेलन का प्रमुख उद्देश्य यूरोप में निरंकुशता की स्थापना करना तथा राष्ट्रीयता का दमन करना था अतः उसने नेपोलियन के द्वारा किये परिवर्तनों का उसके पूर्व की यथास्थिति में बदला। इसके लिये मेटरनिख ने वियेना को चुना। इसकी कार्यप्रणाली विचित्र थी और मेटरनिख, इंग्लैण्ड, प्रशा और रूस ने इसके प्रमुख आधार खोजे तथा विभिन्न प्रदेशों का बंटवारा किया। फिर भी बड़े देश असन्तुष्ट रहे। राष्ट्रीयता दमन के प्रश्न पर इनमें मतभेद थे। विभिन्न राष्ट्रों के स्वार्थों, अवसरवादी नीतियों, निरंकुशता की प्रवृत्ति के कारण वियेना कांग्रेस पूर्णरूप से असफल हो गई। फिर भी यह प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास था। असफल होने के बाद भी इसका महत्व कम नहीं था।

प्रश्न–6. मेटरनिख युग से क्या तात्पर्य है? इसके प्रकाश में मेटरनिख की गृह तथा विदेश–नीति का मूल्यांकन कीजिये।

अथवा

मेटरनिख युग से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

अथवा

मेटरनिख के पतन के सम्बन्ध में उसकी प्रतिक्रियावादी नीति का विवेचन कीजिये।

अथवा

मेटरनिख युग से आप क्या समझते हैं? मेटरनिख की गृह एवं विदेश नीति का विवरण दीजिये।

अथवा

मेटरनिख की प्रतिक्रियावादी नीति के विषय में आप क्या जानते हैं? विवेचना कीजिये।

अथवा

'मेटरनिख प्रतिक्रियावाद का प्रतीक एवं उदारवाद का शत्रु था।' विवेचना कीजिये।

अथवा

1815 से 1848 तक के युग को मेटरनिख युग क्यों कहा जाता है?

अथवा

'मेटरनिख एक घोर प्रतिक्रियावादी शासक था।' इस कथन को समझाइये।

उत्तर– 1815 से 1848 तक का काल मेटरनिख युग कहा जाता है। मेटरनिख इस काल में सम्पूर्ण यूरोप की राजनीति पर छाया रहा। इस काल में कोई भी कार्य मेटरनिख के

बिना सम्पन्न नहीं हुआ। उसकी वाक्पटुता, कूटनीतिक चातुर्य तथा प्रभाव को तत्कालीन सभी राजनीतिज्ञों ने स्वीकारा और उसे प्रमुखता प्रदान की। अतः इस युग का नाम उसके नाम से ही पहचाना जाता है।

संक्षिप्त जीवन–परिचय– काउन्ट क्लमेंस वान मेटरनिख का जन्म 15 मई, 1773 में कॉब्लेंज नगर में हुआ था। पिता आस्ट्रिया में उच्च राजनयिक अधिकारी थे। स्ट्रांसवर्ग तथा मेंज विश्वविद्यालय में उच्च–शिक्षा प्राप्त कर तथा आस्ट्रिया के चांसलर कॉनिज की पौत्री से विवाह कर राजकीय सेवा में नियुक्त हुआ। 1801 से 1806 तक अनेक देशों में राजदूत तथा 1809 में सम्राट फ्रांसिस प्रथम के समय चांसलर (प्रधानमंत्री) बना और 1848 तक कार्य करता रहा। इस काल में मेटरनिख ने नेपोलियन से आस्ट्रिया की रक्षा की और यूरोप पर उसका स्पष्ट प्रभाव 1815 से दिखाई दिया। 13 मार्च, 1848 को क्रांतिकाल में उसे पद त्याग कर भागना पड़ा और 11 जून, 1859 में उसकी मृत्यु हो गई।

प्रतिक्रियावादी विचारधारा– मेटरनिख उच्च कुलीन परम्परा और राजकीय सेवा की छत्र–छाया में पोषित हुआ था। अपने शिक्षाकाल में ही वह जेकोबियन विरोधी और क्रान्ति विरोधी हो गया था। वह पुरातन परम्परा की निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता का समर्थक था। अतः स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व को वह अराजकता की माँग या अपराधियों द्वारा अपनाये गये साधन मानता था। वह इन्हें अव्यावहारिक और असम्भव मानता था। इसी कारण उसने अपने काल में इनका दमन करने का पूरा प्रयत्न किया। क्रान्ति के सिद्धान्तों के चलते उसके विचार में यूरोप में शान्ति स्थापित नहीं की जा सकती थी। आस्ट्रिया का सम्राट भी उसी की विचारधारा का समर्थक था। दैवी अधिकार, निरंकुशता और आनुवांशिकता में दोनों का विश्वास था। दोनों ही शासन करना चाहते थे, परन्तु कोई परिवर्तन नहीं चाहते थे। संक्षेप में मेटरनिख यूरोप में प्रतिक्रियावाद का सबसे उग्र और आदर्श अवतार था।

मेटरनिख की गृह–नीति– आस्ट्रियन साम्राज्य के अन्तर्गत अनेक जातियाँ, भाषायें, धर्म, संस्कृति और राष्ट्रीयतायें थीं। इनमें फ्रेंच क्रांति, अमेरिकी क्रान्ति और नेपोलियन के कारण स्वतंत्रता की भावनायें उत्पन्न होने लगीं। इनके कारण अनेक समस्यायें उत्पन्न हो गईं जिनका मेटरनिख को सामना करना पड़ा।

क्रान्ति भावना का दमन– मेटरनिख मानता था कि फ्रांस की प्रेरणा से ही यूरोप में स्वतंत्रता, समानता और राष्ट्रीयता का प्रसार आस्ट्रिया तथा अन्य देशों में भी हुआ है। वह निरंकुश राजतंत्रों को इसके लिये दोषी नहीं मानता था। अतः आस्ट्रिया के बाहर और अन्दर उसने इन विचारों का निर्दयतापूर्वक दमन किया। उसके अनुसार, 'क्रान्ति एक गन्दा फोड़ा थी जिसे गर्म सलाखों से जला डालना चाहिये।' इसके लिये उसने नवीन कानून बनाये, गुप्तचर व्यवस्था की विचारों पर, पुस्तकों पर, भाषणों और समाचार–पत्रों पर प्रतिबन्ध लगाये, कठोर दण्ड दिये। विद्यालयों में कठोर नियम लागू किये।

यथास्थिति रखना– क्रान्तिकारी तो सम्पूर्ण निरंकुश राजतंत्रीय प्रणाली को चुनौती दे रहे थे और आस्ट्रिया की सामाजिक व्यवस्था सामन्तवाद पर तथा सामान्य जनता के शोषण पर टिकी हुई थी। किसानों पर अत्याचार, बेगार, करारोपण, बेकारी आदि से सामन्तों को लाभ होता था इसलिये वे प्रजातंत्र के विरोधी थे। इन कारणों से दैवी सिद्धान्त, अराजकता आदि के

मिथ्या तर्क देकर यथास्थिति बनाये रखना चाहते थे। मेटरनिख का सारा जीवन इसी प्रयत्न में चला गया परन्तु मेटरनिख कभी भी सामान्य जनता का हितैषी नही बन पाया तथा जनशक्ति उससे कही अधिक शक्तिवान सिद्ध हुई।

कर–व्यवस्था– मेटरनिख प्रतिक्रियावादी दमन में चाहे जितना बुद्धिमान रहा हो, परन्तु उसने अपने देश को आर्थिक सुधारो से कभी सम्पन्न, सुखी और सुरक्षित नहीं बनाया। इसी कारण वह नेपोलियन से बार–बार पराजित होता रहा। उसकी कर–व्यवस्था प्रतिगामी या अधोगामी थी। अधिकांश कर सामान्य मध्यम और निर्धन जनता पर लगते थे। सीमा शुल्क बढ़ाने से आस्ट्रियन व्यापार को भारी हानि हुई। श्रमिक बेकार हो गये और असन्तोष बढ़ने लगा।

परिणाम– प्रतिक्रियावादी गृह–नीति के कारण आस्ट्रिया की कृषि, उद्योग, व्यापार तथा शिल्प पर बुरा प्रभाव पड़ा। शोषण, दमन से पीड़ित जनता में जहाँ एक ओर असन्तोष था वहीं क्रान्तिकारी विचार रोकने में मेटरनिख असफल रहा। जिसके परिणामस्वरूप आस्ट्रिया में भी 1830, 1848 की क्रान्तियाँ हुई।

मेटरनिख की विदेश–नीति– मेटरनिख प्रतिक्रियावादी राजनीतिज्ञ था। उसने फ्रांस, जर्मनी, इटली, स्पेन आदि यूरोपीय देशों में सर्वत्र क्रान्ति और राष्ट्रीय विचारधारा का अपनी पूरी शक्ति से दमन किया। मेटरनिख का द्वितीय उद्देश्य आस्ट्रिया के प्रभाव और शक्ति में वृद्धि कर यूरोप में शान्ति स्थापित करना था। उसकी विदेश–नीति का सार था कि, 'यूरोप के लिये आस्ट्रिया आवश्यक था और आस्ट्रिया के लिये यूरोप आवश्यक था।'

नेपोलियन से सम्बन्ध– मेटरनिख नेपोलियन का सदैव विरोधी था। वह किसी भी राजवंश से सम्बन्धित नहीं था तथा 1799 से ही आस्ट्रिया पर आक्रमण करता आ रहा था। आस्टरलिज में पराजय, प्रेस बुर्ग में अपमानजनक संधि मेटरनिख को स्मरण थी। जब स्पेन में नेपोलियन की पराजय हुई तो 1809 में आस्ट्रिया ने फ्रांस पर आक्रमण किया परन्तु मेटरनिख को पुनः वियेना की अपमानजनक संधि करना पड़ी। इसके पश्चात् भी नेपोलियन ने आस्ट्रिया को पराजय दी। मेटरनिख हिम्मत नहीं हारा। अब उसने मित्र राज्यों के साथ लिपजिग मे नेपोलियन पर आक्रमण किये। उसके पश्चात् वाटर लू में संघर्ष किया तथा नेपोलियन को अन्तिम रूप से पराजित किया।

मेटरनिख और वियेना कॉंग्रेस– वियेना कॉंग्रेस के आयोजन में, आयोजन का स्थान और विषय निर्धारित करवाने मे तथा उसके प्रमुख सिद्धान्त बनाने में मेटरनिख का ही महत्वपूर्ण योगदान था। जहाँ मेटरनिख ने नेपोलियन द्वारा स्थापित व्यवस्थायें और सीमाओं में परिवर्तन कर पूर्ण स्थिति स्थापित की वहीं जर्मनी, आस्ट्रिया, स्पेन, इटली के क्रान्तिकारियों का दमन करने का प्रयत्न किया। इन कार्यों को पूरा करने के लिये मेटरनिख ने चतुर्मुखी संघ बनाया तथा उसके चार सम्मेलन आयोजित किये। यद्यपि यह व्यवस्था असफल हो गई परन्तु मेटरनिख ने भविष्य में यूरोपीय व्यवस्था के निर्माण का संकेत दे दिया।

मेटरनिख और जर्मनी– मेटरनिख ने एक बार पुनः जर्मनी को 39 राज्यों का संघ आस्ट्रियन सम्राट की अध्यक्षता में बनवाया तथा वहाँ राष्ट्रवादी भावनाओं के दमन के लिये कार्ल्सवाद के आदेश प्रसारित किये। फिर भी वहाँ 1830 और 1848 की क्रांतियाँ हुई

तथा 1818 ई. में जॉलवरीन के माध्यम से राजनीतिक, आर्थिक एकीकरण हुआ और प्रशा का नेतृत्व शक्तिशाली बना। मेटरनिख यहाँ राष्ट्रीय भावनाओं का दमन करने में विफल रहा।

मेटरनिख और इटली– मेटरनिख ने इटली को भी आठ प्रमुख राज्यों में बाँट दिया। लोम्बार्डी, वेनेशिया पर आस्ट्रिया का प्रत्यक्ष और शेष इटली पर परोक्ष अधिकार था। यहाँ भी उसने क्रांति का तथा राष्ट्रीय विचारों का दमन किया तथा विक्टर इमेनुअल को पराजित किया। परन्तु राष्ट्रीय भावनायें बढ़ती गईं और मेटरनिख के पश्चात् इटली का एकीकरण हो गया। यंग इटली और कारबोनरी संगठन भी कार्य कर रहे थे।

मेटरनिख का पतन– सम्पूर्ण यूरोप में 1830 और 1848 में क्रान्तियाँ हुईं। आस्ट्रिया में भी भयंकर घटनायें घटीं। आरम्भ में मेटरनिख आस्ट्रिया और जर्मनी, इटली आदि में इन्हें दबाने में सफल रहा परन्तु आस्ट्रिया सहित यूरोप की जनता प्रतिक्रियावादी, निर्दयी शासन से ऊब चुकी थी इसलिये उन्होंने अपने–अपने राज्यों में अपनी शासन प्रणालियों के विरुद्ध संघर्ष किये। हंगरी में कौसुथ नामक व्यक्ति के भाषण से उत्तेजित भीड़ ने 13 मार्च, 1848 को मेटरनिख तथा सम्राट को महल में घेर लिया। परिणामस्वरूप मेटरनिख को त्याग–पत्र देना पड़ा और भाग जाना पड़ा।

निष्कर्ष– निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता तथा आनुवांशिकता का प्रबल समर्थक और पक्षधर अपने युग की राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता की भावनाओं को समझने में असफल हुआ। उसने पाश्–विक शक्ति से प्रजातंत्र या जनता को कुचला परन्तु उसी जनता ने अपनी सामूहिक चेतना के द्वारा प्रमाणित कर दिया कि राजा का दैवी अधिकार मिथ्या है। सार्वभौमत्व का स्वामी राजा नहीं जनता है। जन–इच्छा के विरुद्ध कोई भी शक्तिशाली से शक्तिशाली राजा भी अपने पद पर नहीं बना रह सकता है। यह 1776 में अमेरिका में, 1789 में फ्रांस में और 1848 में आस्ट्रिया में प्रमाणित हो चुका था।

प्रश्न–7. 1830 ई. की फ्रांसीसी क्रांति के कारणों एवं परिणामों का वर्णन कीजिये।

अथवा

1830 में प्रमुख यूरोपीय देशों में क्रांतियों पर टिप्पणी लिखिये।

अथवा

फ्रांस की 1830 ई. की क्रांति के कारणों और प्रभावों का विश्लेषण कीजिये।

अथवा

1830 की फ्रांसीसी और यूरोपीय राज्य क्रांतियों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

अथवा

यूरोप में सन् 1830 की क्रांति के कारणों एवं परिणामों पर संक्षिप्त लेख लिखिये।

उत्तर– फ्रांस की 1789 की क्रांति नेपोलियन की आक्रामक साम्राज्यवादी नीति, निरंकुश सामंतीय व्यवस्था, राजतंत्रों और विशेषाधिकारों के कारण एक बार पुनः यूरोप के प्रमुख देशों में 1830 में क्रांतियां उत्पन्न हुईं, जो सम्पूर्ण यूरोप में फैल गईं।

कारण– 1830 की यूरोपीय क्रांतियों का आरम्भ फ्रांस से हुआ। क्योंकि यहां क्रांति के लिये पर्याप्त कारण थे। यही कारण अन्य देशों में भी व्याप्त थे। अतः फ्रांस और यूरोपीय क्रांति के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे–

(1) **चार्ल्स की निरंकुशता–** फ्रांस में लुई 18वें ने क्रांति के सिद्धान्तों का सम्मान कर शान्ति बनाये रखी परन्तु उसकी मृत्यु के बाद चार्ल्स 10वां फ्रांस का सम्राट बना

उसने निरंकुश शासक बनने का प्रयत्न किया। उसने जमींदारों को सुविधायें और मुआवजे दिये पर सामान्य वर्ग पर भारी कर लगाया और उनका दमन किया। उसने कहा कि 'मैं लकड़ी काट लूंगा परन्तु इंग्लैण्ड के राजा के समान संवैधानिक शासक नहीं बनूंगा। जनता ने जब फिर से राजतंत्र और कुलीनों के विशेषाधिकार, दमन और विलासिता को लौटते देखा तो उसने क्रांति कर दी।'

(2) **मध्य वर्ग में असन्तोष**– 1789 में भी मध्यम वर्ग ने क्रांति का आरम्भ किया था, 1830 में भी यही वर्ग जागरूक और असन्तुष्ट था अतः इस वर्ग के लेखक, वकीलों, डॉक्टरों, वैज्ञानिकों और पत्रकारों ने क्रांति भावना उत्पन्न की।

(3) **फ्रांसीसी साहित्य**– यूरोप में क्रांति के लिये फ्रांसीसी साहित्य सर्वप्रसिद्ध और लोकप्रिय साहित्य था। अतः समस्त यूरोप ने फ्रांसीसी दार्शनिकों, राजनीतिज्ञों, अर्थशास्त्रियों से प्रेरणा ली और अपने देशों में से निरंकुशता को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया।

(4) **कैथोलिकों का भ्रष्टाचार**– मेटरनिख की सफलता और निरंकुश शासन की स्थापनाओं से चर्च में पुनः भ्रष्टाचार, घमण्ड, विलासिता, सामान्य वर्ग की उपेक्षा और उन पर अत्याचार आरम्भ हो गये, अतः जनता ने पुनः चर्च के खिलाफ संघर्ष आरम्भ कर दिया।

फ्रांस और यूरोपीय क्रांति के प्रमुख कारण
1. चार्ल्स की निरंकुशता
2. मध्य वर्ग में असन्तोष
3. फ्रांसीसी साहित्य
4. कैथोलिकों का भ्रष्टाचार
5. पौलिगनेक की मूर्खता
6. नेशनल गार्ड को समाप्त करना
7. स्वतंत्र समानता और बन्धुत्व की समाप्ति
8. चार्ल्स का अध्यादेश

(5) **पौलिगनेक की मूर्खता**– चार्ल्स 10वां तो निरंकुश था ही, परन्तु उसका प्रधानमंत्री पौलिगनेक और भी अधिक निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी था। उसने उदारवाद को समाप्त कर शक्तिशाली कुलीन वर्ग की स्थापना की घोषणा की। इस घोषणा ने असन्तुष्ट जनता को क्रांति के लिये प्रेरणा दी।

(6) **नेशनल गार्ड को समाप्त करना**– लुई 16वें और 18वें ने नेशनल गार्ड को स्वीकार कर लिया था परन्तु चार्ल्स 10वें ने नेशनल गार्ड को 1821-27 में भंग करवा दिया, जिसके कारण नेशनल गार्ड के सैनिकों ने क्रांति कर दी।

(7) **स्वतंत्र समानता और बन्धुत्व की समाप्ति**– चार्ल्स 10वें ने विचारों की स्वतंत्रता, योग्यता की समानता को समाप्त कर दिया। पुनः वर्गवाद एवं धन का प्रभाव आरम्भ हो गया। उसने कुलीन, पादरी और सामान्य वर्ग की एकता को समाप्त कर राष्ट्रीयता या परस्पर बन्धुभाव को समाप्त कर दिया। अतः फ्रांस तथा यूरोप में वर्गीय संघर्ष होने लगे तथा इसके समर्थकों ने क्रांति के सिद्धान्तों की इस प्रकार से हो रही हत्या को एक गम्भीर खतरा समझा।

(8) **चार्ल्स का अध्यादेश (तात्कालिक कारण)**– जुलाई, 1830 को चार्ल्स ने सेन्टक्लाउड से अध्यादेश जारी किया। इसके अनुसार संवैधानिक अधिकार-पत्र पूर्णरुपेण समाप्त हो गया। इसी के साथ फ्रांस में क्रांति फूट पड़ी।

विभिन्न देशों में 1830 की क्रांति घटनायें– यूरोप में फ्रांस, इटली, जर्मनी, इंग्लैण्ड, बेल्जियम, स्पेन, पुर्तगाल, अमेरिका और पोलैण्ड में तथा अन्य देशों में भी क्रांति की घटनायें घटने लगीं।

(1) **फ्रांस में क्रांति**– 1830 की सेन्टक्लाउड की घोषणा से फ्रांस में क्रांति आरम्भ हो गई। इसका प्रमुख नेता थियर्स था। क्रांति इतनी उग्र थी कि राजा को भागना पड़ा। किसानों, मजदूरों ने भयंकर संघर्ष किये। राजा के अनेक सैनिक क्रांतिकारियों से मिल गये। राजा इंग्लैण्ड गया और बाद में आस्ट्रेलिया भाग गया तथा 1836 में उसकी मृत्यु हो गई। आस्ट्रिया ने मदद भेजी और राजकुमार लुई फिलिप को राजा बनाया गया। इसने एक ओर निरंकुश राजतंत्र को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया तो दूसरी ओर तिरंगे को अपनाकर क्रांतिकारियों को भी संतुष्ट करने का प्रयत्न किया। अतः जनता ने क्रांति को स्थगित कर दिया।

(2) **इटली में क्रांति**– इटली में फ्रांसीसी क्रांति और नेपोलियन की आधीनता के कारण राष्ट्रीय भावनायें उत्पन्न हो चुकी थीं। इस कारण इटली में अनेक कार्बोनरी दल तथा संस्थायें काम कर रही थीं। मैजनी, गैराबाल्डी और इटली के प्रधानमंत्री कैबूर ने राष्ट्रीय एकीकरण का संकल्प लिया और 1820, 1830, 1848 में साम्राज्यवादियों से जमकर संघर्ष किया। यद्यपि 1830 की क्रांति मेटरनिख के द्वारा दबा दी गई परन्तु क्रांतिकारियों की तात्कालिक विजयों ने सफलता का विश्वास दिला दिया।

(3) **प्रशा में क्रांति**– प्रशा में भी राष्ट्रीय आन्दोलनों का उदय हुआ। प्रशियन सम्राट ने परोक्ष में उनका समर्थन किया। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों और शिक्षा केन्द्रों में देशभक्ति की शिक्षा दी जाने लगी। परिणामस्वरूप अनेक क्रांतिकारी घटनायें घटने लगीं। आस्ट्रियन सम्राट ने इनके दमन के लिये कार्ल्सवाद की आज्ञायें निकालीं परन्तु आस्ट्रिया का मेटरनिख इन्हें दबाने में सफल नहीं हुआ। बाद में विस्मार्क ने मेटरनिख के पतन के बाद जर्मनी का एकीकरण कर दिया।

(4) **इंग्लैण्ड में क्रांति**– इंग्लैण्ड में 1822 से उदारवाद का आरम्भ हो चुका था परन्तु 1830 में अनुदार टोरी दल की सरकार और उसके प्रधानमंत्री वैलिंग्टन के खिलाफ जनता में असन्तोष व्याप्त था। संसदीय सुधारों की उसने मांग की तथा 1832 में सुधार बिल पारित हुआ। इससे उत्साहित होकर भविष्य में भी अनेक सुधार हुये। फ्रांस की क्रांति का प्रभाव सुधारों के रूप में हुआ। इंग्लैण्ड में हिंसात्मक क्रांति नहीं हुई।

(5) **अन्य देशों में क्रांतियां**– फ्रांस की 1830 की क्रांति के प्रभाव अन्य देशों पर भी हुये। बेल्जियम भी हॉलैण्ड से स्वतंत्र होने के लिये संघर्ष करने लगा। इसमें बेल्जियम सफल हुआ और उसने जर्मन राजकुमार को अपना राजा घोषित कर दिया। प्रशा, आस्ट्रिया, रूस और इंग्लैण्ड ने उसे स्वतंत्र मान लिया। स्पेन में फर्डीनेण्ड को जनता ने क्रांति और सुधारों की मांगों को स्वीकार करने के लिये विवश कर दिया। पुर्तगाल में जनता ने अपने शासक को हटा दिया। अमेरिका में श्रमिकों, निर्धनों, किसानों और सामान्य वर्गों ने संगठित होकर सरकार को

उनके हितो को स्वीकार करने के लिये दबाव डाले तथा इसमे उन्हें सफलता भी मिली। पोलैण्ड, रूस से स्वतंत्र होने का प्रयत्न करने लगा।

निष्कर्ष– 1830 मे यूरोप के सभी बडे और छोटे देशो में क्रांतियां हुईं। एक बार पुनः निरंकुशता, विशेषाधिकार, अन्याय और शोषण के खिलाफ प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई। परन्तु इस समय यूरोप मे मेटरनिख का प्रभाव बहुत अधिक था तथा कुछ अन्य देशों में निरंकुश राजतंत्र थे जिन्होंने इनका दमन कर दिया। परन्तु 1830 की क्रांतियों ने एक बार चेतावनी दी और स्मरण दिलाया कि सामंतीय अत्याचारो को जनता स्वीकार नही करेगी और सम्पूर्ण राष्ट्र के हितों का विचार कर कार्य करने वाली सरकार का वह निर्माण करके ही रहेगी।

प्रश्न–8. 1848 की क्रांति के कारणों, प्रभावों और परिणामों की विवेचना कीजिये।

अथवा

सन् 1848 को क्रांतियों का वर्ष क्यों कहा जाता है? यह क्रांतियां असफल क्यों हुई?

अथवा

सन् 1848 की फ्रांसीसी क्रांति के कारणों का वर्णन कीजिये।

उत्तर– विश्व में फ्रांस क्रांतियों के उद्गम का देश रहा है। विश्व प्रसिद्ध 1789 की क्रांति, 1830 की क्रांति और फिर 1848 की क्रांति यूरोप में हुईं और 1848 में निरंकुश स्वेच्छाचारी शासन के प्रबल पक्षधर मेटरनिख को भागना पड़ा और विभिन्न देशों में राष्ट्रीय राज्य और संवैधानिक शासन की स्थापनायें होने लगीं।

क्रांति के कारण– सर्वप्रथम क्रांति फ्रांस में ही हुई। इस बार अनेक कारण तो वही थे जो 1789 की क्रांति और 1830 की क्रांति के लिये उत्तरदायी थे। परन्तु कुछ नवीन कारण भी उत्पन्न हुये। अतः इन सभी का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है–

(1) **श्रमिक दल का असन्तोष**– फ्रांस में लुई फिलिप ने मताधिकार को विस्तृत कर दो लाख मतदाता बनाये परन्तु इसमे सम्पत्ति का आधार होने से किसान और श्रमिक वंचित रहे। अतः उन्होंने समाजवाद से प्रेरणा लेकर क्रांति का निश्चय किया। इसी प्रकार इंग्लैण्ड में भी 1832 के बिल के बाद असन्तुष्ट श्रमिक चार्टिस्टों ने आन्दोलन कर संसदीय सुधारों के लिये संघर्ष किया।

(2) **समाजवाद**– इंग्लैण्ड, फ्रांस और जर्मनी में औद्योगिक विकास के साथ समाजवाद का प्रचार और प्रसार हो रहा था। अतः अब राजनीति, शासन व समाज के परस्पर सम्बन्ध तथा पुराने और नवीन विचारों में संघर्ष आदि पर गम्भीर बहस चल रही थी और इसमें से साम्यवादी सरकार, समाजवादी सरकार, प्रजातंत्र और राष्ट्रीय प्रबुद्ध राजतंत्रों के विचार बल पकड़ रहे थे। परन्तु सभी निरंकुशता, विशेषाधिकारों और परिवार प्रमुख शासन के शत्रु हो चुके थे, अतः इन्होंने क्रांति में भाग लिया।

(3) **फिलिप की त्रुटियाँ**– लुई फिलिप एक डरपोक राजा था। वह सदैव बेल्जियम तथा पूर्वी प्रश्नों से भय खाता रहा और इस कारण वह सदैव अवसरवादी भाषण दिया करता था। जर्मन जनता ने इसे पसन्द नहीं किया। वह मेटरनिख से भी भयभीत रहता था इसलिये वह क्रांतिकारियों का विरोध करता था और क्रांतिकारियों के भय से तिरंगा स्वीकार कर उन्हें सन्तुष्ट रखना चाहता था। अतः वह सदैव दुविधा में एवं अवसरवादिता में रहा। संकल्प, दृढ़ निश्चय और सशक्त विदेशनीति के अभाव में वह बदनाम हो गया, अतः फ्रांस में क्रांति हो गई। उसने इटली, पोलैण्ड, स्विट्जरलैण्ड और इटली के क्रांतिकारियों को मदद न करके इन देशों की जनता को अपनी ही जनता का शत्रु बना लिया।

यूरोपीय देशों में क्रांतियां– सर्वप्रथम फ्रांस में उसके पश्चात् आस्ट्रिया, जर्मनी-प्रशा, इटली, रोम, स्विट्जरलैण्ड, हॉलैण्ड और इंग्लैण्ड में क्रांतियां हुईं और उसके स्पष्ट प्रभाव दिखाई दिये।

फ्रांस– फ्रांस में प्रधानमंत्री को हटाने के लिये समाजवादियों और गणतंत्रवादियों ने आन्दोलन किये। परन्तु कुछ समय बाद फिलिप को प्रधानमंत्री को हटाना पडा। अब फ्रांस में सुधारों की मांग की गई। फिलिप ने इनका दमन किया तब क्रांतिकारियों ने भी सशस्त्र सामना किया। फिलिप की सेना क्रांतिकारियों से मिल गई। अतः लुई फिलिप फरवरी, 1848 को भाग गया और समाजवादियों और गणतंत्रवादियों ने गणतंत्र की घोषणा कर दी। इसके कारण बोरबंश और मेटरनिखवाद का अन्त हो गया। वयस्क मताधिकार, निर्वाचन, व्यवस्थापिका और राष्ट्रपति आदि की व्यवस्था की गई और शक्तियों का विभाजन भी कर दिया गया।

आस्ट्रिया– फ्रांस में क्रांति होने का समाचार आस्ट्रिया में जैसे ही पहुँचा वहा के समाजवादी नेताओं ने आन्दोलन किये। मेटरनिख ने इन्हें बहुत निर्दयता से दबाया तथा प्रजातंत्र पर उसने अनेक प्रतिबन्ध लगाये। छात्रों ने मेटरनिख के खिलाफ प्रदर्शन किये परन्तु फर्डीनेण्ड के द्वारा फायरिंग के आदेश देने से भीड़ हिंसक हो गई। अब परिस्थिति बिगड़ती दिखाई दी और जान बचाना मुश्किल होते देख कर राजा और मेटरनिख ने (मार्च, 1848 को) भाग कर इंग्लैण्ड में शरण ली। यह यूरोप में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा अनेक देशों में राष्ट्रीय उत्थान के लिये दूरगामी घटना थी।

प्रशा और जर्मनी– जर्मनी और प्रशा में क्रांति की अनेक घटनायें घटीं। सेक्सनी हेनोवर, बवेरिया और प्रशा में संवैधानिक सरकारें बनीं। प्रशा के राजा और जनता में राष्ट्रीय एकीकरण के लिये प्रयत्न हुये। आस्ट्रिया के आदेशों की उपेक्षा कर राष्ट्रीय शिक्षा और सैनिक तैयारी की गई। प्रशा का राजतंत्र इसका दमन करने में सफल हो गया। परन्तु जनक्रांति को देखकर उसने जनकल्याण के अनेक कार्य किये और जनता में लोकप्रिय होने का प्रयत्न किया।

इटली– इटली में आस्ट्रिया के खिलाफ कारबोर्नी संस्थाओं, मेजनो, गेराबाल्डी और कैबूर ने अनेक सफल प्रयत्न किये। पीडमाण्ट ने संवैधानिक शासन स्थापित कर उसे कैबूर ने सम्पूर्ण इटली का प्रमुख राज्य बना दिया। कैबूर ने आस्ट्रिया के खिलाफ प्रशा को मदद देकर आस्ट्रिया को पराजित करने में और अपने प्रदेशो को स्वतंत्र करवाने में सफलता पाई। इसके लिये उसने फ्रांस से भी मदद ली थी। इटली के निरंकुश राजाओं के खिलाफ अपनी जनता को राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक दशा में सुधार करके तथा निरंकुश राज्यों की जनता को पीडमाण्ट के साथ मिलने को आमंत्रित किया। इसके कारण नेपल्स एवं रोम आदि मे क्रांतियां हुईं। मेटरनिख के पतन के बाद तो बहुत तेजी से पीडमाण्ट के पक्ष में क्रांतिकारियों ने क्रांति की। रोम में इटली के साथ क्रांति हुई तथा मेटरनिख समर्थक पोप को जनता ने भगा दिया और गणराज्य की स्थापना की। टस्कनी व फ्लोरेन्स में भी गणराज्य स्थापित किये। इसी समय फ्रांस के नेपोलियन तृतीय ने पुनः पोप को स्थापित किया और टस्कनी, परमा तथा मोडेना पे

पुनः निरंकुश राजतंत्र स्थापित हो गये। परन्तु मेटरनिख के पतन, विक्टर इमेनुअल का राज्यारोहण तथा कैबूर के प्रधानमंत्री बनने से क्रांतियों को प्रोत्साहन मिला।

अन्य देशों में क्रांतियां– स्विट्जरलैण्ड में यद्यपि 1830 में गणतंत्र स्थापित हो गया था परन्तु उस पर धनी लोगों का और कैथोलिक संघ का कब्जा हो गया था अतः धार्मिक सुरक्षा के लिये तथा शोषण के खिलाफ जनता ने संघर्ष कर उदार शासन स्थापित किया। हॉलैण्ड में 1830 मे क्रांति हुई थी। परन्तु वहाँ निरंकुश शासन पुनः स्थापित हो गया था अतः जनता ने वहां क्राति करके राजा को संवैधानिक शासन की मांग स्वीकार करने के लिये बाध्य कर दिया। इंग्लैण्ड में चार्टिस्टों की मांगें स्वीकार कर संसदीय शासन में सुधार किये गये। इनके परिणामस्वरूप इग्लैण्ड में वयस्क मताधिकार, संसद का वार्षिक चुनाव, सम्पत्ति की योग्यता की समाप्ति, गुप्त मतदान, समान निर्वाचन क्षेत्र, आदि के लिये संघर्ष किये। अतः सरकार को झुकना पड़ा तथा इंग्लैण्ड में राजतंत्र का पहले से अधिक लोकतंत्रीकरण हो गया।

महत्व और परिणाम– यह बात ध्यान देने योग्य है कि 1789 और 1830 की क्रांतियों के बाद निरंकुश या तानाशाही सरकारें स्थापित हो गईं और क्रांतियों की व्यवस्थायें समाप्त कर दी गईं परन्तु 1848 की क्रांतियों में विभिन्न देशों में सत्ता परिवर्तन हुये तथा लोकतंत्र, निर्वाचन प्रणाली, मताधिकार और मानव अधिकार आदि स्थापित हुये और चले भी तथा इनकी जड़ों ने गहराई पकड़ ली। इससे विश्व में **'जनता की सार्वभौम शक्ति'** की अवधारणा दृढ़ हो गई तथा **'देवी अधिकार'** की धारणा व्यर्थ और अव्यावहारिक हो गई।

प्रश्न–9. पूर्वी समस्या से क्या तात्पर्य है? 1789 से 1856 तक की प्रमुख घटनाओं पर प्रकाश डालिये।

अथवा

पूर्वी समस्या से आप क्या समझते हैं? 1856 तक की पूर्वी समस्या का वर्णन कीजिये।

अथवा

पूर्वी समस्या के प्रमुख कारण और परिणामों को संक्षेप में लिखिये।

अथवा

पूर्वी समस्या पर एक लेख (निबन्ध) लिखिये।

उत्तर– पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में तुर्की साम्राज्य अपनी शक्ति की चरम सीमा पर पहुँचकर 1667 से 1789 के बीच पतन की ओर अग्रसर हुआ। तलवार और कुरान के सिद्धान्त पर आधारित इस विशाल ओटोमन साम्राज्य के पतन से यूरोप में अनेक समस्यायें उत्पन्न होने लगीं।

पूर्वी समस्या का अर्थ– टर्की के पतन से पूर्वी यूरोप में समस्याओं की उत्पत्ति हुई, उन्हें पूर्वी समस्या कहा जाता है। कभी-कभी इसे टर्की की समस्या भी कहा जाता है। बल्कान पहाड़ियों के राज्यों की समस्याओं के कारण बल्कान समस्या भी कहा जाता है।

पूर्वी समस्या के कारण– टर्की ने धर्मान्धता में एशिया, यूरोप आदि के देशों को अत्यन्त निर्दयता और क्रूरता से रौंदा तथा उन्हें अपने आधीन बनाया। परन्तु अनेक कारणों से उसकी शक्ति और विस्तार में कमी होने लगी।

अतः इसके लिये निम्नलिखित कारणों को उत्तरदायी माना जाता है–

1. **धर्मान्धता–** तुर्की साम्राज्य के शासक अत्यन्त धर्मान्ध थे तथा इस्लाम के अतिरिक्त सभी धर्मों को और उनके अनुयायियों को वे काफिर तथा हत्या योग्य समझते थे। उनके सामने दो ही विकल्प थे या तो वह इस्लाम स्वीकार कर लें या फिर संघर्ष कर अपनी रक्षा करें और प्राण गंवायें। पूर्वी यूरोप के ईसाई में 1789 के पश्चात् जाग्रति और राष्ट्रीय संघर्ष की भावना जाग्रत हुई।
2. **परस्पर फूट–** आरम्भ में यूरोप के तथा एशिया के देश स्वयं की आन्तरिक फूट, वैमनस्य के शिकार थे। अतः वे कमजोर हो गये तथा इस्लाम के आधीन हो गये। अब टर्की के आधीन विभिन्न शासक और राज्यपालों में व्यक्तिगत राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक स्वार्थ और वैमनस्य उत्पन्न हो गये। योग्य सुल्तानों का अभाव हो गया। अतः टर्की साम्राज्य कमजोर पड़ गया। सेना, प्रशासन में अनेक दोष उत्पन्न हो गये तथा सुल्तान अपने ही प्रान्तीय शासकों पर नियंत्रण नहीं रख पाये।
3. **पड़ौसी राज्यों में राष्ट्रीयता शक्ति का उदय–** प्रथमतः तो फ्रांस की 1789 की क्रान्ति ने पूर्वी देशों (बोस्निया, हर्जेगोविना, सर्बिया, यूनान, रूमानिया, अल्बानिया, मान्टी नीग्रो, वल्गेरिया आदि) में राष्ट्रीयता का प्रचार-प्रसार हुआ। इससे इन्होंने टर्की का संगठित सामना करना आरम्भ कर दिया। अब वे भी टर्की के धर्मान्ध, राजनीतिक, आर्थिक अत्याचारों का जबाव देने लगे थे। द्वितीयतः टर्की इसलिये शक्तिशाली था कि यूरोपीय राज्य कमजोर थे। अब यूरोपीय राज्य विश्व के अन्य राज्यों से धन, सेना और राजनीतिक सहायता प्राप्त करने लगे। स्वयं भी शस्त्रास्त्र और सेना बनाने लगे। अतः इनकी प्रबलता टर्की के पतन का कारण बनी।
4. **पूर्व में यूरोपीय देशों में रुचि–** बल्कान राज्यों में अधिकांश में स्लाव और ग्रीक जाति के व्यक्ति थे। जिनकी सहायता या विरोध रूस, आस्ट्रिया, इंग्लैण्ड, फ्रांस और जर्मनी करते रहते थे। यह स्वार्थ या विरोध निस्वार्थ नहीं था, यह अपने-अपने साम्राज्य विस्तार, उपनिवेशिक प्रतियोगिता, सामुद्रिक यातायात और व्यापार के स्वार्थों और प्रतियोगिता को ध्यान में रखकर टर्की साम्राज्य के, भिन्न स्थानों पर अधिकार करना चाहते थे। इससे टर्की का विनाश और समस्यायें और अधिक बढ़ गईं।

पूर्वी समस्या क्या थी– जंगल में जैसे छोटे-बड़े जंगली जानवर बीमार और मरणासन्न हाथी की मृत्यु की प्रतीक्षा करते हैं जिससे उसका मांस भक्षण के लिये मिले और कभी-कभी इसके लिये आपस में झगड़ भी पड़ते हैं। इसी प्रकार समस्या यह थी टर्की के पतन के बाद उसके विशाल साम्राज्य का क्या होगा? इसके पूर्व भी मृतप्राय राज्यों को शक्तिशाली राज्यों ने आपस में बांट लिया था। अब भी इंग्लैण्ड, रूस, आस्ट्रिया, फ्रांस आदि अपने-अपने स्वार्थों के कारण टर्की के प्रदेशों पर अधिकार करने के प्रयत्नों में लगे थे। दूसरी समस्या टर्की के आधीन राज्यों में राष्ट्रीय स्वतंत्रता की थी। इनमें परस्पर संघर्ष भी थे तथा अन्य शक्तिशाली देश कहीं इनके समर्थक या विरोधी थे। अतः टर्की से स्वतंत्रता कैसे प्राप्त करें? यह एक विकट समस्या थी।

प्रमुख घटनायें– पूर्वी समस्या से सम्बन्धित निम्नलिखित प्रमुख घटनायें थीं–

सर्बिया का संघर्ष– सर्बिया के सर्बो या स्लावों ने कारा जॉर्ज के नेतृत्व में टर्की के विरुद्ध राष्ट्रीय संघर्ष का आरम्भ किया। रूस का उसे समर्थन प्राप्त था। परिणामस्वरूप सर्बिया को स्थानीय शासन के कुछ अधिकार मिले। इससे उत्साहित होकर वह अपने सम्पूर्ण प्रदेश के एकीकरण के लिये और स्वतंत्रता के लिये प्रयत्नशील हुआ।

यूनान की स्वतंत्रता– सर्बिया के राष्ट्रीय संघर्ष से प्रभावित होकर यूनानियों ने स्वतंत्रता संघर्ष का आरम्भ किया। 1821 में उन्होंने हिप्सलोटी के नेतृत्व में माल्डेविया और मोरिया के हजारों तुर्कों को मौत के घाट उतार दिया। इस संघर्ष में उसे रूसी सहायता की आशा थी। यूरोप में मेटरनिख (आस्ट्रिया) और इंग्लैण्ड को भय था कि यूनान की स्वतंत्रता से टर्की का विनाश हो जायेगा तथा रूस का प्रभाव बढ़ जायेगा। अतः वह टर्की को जीवित रखना चाहते थे। अतः उन्होंने ग्रीकों को मदद नहीं दी।

उधर टर्की ने ग्रीकों को पराजित कर क्रीट और एथेन्स में कत्लेआम आरम्भ किया जिससे यूरोपीय जनमत टर्की के खिलाफ हो गया तथा 1822 में केनिंग ने ग्रीकों को 'युद्धरत राष्ट्र' मान लिया। परोक्ष रूप में उसने ग्रीकों को एक राष्ट्र या देश और स्वतंत्रता युद्ध की वैधता को स्वीकार कर लिया। इससे उत्साहित होकर रूस, फ्रांस और इंग्लैण्ड ने टर्की से ग्रीकों को स्वतत्र करने की माँग की। परन्तु इंग्लैण्ड और फ्रांस ने अपने जहाजी बेड़ों को सतर्क कर दिया। इसी समय नेवोरिनों में टर्की के बेड़े से सामान्य मुठभेड़ होने से टर्की का बेड़ा नष्ट हो गया। इसके पश्चात् फ्रांस और इंग्लैण्ड लौट गये परन्तु रूस ने युद्ध जारी रखा तथा टर्की को पराजित कर दिया तथा 14 सितम्बर, 1829 को टर्की ने रूस से संधि करके यूनान को स्वतंत्र राज्य मान लिया तथा बेरिया के राजकुमार को अपना राजा बनाया।

क्रीमिया–युद्ध– क्रीमिया का युद्ध 27 फरवरी, 1854 को फ्रांस, इंग्लैण्ड और इटली की संयुक्त सेनाओं तथा रूस के मध्य आरम्भ हुआ। यह युद्ध लगभग दो वर्ष तक चला। जिसमें रूस की बुरी तरह पराजय हो गई। इस युद्ध के प्रमुख कारणों में रूसी आकांक्षा, यूरोपीय देशों द्वारा उसका विरोध, मेहमत अली का विद्रोह और जेरुसलम की समस्या आदि थे।

1. पीटर के बाद इंग्लैण्ड के व्यापार को देखकर रूस में भी समुद्री व्यापार की आकांक्षा उत्पन्न हुई। इसके लिये कृष्णसागर, एजियन सागर पर अधिकार करना आवश्यक था जो टर्की के अधिकार में थे अतः टर्की को समाप्त कर इन पर अधिकार के लिये रूस प्रयत्नशील हुआ।
2. रूस के भूमध्य सागर में आने से इंग्लैण्ड के विस्तृत व्यापार और विशेषकर भारत से व्यापार के लिये खतरा उत्पन्न हो जाता। अतः किसी भी कीमत पर वह रूस को टर्की या कृष्ण सागर पर अधिकार नहीं करने देना चाहता था। इसलिये उसकी नीति टर्की को कमजोर और अपने पर आश्रित रखने की थी जिससे रूस की ओर वह न झुके।
3. फ्रांस का नेपोलियन तृतीय यद्यपि 1848 में निर्वाचित राष्ट्रपति था परन्तु संविधान समाप्त कर सम्राट बन गया था। इससे उसकी जनता उससे असन्तुष्ट थी अतः जनता का ध्यान रूस की विजय की ओर परिवर्तित करना चाहता था। इसी कारण उसने जेरुसलम के रोमन ईसाईयों की रक्षा का भार स्वयं ग्रहण किया, क्योंकि 1740 में यह अधिकार फ्रांस को मिला था। इससे रूस से प्रतिद्वन्द्विता बढ़ी और युद्ध हो गया।
4. ग्रीक स्वतंत्रता युद्ध के विरोध में टर्की के सुल्तान के मिस्री पाशा (गवर्नर) ने सुल्तान की बहुत सहायता की थी। परन्तु उसकी महत्वाकांक्षा को सुल्तान ने पूरा नहीं किया। अतः उसने विद्रोह किया तथा सीरिया पर अधिकार कर कुस्तुनतुनियां की ओर बढ़ा अतः टर्की के सुल्तान को विवश होकर रूस को सहायता के लिये बुलाना पड़ा।
5. रूस ने टर्की की सहायता के बदले 1833 में उससे उनकियारस्केलैसी की संधि कर प्रादेशिक तथा अन्य अनेक लाभ प्राप्त किये। इसका इग्लैण्ड, फ्रांस और आस्ट्रिया ने विरोध किया और 1840 में लन्दन समझौते में टर्की को जीवित रखने तथा उसकी अखण्डता को बनाये रखने का निश्चय किया। इससे रूस की आशाओं पर पानी फिर गया तथा वह युद्ध द्वारा टर्की को नष्ट करने का विचार करने लगा।
6. जेरुसलम की समस्या क्रीमिया–युद्ध का तात्कालिक कारण बनी। 1740 में रूस को ग्रीक चर्च का तथा फ्रांस को रोमन चर्च के संरक्षण के अधिकार मिले थे। दोनों ने ही इन अधिकारों का प्रयोग अपने–अपने राजनीतिक हितों के लिये किया। ग्रीकों पर अत्याचारों के कारण रूस को हस्तक्षेप का अवसर मिला तथा रूस ने टर्की को 1853 में सभी ईसाइयों के संरक्षण का अधिकार उसे देने के लिये कहा और अल्टीमेटम भी दिया।

इंग्लैण्ड और फ्रांस के दबाव से टर्की ने अल्टीमेटम को अस्वीकार कर माल्डेविया और वालेशिया को खाली करने को कहा तथा टर्की ने भी रूसी जार निकोलस को अल्टीमेटम दिया। परिणामस्वरूप युद्ध छिड़ गया।

पेरिस सन्धि– रूस फ्रांस, इंग्लैण्ड और इटली की संयुक्त शक्ति के सम्मुख टिक नहीं सका। मार्च, 1855 में निकोलस प्रथम की मृत्यु हो गई तथा एलेक्जेण्डर जार बना तथा आस्ट्रिया की मध्यस्थता से युद्ध विराम हुआ तथा 1856 को पेरिस की संधि हो गई। संधि के अनुसार टर्की की सुरक्षा और अखण्डता का निश्चय हुआ। सुल्तान ने भी ईसाई प्रजा के साथ उदार व्यवहार करने का वचन दिया। माल्डेविया और वालेशिया से रूस को हटना पड़ा और उन्हें स्वायत्तता दी गई। सर्बिया को स्वतंत्र मान लिया गया। डेन्यूब नदी सभी देशों के व्यापार के लिये खोल दी गई। क्रीमिया रूस को लौटा दिया गया तथा उस पर सागर तट पर शस्त्रागार बनाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। काले सागर को तटस्थ घोषित कर उसमें युद्ध पोत लाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इसके अतिरिक्त बेसेरेबिया और माल्डेविया को मिला दिया गया।

क्रीमिया युद्ध एक व्यर्थ का युद्ध था। युद्ध जिन उद्देश्यों के लिये किया गया था उन्हें प्राप्त नहीं किया जा सका। रूस का टर्की को समाप्त करने का तथा कृष्ण सागर पर अधिकार करने के उद्देश्य तथा सभी ईसाइयों का संरक्षण करने के अधिकार नहीं मिले। इंग्लैण्ड और फ्रांस को

प्रादेशिक या आर्थिक कोई लाभ नहीं हुआ। टर्की और बल्कान समस्या जैसी थी वैसी ही बनी रही। इस युद्ध के कुछ रचनात्मक परिणाम भी हुये।

सर्बिया, यूनान की स्वतंत्रता मान्य हो गई तथा अन्य बल्कान राज्यों में राष्ट्रीय संघर्ष आरम्भ हो गये। रूस, फ्रांस, इंग्लैण्ड आदि ने अपने-अपने प्रशासन, युद्ध-प्रणाली में परिवर्तन किये तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सेवा संस्थानों की स्थापना हुई जो भविष्य के लिये विश्व को मार्गदर्शन था। इसके बाद रूस ने एशिया में विस्तार की योजना बनाई।

पूर्वी समस्या का निष्कर्ष– टर्की ने जिस निर्दयता, धर्मान्धता से अत्यन्त तीव्र गति से विशाल ऑटोमन साम्राज्य की स्थापना की थी उतनी ही तीव्र गति से उसकी आपसी फूट, धर्मान्धता, आधीन राज्यों की राष्ट्रीयता तथा यूरोपीय देशों की स्वार्थान्धता के कारण टर्की का पतन हुआ तथा वह यूरोप का सर्वाधिक रोगी देश बन गया।

अतः उसके पतन के पश्चात् उसके प्रदेशों के बंटवारे की समस्या उत्पन्न हुई। दूसरी ओर यूरोपीय देशों के परस्पर विरोधी हस्तक्षेप, टर्की के अत्याचार तथा बल्कान राज्यों में आपसी जातिगत तथा धार्मिक मतभेदों के होते हुये स्वतंत्रता प्राप्त करने की समस्यायें उत्पन्न हुई। इसके लिये सर्बिया और यूनान ने टर्की के खिलाफ संघर्ष किया। रूस, फ्रांस, इंग्लैण्ड के हस्तक्षेपों के कारण जेरुसलम की समस्या पर क्रीमिया-युद्ध हो गया तथा उसकी पराजय हो गई और उसे पेरिस की सन्धि करना पड़ी। परन्तु पूर्वी समस्या जैसी थी वैसी ही बनी रही।

परन्तु उसने अनेक महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय परिणाम छोड़े। इसके कारण इटली को एकीकरण का अवसर मिला। प्रशा ने भी इससे आस्ट्रिया को अकेला करने में लाभ उठाया। अन्तर्राष्ट्रीय विधि संस्था का निर्माण 1864 में हुआ। 'फ्लोरेस नाइटेंगल' की अत्यन्त श्रेष्ठ और उज्ज्वल सेवा भावना और चरित्र विश्व के सम्मुख मुखर हुआ। इस युद्ध ने विभिन्न देशों को अपनी प्रशासन सैनिक व्यवस्था तथा युद्ध प्रणाली में परिवर्तन करने को विवश किया।

प्रश्न–10. क्रीमिया युद्ध के कारण और परिणामों की समीक्षा (या विवेचना) कीजिये।

अथवा

'यूरोप के इतिहास में क्रीमिया युद्ध एक निरर्थक युद्ध था।' विवेचना कीजिये।

अथवा

'क्रीमिया युद्ध एक युग को समाप्त तथा दूसरे को आरम्भ किया।' समझाइये।

उत्तर– यूरोपीय इतिहास में क्रीमिया युद्ध वियेना काँग्रेस के बाद एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना थी। इसके सम्बन्ध में दो प्रकार के विचार व्यक्त किये गये हैं। रॉबर्ट मोरियर ने इसे आधुनिक युग का पूर्ण निरर्थक युद्ध कहा है जबकि लॉर्ड क्रॉमेन्ट ने कहा कि 'यदि क्रीमिया युद्ध न होता तो तुर्की पर रूस का आधिपत्य हो जाता।'

क्रीमिया युद्ध के कारण– मोरियर और क्रॉमेन्ट के विचारों की समीक्षा क्रीमिया युद्ध के कारणों को जानकर ही की जा सकती है–

1. **रूस की नीति**– पीटर के बाद रूस में भी इंग्लैण्ड के समान उपनिवेशिक व्यापार की प्रतिस्पर्धा जाग्रत हुई। उसकी यह आकांक्षा तब तक पूरी नहीं होती जब तक उसका कृष्ण और भूमध्य सागर पर अधिकार न हो। इन पर टर्की का आधिपत्य था। अतः रूस टर्की को नष्ट करके भी उसके प्रदेशों पर अधिकार करने के लिये संकल्पबद्ध था।

क्रीमिया युद्ध के कारण

1. रूस की नीति
2. इंग्लैण्ड की नीति
3. फ्रांस की नीति
4. आस्ट्रिया की नीति
5. प्रशा और इटली की नीति
6. मेहमत अली का विद्रोह
7. यूरोपीय देशों का दबाव
8. जेरुसलम की समस्या

2. **इंग्लैण्ड की नीति**– रूस के टर्की साम्राज्य में विस्तार तथा कृष्ण सागर पर अधिकार से इंग्लैंड को अपने अफ्रीकी और भारतीय व्यापार के लिये खतरा जान पड़ता था। अतः वह किसी भी कीमत पर नहीं चाहता था कि रूस कृष्ण सागर पर अधिकार करे। इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री पामर्स्टन ने रूस के जार निकोलस द्वारा टर्की के प्रस्ताव को 1840 में इस कारण अस्वीकार कर दिया।

3. **फ्रांस की नीति**– फ्रांस में नेपोलियन तृतीय यद्यपि निर्वाचित राष्ट्रपति था परन्तु उसने शीघ्र ही संविधान को समाप्त करके स्वयं को फ्रांस का सम्राट (बोनापार्ट के जैसा) घोषित कर दिया था। अतः वह जानता था कि फ्रांस की क्रान्तिकारी और निरंकुशता विरोधी जनता उसके इस कार्य से असन्तुष्ट थी। अतः वह जनता का ध्यान रूस की ओर या पूर्वी समस्या की ओर लगाना चाहता था। इस प्रकार फ्रांस के दृष्टिकोण ने पूर्वी समस्या को या यूरोपीय देशों की प्रतिद्वन्दिता को नवीन रूप प्रदान किया।

4. **आस्ट्रिया की नीति**– आस्ट्रिया भी रूस के कृष्ण सागर में आने का दो कारणों से विरोधी था। प्रथम कारण तो यह था कि वह स्वयं डेन्यूब नदी के द्वारा कृष्ण और एजियन में जाने का और व्यापार करने का इच्छुक था। दूसरा कारण कृष्ण सागर पर अधिकार होने से वह अपने स्वजातीय सर्बिया, यूगोस्लाव और ग्रीकों की मदद से अनेक बल्कान राज्यों पर अधिकार कर लेता, उस स्थिति में आस्ट्रिया को व्यापार में सुविधा कभी नहीं मिलती। अतः आस्ट्रिया टर्की को बनाये रखकर इस कृपा का लाभ टर्की से प्राप्त करना चाहता था। अतः वह रूस को राष्ट्रीय आन्दोलनों में मदद करने के लिये यूनान में और सर्बिया में रोकता रहा। आस्ट्रिया इस समय युद्ध में भाग लेने से भी संकोच इसलिये कर रहा था कि यूरोप में 1830 और 1848 की क्रान्तियों का और विशेषकर जर्मनी और इटली में दमन करना पड़ा था।

5. **प्रशा और इटली की नीति**– कैबूर इटली की समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय बनाकर आस्ट्रिया को एकाकी और बदनाम करने के लिये प्रयत्नशील था। कालान्तर में यह अवसर पाने के लिये क्रीमियाँ में कोई आर्थिक या प्रादेशिक हित न होते हुये भी वह इंग्लैण्ड और फ्रांस के साथ रूस पर आक्रमण करने को तैयार हो गया। जहाँ तक प्रशा का प्रश्न है वह रूस को क्रीमिया में भाग लेकर नाराज नहीं करना चाहता था। बल्कि बिस्मार्क ने अपने राजदूत काल में प्रशा के रूस पर आक्रमण का विरोध किया था तथा जार से व्यक्तिगत रूप में भी मित्रता की थी। इसके पीछे उसका यही दृष्टिकोण था कि भविष्य में आस्ट्रिया की पराजय के लिये रूस तटस्थता अधिक मूल्यवान होगी। अतः प्रशा ने तटस्थ रहने का निश्चय किया।

6. **मेहमत अली का विद्रोह**– टर्की सुल्तान इस समय बहुत अधिक कमजोर था। यूनान को दबाने के लिये उसने अपने ही मिस्र में एक राज्यपाल से मदद ली थी परन्तु फिर भी एड्रियानोपल की संधि में यूनान की स्वतंत्रता स्वीकार करना पड़ी। तुर्की के सुल्तान की सहायता के बदले में मिस्त्री पाशा को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ था। अतः मेहमत अली ने

विद्रोह कर सीरिया पर अधिकार कर लिया और कुस्तुनतुनियां की ओर बढ़ा। अतः टर्की के सुल्तान ने इस विद्रोह दमन के लिये रूस को आमंत्रित किया। यूरोपीय देशों ने आमंत्रण स्वीकार नही किया था।

7. **यूरोपीय देशों का दबाव**– रूस के आने के कारण इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि ने सुल्तान पर दबाव डाला कि वह मेहमत अली को सीरिया देकर समझौता कर ले। टर्की ने अपनी निर्बलता और भय के कारण प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। परन्तु रूस ने भी टर्की को उनकियार स्कैलेशी की संधि स्वीकार करने के लिये विवश किया। सन् 1833 की इस संधि से रूस को प्रादेशिक तथा अनेक राजनीतिक आर्थिक लाभ हुये। इस रूस विस्तार और प्रभाव से चिंतित इंग्लैण्ड ने 1840 में लन्दन में एक सम्मेलन बुलाया। जिस पर सभी बड़े देशों ने हस्ताक्षर किये। इससे रूस को मिले सभी लाभ समाप्त हो गये तथा उसने टर्की को नष्ट करने का निश्चय कर लिया।

8. **जेरुसलम की समस्या**– जेरुसलम ईसाइयों का एक पवित्र स्थान था जो टर्की साम्राज्य में स्थित था। वहाँ रोमन और ग्रीक चर्च के पादरी रहते थे। परन्तु दोनों में आपस में गंभीर मतभेद भी थे। दूसरी ओर टर्की के सुल्तान दोनों पर भयंकर अत्याचार करते रहते थे। इस कारण 1740 में एक सन्धि के अनुसार टर्की को यह मानना पड़ा था कि रोमन पादरियों की रक्षा फ्रांस और ग्रीक पादरियों की रक्षा रूस करेगा।

(I) **फ्रांस का हस्तक्षेप**– फ्रांस में निरन्तर 1789 की क्रान्ति, आतंक राज्य, नेपोलियन का उदय और युद्ध आदि की अराजकता के कारण फ्रांस रोमनों की ओर ध्यान नहीं दे सका परन्तु नेपोलियन तृतीय ने जनता का ध्यान आन्तरिक समस्या से हटाने के लिये रोमन सुरक्षा के लिये उनका पक्ष लिया। वह फ्रांस के गौरव की प्रतिष्ठा से स्वयं के सम्राट बनने से असन्तुष्ट जनता को संतुष्ट करना चाहता था। अतः वह जानता था कि इससे रूस नाराज होगा तथा युद्ध हो जायेगा तथा उसे हराने का और विजय प्राप्त करने का श्रेय मिलेगा जिससे उसकी सत्ता दृढ़ हो जायेगी।

(II) **फ्रांस–रूस विवाद**– रूस ने चेतावनी दी कि ग्रीक पादरियों को हानि न पहुँचे। टर्की ने दोनों में समझौता करने का असफल प्रयत्न किया। दोनों ही हस्तक्षेप के लिये कृतसंकल्प थे। अतः रूस ने टर्की से सभी पादरियों की सुरक्षा का अधिकार मांगा तथा एक अल्टीमेटम भी दे दिया। टर्की ने इंग्लैण्ड, फ्रांस के दबाव से इसे अस्वीकार कर दिया तथा दोनों को अपने–अपने युद्धपोत कृष्ण सागर में टर्की की मदद को भेज दिये।

क्रीमिया युद्ध– 27 फरवरी, 1854 को रूस ने फ्रांस और रूस के 'तुर्की के प्रदेश खाली करने' के अल्टीमेटम को अस्वीकार कर दिया जिससे दोनों पक्षों ने युद्ध आरम्भ कर दिया। आस्ट्रिया इस युद्ध में रूस की अपेक्षा के विपरीत तटस्थ ही नहीं रहा बल्कि दो बार उसे धमकी भी दी, जिसके कारण आस्ट्रिया को उसकी कीमत चुकाना पड़ी। प्रशा इसमें तटस्थ था और बिस्मार्क ने रूस से मित्रता रखी। इटली ने फ्रांस और इंग्लैण्ड का साथ दिया। यह युद्ध दो वर्षों तक चला तथा दोनों पक्षों की अपार जन–धन की हानि हो गई। मार्च, 1855 में जार निकोलस प्रथम की मृत्यु हो गई।

पेरिस संधि– एलेक्जेण्डर द्वितीय ने युद्ध को चलाना व्यर्थ समझा तथा फ्रांस और इंग्लैण्ड भी आर्थिक और सैनिक विनाश से हताश थे और उन्हें कोई आर्थिक लाभ दिखाई नहीं दे रहा था अतः आस्ट्रिया की मध्यस्थता से 1856 को 30 मार्च के दिन पेरिस की संधि हो गई।

धारायें–

(i) सभी ने टर्की की प्रादेशिक अखण्डता और राजनीतिक स्वतंत्रता को बनाये रखने का आश्वासन दिया। तुर्की के आन्तरिक विषयों में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा।

(ii) सुल्तान अपनी ईसाई प्रजा की दशा सुधारेगा और उदार शासन स्थापित करेगा।

(iii) ईसाई प्रजा के विशेष अधिकारों की पुष्टि की तथा रूस ने ईसाइयों के संरक्षण का अधिकार त्याग दिया।

(iv) माल्डेविया और वालेशिया से रूस हट गया। यहाँ स्वायत्तता प्रदान की गई। परन्तु तुर्की की प्रभुता बनी रही।

(v) सर्बिया को स्वतंत्र माना गया।

(vi) डेन्यूब नदी व्यापार के लिये सभी राष्ट्रों (रूस नहीं आ सकता था) के लिये खोल दी गई।

(vii) बेसेरेविया को माल्डेविया से मिला दिया गया।

(viii) कार्स का प्रदेश टर्की को और क्रीमिया रूस को वापस मिल गया।

(ix) काले सागर को तटस्थ घोषित कर वहाँ किसी प्रकार के शस्त्रास्त्र लाने ले–जाने पर या रखने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। रूस को अपने शस्त्रागार हटाने पड़े।

क्रीमिया युद्ध का महत्व और परिणाम– क्रीमिया युद्ध परिणामों की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण परन्तु विवादास्पद घटना है।

एक निरर्थक युद्ध– रॉबर्ट मोरियर के अनुसार, क्रीमिया युद्ध 'आधुनिक युग का पूर्ण व्यर्थ युद्ध था। यह युद्ध रूस ने कृष्ण सागर के प्रदेशों पर अधिकार करने और टर्की को नष्ट करने के लिये किया था। परन्तु वह इन दोनों ही उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सका, बल्कि उसे टर्की के प्रदेश छोड़ने पड़े, शस्त्र भण्डार हटाना पड़े। ईसाई प्रजा के संरक्षण की माँग की थी, वह भी रूस को छोड़ना पड़ी। पूर्वी समस्या को अकेले ही सुलझाने की रूसी योजना व्यर्थ गई।' फ्रांस, रूस, इटली, टर्की को सुरक्षित रखना चाहते थे, परन्तु क्रीमिया के बाद टर्की का पतन और अधिक तेजी से हुआ जिससे भविष्य में उसकी अखण्डता ही समाप्त हो गई। सर्बिया यूनान की स्वतंत्रता के बाद स्वतंत्र हो गये तथा क्रमशः अन्य बल्कान राज्य भी संघर्ष करने लगे। व्यापारिक प्रतिद्वन्दिता में इंग्लैण्ड और इटली को कोई सकारात्मक लाभ नहीं हुआ। भूमि और अधिकार तथा क्षतिपूर्ति राशि किसी को नहीं मिली।

क्रीमिया युद्ध व्यर्थ का युद्ध नहीं था– अनेक विद्वानों और लार्ड क्रॉमेन्ट का यह विचार था कि यह युद्ध व्यर्थ नहीं बल्कि अनेक अच्छे–बुरे परिणामों वाला था। क्रॉमेन्ट के अनुसार इस युद्ध के बिना रूस का तुर्की पर पूर्ण आधिपत्य हो जाता जिससे आस्ट्रिया, फ्रांस, इंग्लैण्ड और टर्की की राजनीति, व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ता।

इससे टर्की की रूस से रक्षा हुई। सर्बिया और यूनान को स्वतंत्रता मिली। आस्ट्रिया और फ्रांस के निर्बल बनने से जर्मनी और इटली के एकीकरण पूर्ण हुये तथा अन्य बल्कान राज्यों में स्वतंत्रता आन्दोलनों को प्रेरणा मिली। फ्रांस में नेपोलियन तृतीय की और इटली में कैबूर की

लोकप्रियता बढ़ी और पेरिस सम्मेलन में कैबूर ने आस्ट्रिया के विरुद्ध फ्रांस, इंग्लैण्ड और प्रशा की सहानुभूति प्राप्त की। वियेना का सिद्धान्त और मेटर्निख का प्रभाव पूर्णरूपेण समाप्त हो गया।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक प्रभाव– रूस की जनता में जारों की पराजय से यह भावना उत्पन्न हुई कि रूसी सरकार भ्रष्ट, अयोग्य और निर्बल सरकार है। अतः रूस में क्रान्तिकारी आन्दोलन और शून्यवादी हिंसक संघर्ष हुये तथा निकोलस प्रथम और द्वितीय की हत्या के प्रयास किये गये। जारों ने सेना का पुनर्गठन आरम्भ किया तथा प्रशासन में सुधारों पर जोर दिया। 1781 के पश्चात् यूरोप में 'सशस्त्र शान्ति' का युग आरम्भ हुआ तथा शस्त्रास्त्र, रणनीति, सेनाओं में अनेक परिवर्तन हुये तथा उनकी कुशलता में वृद्धि हुई। विशेष कर सेनाओं में जर्मन प्रणाली अपनाई गई।

अन्तर्राष्ट्रीय विधि और संस्थायें– क्रीमिया युद्ध के परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय विधि की आवश्यकता पहली बार अनुभव की गई। इस समय अनेक नियमों का निर्माण हुआ जिन्हें बड़े राष्ट्रों ने स्वीकार किया तथा वियेना कांग्रेस के कार्य को आगे बढ़ाया।

रेडक्रॉस– घायल सैनिकों की सेवा में ब्रिटेन की फ्लोरेंस नाईटेंगल ने सेवा के क्षेत्र में अत्यन्त श्रेष्ठ और महान् आदर्श प्रस्तुत किया तथा इनकी देखभाल के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था 1864 में रेडक्रॉस नाम से स्थापित की गई। फिर तो ऐसी संस्थाओं के निर्माण के लिये अनेक आन्दोलन चलने लगे।

निष्कर्ष– इस प्रकार क्रीमिया युद्ध अनेक दृष्टिकोणों से अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना थी। क्रीमिया के बाद पूर्वी समस्या में कुछ काल के लिये एक विराम आया तथा एक युग समाप्त हुआ तथा दूसरा युग 1870 के पश्चात् आरम्भ हुआ जो प्रथम महायुद्ध तक चला। यह इस युग का (1789–1870) प्रथम अवसर था, जब फ्रांस और इंग्लैण्ड एक पक्ष में थे और बाद में भी एक पक्ष में रहे। आधुनिक युग में यह पहला ऐसा युद्ध था जिसमें स्त्रियों ने फ्लोरेंस नाईटेंगल के नेतृत्व में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा यही प्रथम युद्ध था जिसने प्रेस, तार तथा आधुनिक अनुसंधानों पर प्रभाव डाला। अतः यह कहना उपयुक्त होगा कि तात्कालिक परिणामों में यह व्यर्थ का तथा दूरगामी परिणामों में अत्यन्त सार्थक परिणामों वाला युद्ध था तथा एक युग की समाप्ति का तथा दूसरे के आरम्भ का मध्य बिन्दु था।

लघुउत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न–(1) स्पेनी नासूर से आप क्या समझते हैं?

अथवा

नेपोलियन ने कहा था, 'स्पेन के फोड़े ने मुझे नष्ट कर दिया।' विवेचना कीजिये।

उत्तर– फ्रांस के लिये रिसने वाला व्रण– सर्वप्रथम यह युद्ध नेपोलियन के लिये अत्यन्त घातक था। इसमें नेपोलियन के प्रसिद्ध सेनापति तथा सैनिक बन्दी बनाये गये और मारे गये। नेपोलियन की अपेक्षा और आशा के अनुरूप स्पेन पर उसका अधिकार नहीं हो पाया वह समझता था कि 3 माह में वहाँ उसका अधिकार हो जायेगा परंतु 1807 से 1813 तक भी उसका अधिकार नहीं हो पाया। इस युद्ध में जहाँ नेपोलियन का भारी मात्रा में धन, सैनिक, शस्त्रास्त्र आदि नष्ट हुये वहीं फ्रांस और यूरोप में नेपोलियन की युद्ध कुशलता, प्रतिभा, प्रतिष्ठा तथा अजेयता पर से विश्वास उठ गया और यूरोपीय राष्ट्र जो उसके मित्र या

आधीन थे उसके विरूद्ध संघर्ष करने लगे तथा संगठित होने लगे। इस कारण स्पेन की पराजय को नेपोलियन इस प्रकार याद करता था कि, 'स्पेन के व्रण ने मुझे बर्बाद कर दिया।'

नेपोलियन की इंग्लैण्ड को पराजित करने, उस पर अधिकार करने और उसके साम्राज्य को नष्ट करने की आकांक्षा स्पेन की भूमि में खो गई और अन्य युद्धों में समाप्त हो गई। स्पेन से युद्ध के कारण उसकी यह सभी आकांक्षायें अधूरी रह गईं। राइन संघ, विभिन्न गणतन्त्रों के निर्माण, जोसेफ, लुसियन, जेरोम आदि को राजा बनाये रखना पोप के राज्य की समाप्ति, रूस पर नियंत्रण, प्रशा की आधीनता आदि उसकी सभी योजनायें रखीं रह गईं। स्पेन ने नेपोलियन की आधीनता और गुलामी के खिलाफ तत्काल जबरदस्त प्रतिक्रिया की जिसके कारण वह स्पेन में ही नहीं बल्कि यूरोप के प्रत्येक देश में पराजित हो गया। नेपोलियन अपनी इस पराजय को कभी नहीं भूल पाया तथा यह एक व्रण (फोड़े) के समान कष्ट देती रही।

प्रश्न–(2) पवित्र मैत्री संघ क्या था?

अथवा

'पवित्र संघ' पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

उत्तर– पवित्र संघ– नेपोलियन ने यूरोप में जो उथल–पुथल की थी उसे पुनः व्यवस्थित करने का कार्य वियेना सम्मेलन ने किया। इस सम्मेलन में जो निर्णय किये गये उन्हें कार्यान्वित करने के लिये यूरोपीय शक्तियों ने कुछ संयुक्त कार्यवाही की। इनमें एक पवित्र संघ भी था। पवित्र संघ की पहल रूस के जार एलेक्जेण्डर ने की थी। वह एक धार्मिक रुचि का सम्राट था और समझता था कि ईसाई चर्च मानव–जीवन को नियन्त्रित करने में समर्थ था। अतः सितम्बर, सन् 1815 ई. में उसने आस्ट्रिया और प्रशा के शासकों को इस सम्बन्ध में विस्तृत पत्र लिखे जिनमें एक पवित्र संघ निर्माण करने के सम्बन्ध में लिखा तथा कहा कि इसमें शामिल शक्तियाँ आन्तरिक तथा बाह्य नीतियों में ईसाई धर्म के उपदेशों का पालन करेंगी तथा परस्पर भाईयों के समान व्यवहार और मदद करेंगी और अपनी प्रजा को अपनी सन्तान समझेंगी। टर्की और इंग्लैण्ड को छोड़कर अन्य यूरोपीय देशों ने इसकी सदस्यता ग्रहण कर ली। यह संघ नाम से पवित्र संघ था, परन्तु इसके सदस्यों का पवित्रता से कोई सम्बन्ध नहीं था अतः शीघ्र ही यह दमन और उत्पीड़न के साधन के रूप में काम करने लगा। अनेक देशों ने मात्र स्वार्थ के लिये ही इसे स्वीकार किया था।

प्रश्न–(3) वियना कांग्रेस में मैटरनिख की भूमिका बताइये।

अथवा

'मेटरनिख' के बारे में संक्षेप में समझाइये।

उत्तर– मेटरनिख– सन् 1815 ई. से सन् 1848 ई. का काल 'मेटरनिख–युग' कहलाता है। इस काल में यूरोप की राजनीति और निर्णयों पर आस्ट्रिया का प्रधानमंत्री छाया रहा।

मेटरनिख का परिचय– काउण्ट क्लीमेन्स मेटरनिख का जन्म 15 मई, 1773 को राइनलैण्ड के काबलेन्ज नामक स्थान पर एक सामन्त के यहाँ हुआ था। उसने स्ट्रासबर्ग के विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। नेपोलियन ने उसकी सम्पत्ति को हड़प लिया अतः वह क्रांति का शत्रु बना। सन् 1809 में आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसिस प्रथम ने उसे अपना प्रधानमंत्री बनाया। सन् 1795 में उसने आस्ट्रियन राजनीतिज्ञ की पौत्री से विवाह कर लिया इससे उसके प्रभाव में अत्यधिक वृद्धि हुई। मेटरनिख को सिद्धान्तों और आदर्शों से घृणा थी। वह प्रतिक्रियावादी था तथा प्रजातंत्र और राष्ट्रीयता को एक अपराध और अराजकता उत्पन्न करने वाले तत्व मानता था। उसका विश्वास निरंकुश स्वेच्छाचारी शासन में था। क्रांति की उसने इसी आधार पर आलोचना की और नेपोलियन का विरोध उसने इसलिये किया कि वह

परम्परागत राजवंश का नहीं था। वह शक्ति संतुलन और राजतंत्रों को निरंकुश शक्ति देने का समर्थक इसलिये था कि जिससे राष्ट्रीयता और प्रजातंत्रात्मक भावनायें उत्पन्न न हो जायें।

वियेना सम्मेलन और मेटरनिख– वियेना सम्मेलन उसकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना थी जिसके सभी निर्णय उससे पूरी तरह प्रभावित थे।

प्रश्न–(4) 1830 की क्रान्ति के प्रमुख कारण बताइये।

उत्तर– 1830 की यूरोपीय क्रान्तियों का आरंभ फ्रांस से हुआ। क्योंकि यहाँ क्रान्ति के लिये पर्याप्त कारण थे। यही कारण अन्य देशों में भी व्याप्त थे फ्रांस व यूरोपीय क्रांति के प्रमुख कारण निम्नांकित है–

(1) **चार्ल्स की निरंकुशता–** फ्रांस में लुई 18वें ने क्रांति के सिद्धान्तों का सम्मान कर शांति बनाये रखी परन्तु उसकी मृत्यु के बाद चार्ल्स 10वाँ फ्रांस का सम्राट बना और अपने निरकुश शासक बनने का प्रयत्न किया। उसने जमींदारों को सुविधायें और मुआवजे दिये। सामान्य वर्ग पर भारी कर लगाया और दमन किया।

(2) **मध्य वर्ग में असन्तोष–** 1789 में भी मध्यम वर्ग ने क्रांति का आरंभ किया था, 1830 में भी यही वर्ग जागरूक और असंतुष्ट था अतः इस वर्ग के लेखक, वकीलों, डॉक्टरों, वैज्ञानिकों और पत्रकारों ने क्रांति भावना उत्पन्न की।

(3) **फ्रांसीसी साहित्य–** यूरोप में क्रांति के लिये फ्रांसीसी साहित्य सर्वप्रसिद्ध और लोकप्रिय साहित्य था। अतः समस्त यूरोप ने फ्रांसीसी दार्शनिकों, राजनीतिज्ञों, अर्थशास्त्रियों से प्रेरणा ली और अपने देशों में से निरंकुशता को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया।

(4) **कैथोलिकों का भ्रष्टाचार–** मेटरनिख की सफलता और निरंकुश शासन की स्थापनाओं ने चर्च में पुनः भ्रष्टाचार, घमण्ड, विलासिता, सामान्य वर्ग की उपेक्षा और उन पर अत्याचार आरंभ हो गये। अतः जनता ने पुनः चर्च के खिलाफ संघर्ष आरंभ किया।

(5) **पौलिगनेक की मूर्खता–** चार्ल्स 10वाँ तो निरंकुश था ही परन्तु उसका प्रधानमंत्री पौलिगनेक और भी अधिक निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी था। उसने उदारवाद को समाप्त कर शक्तिशाली कुलीन वर्ग की स्थापना की घोषणा की।

प्रश्न–(5) सन् 1848 को क्रान्तियों का वर्ष क्यों कहा जाता है?

अथवा

'1848 का वर्ष आश्चर्यजनक घटनाओं का वर्ष था।' इस कथन का संक्षिप्त परीक्षण कीजिये।

उत्तर– यूरोपीय देशों में क्रांतियाँ– सर्वप्रथम फ्रांस में उसके पश्चात् आस्ट्रिया, जर्मनी प्रशा, इटली, रोम, स्विट्जरलैण्ड, हॉलैण्ड और इंग्लैण्ड में क्रांतियाँ हुईं और उसके स्पष्ट प्रभाव दिखाई दिये।

फ्रांस– फ्रांस में प्रधानमंत्री को हटाने के लिये समाजवादियों और गणतंत्रवादियों ने आंदोलन किये, जिससे कुछ समय बाद फिलिप को प्रधानमंत्री को हटाना पड़ा। अब फ्रांस में सुधारों की माँग की गई। फिलिप ने इनका दमन किया परन्तु क्रांतिकारियों ने भी सशस्त्र सामना किया। फिलिप की सेना क्रांतिकारियों से मिल गई जिसके कारण लुई फिलिप फरवरी, 1848 को भाग गया।

आस्ट्रिया– फ्रांस की क्रांति का समाचार आस्ट्रिया में जैसे ही पहुँचा वहाँ के समाजवादी नेताओं ने आन्दोलन किये। मेटरनिख ने इन्हें बहुत निर्दयता से दबाया तथा प्रजातंत्र पर अनेक प्रतिबंध लगाये गये। छात्रों ने मेटरनिख के खिलाफ प्रदर्शन किये परन्तु फर्डीनेण्ड के द्वारा फायरिंग के आदेश देने से भीड़ हिंसक हो गई। अब परिस्थिति बिगड़ती दिखाई दी और प्राण

बचाना मुश्किल होते देख राजा और मेटरनिख ने मार्च, 1848 को भागकर इंग्लैण्ड में शरण ली।

प्रश्न–(6) क्रीमिया के युद्ध के प्रति नेपोलियन तृतीय की नीति पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

उत्तर– पीटर और कैथरिन महान के समय से ही रूस टर्की के आधीन अजोव क्रीमियां और बाल्कन राज्यों पर अधिकार करके कृष्णसागर का उपयोग अपने समुद्री व्यापार के लिये करना चाहता था। इंग्लैण्ड जिजने टर्की के आधीन और बहुत निकट भूमध्य सागर में साईप्रस पर अधिकार कर रखा था तथा टर्की की राजनीति और आर्थिक मदद को प्रभावित करता था, रूस के कृष्णसागर से भूमध्य सागर में आने का विरोधी था। यद्यपि फ्रांस या नैपोलियन तृतीय का यहां कोई हित सम्बन्ध या हितों को हानि नहीं थी फिर भी नैपोलियन तृतीय रूस को पराजित कर नैपोलियन बोनापार्ट की मास्को अभियान में पराजय का बदला लेना चाहता था तथा जनता को प्रभावित करना चाहता था। अतः उसने अवसर की खोज की।

नैपोलियन तृतीय को अवसर तब मिला जब टर्की के आधीन बेथलहम के चर्च नेटिविटि के प्रबन्ध पर रूस और टर्की में समझौता हुआ तथा इसकी व्यवस्था रूसी ग्रीक चर्च करे या रोमन कैथोलिक करे, पर विवाद भी उत्पन्न हुआ। नैपोलियन तृतीय ने रोमन कैथोलिकों का पक्ष लेकर हस्तक्षेप किया। इसके उत्तर में रूस ने भी आक्रमण किये। इग्लैण्ड, टर्की और फ्रांस ने क्रीमियां में रूस को पराजित किया तथा चारों में पेरिस में 1856 में संधि वार्ता हुई। इसमें किसी भी पक्ष को कोई बड़ा आर्थिक लाभ न मिलने से यह युद्ध व्यर्थ सिद्ध हुआ। परन्तु नैपोलियन तृतीय ने इसका उपयोग अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाने में किया। परन्तु वास्तव में यह नैपोलियन की सैनिक असफलता और अंतिम राजनीतिक सफलता थी।

इकाई-5

दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न–1. इंग्लैण्ड में उदारवाद के आरम्भ के कारण बताइये।

अथवा

इंग्लैण्ड में उदारवाद के उदय के कारणों की विवेचना कीजिये।

उत्तर– इंग्लैण्ड की समाज व्यवस्था में धनी और निर्धन नागरिकों में गहरी खाई सदैव से बनी हुई थी। यदि कोई लार्ड अपने स्वभाव से उदार हुआ तो अपवाद रूप में उदारता दृष्टिगोचर होती थी। अन्यथा इंग्लैण्ड में भयंकर निर्धनता, भिक्षावृत्ति, अपराध तथा निर्धन किसानों और श्रमिकों का अत्यन्त अमानवीय शोषण था। लार्ड्स उन्हें अपने पशुओं के समान अपना दास समझता था। देश का सम्राट, शासन, न्याय, गृहनीति तथा विदेश नीति, कृषि नीति अथवा उद्योग नीति सभी कुछ लार्ड्स के हितों में ही बनती थीं तथा उन्हीं के लाभ के लिये होती थीं। संसद के दोनों सदनों में लार्ड्स, कुलीनों तथा धनी व्यक्तियों का प्रभाव था। इस अवस्था में इंग्लैण्ड में उदारता एक मृगमरीचिका दिखाई देती थी।

उदारवाद के उदय के कारण– इंग्लैण्ड में उदारवाद नाम मात्र को भी नहीं था। हेनोबर राजवंश अत्यन्त बदनाम, अयोग्य राजवंश था। इंग्लैण्ड में राजवंशीय निरकुशता के खिलाफ विभिन्न कारणों से समय-समय पर विद्रोह और हिंसक दंगे होते रहे जैसे लैम्बर्ट सिमनल, पर्किन बार्वेक, मनमाऊथ आदि के विद्रोह। यह विद्रोह दर्शाते हैं कि इंग्लैण्ड निरकुशता के खिलाफ मचल रहा था।

जिसके लिये निम्न कारण उत्तरदायी थे–

1. **संसद और राजा में संघर्ष–** सामंतीय संघर्षों के कारण जनता देश की राजनीतिक, आर्थिक दशा से पहले ही परेशान थी। उसके पश्चात् जब राष्ट्रीय राजतंत्रों के उदय के समय प्रबुद्ध राजाओं ने मध्यम वर्गीय जनता का सहयोग प्राप्त करने के लिये उनके अनुकूल नियम और कानून बनाये। अतः एक प्रकार से 'स्वार्थपूर्ण उदारता का युग' सामंतीय पतन और राष्ट्रीय राजतंत्रों के उदय के साथ ही आरम्भ हो गया था। उसके पश्चात् गृहयुद्ध (1642-1648) में ससद की विजय तथा 1648 में शानदार क्रान्ति में जनता की ही विजय हुई। स्वयं को सर्व शक्तिमान ईश्वर का प्रतिनिधि समझने वाले तथा मनमाने कानून बनाने वाले तथा ससद की उपेक्षा करने वाले राजाओं पर कभी महाभियोग लगाये गये, कभी मृत्युदण्ड (चार्ल्स, 1642) दिये गये और कभी राजा को राज्य छोड़ने के लिये (जेम्स द्वितीय, 1 दिया गया तथा उसे देश से भगा दिया गया। क्रॉमवैल जैसे तानाशाह को भी संसद ने हटा दिया।

इन सभी घटनाओं ने तीनों बातों को स्पष्ट कर दिया– राजा सर्वोच्च नहीं है, जनता का प्रतिनिधि सदन (निम्न सदन) अधिक शक्तिशाली है, द्वितीय बात यह भी स्पष्ट हो गई कि अनुदार और निरंकुश शासन को जनता सहन नहीं करेगी। अतः संसद सदस्यों का झुकाव उदारता की ओर होने लगा।

उदारवाद के उदय के कारण

1. संसद और राजा में संघर्ष
2. अमेरिकी क्रान्ति से उदारता की प्रेरणा
3. 1789 की फ्रेंच क्रान्ति और उदारता
4. फ्रांस से संघर्ष और उदारता का आरम्भ
5. इंग्लैण्ड में सुधारों की माँग
6. आयरलैण्ड की समस्या और उदारता
7. चार्टिस्ट आन्दोलन
8. प्रतिक्रियावाद की विदाई और उदार युग का आगमन

2. **अमेरिकी क्रान्ति से उदारता की प्रेरणा–** अमेरिकी क्रान्ति से दो चित्र उपस्थित हुये, प्रथम वह चित्र था जो इंग्लैण्ड के राजाओं और मंत्रियों की अयोग्यता का था। इनकी धार्मिक असहिष्णुता, भेदभावपूर्ण और हठी (निरंकुश, घमण्डी) ग्रेनविल की नीतियों के कारण हजारों प्यूरिटनों और अंग्रेजों को इंग्लैण्ड छोड़कर अमेरिका जाना पड़ा और उन्हें इंग्लैण्ड में रहने वाली सरकारों तथा मंत्रियों से लड़कर स्वतंत्र होना पड़ा। अमेरिका की यह घोषणा कि 'बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर' परोक्ष रूप से इंग्लैण्ड से उदारता की अपेक्षा थी। फिर इंग्लैण्ड से संघर्ष अनुदारता, निरंकुशता तथा असहिष्णुता को चुनौती थी और स्वतंत्रता की घोषणा इंग्लैण्ड की अनुदारता का त्याग तो थी और साथ ही यदि इंग्लैण्ड ने अपनी अनुदारता पुनः लादने की कोशिश की तो सशस्त्र संघर्ष की चेतावनी थी। इस संघर्ष ने अंग्रेजी राजनीतिज्ञों को आत्मचिंतन के लिये प्रेरित किया तथा उन्हें यह सोचने के लिये विवश किया कि अनुदारता की पराकाष्ठा इंग्लैण्ड की सत्ता और अस्तित्व को ही समाप्त कर देगी। अतः उसमें उदार दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा मिली।

3. **1789 की फ्रेंच क्रान्ति और उदारता–** 1789 में फ्रांस में निरंकुश तथा [illegible]धिकारों के खिलाफ क्रान्ति हुई। जिसमें राजा को अपदस्थ कर संवैधानिक शासन

स्थापित कर दिया गया। यही नहीं क्रान्तिकारियों ने यूरोप में भी निरंकुश शासन को समाप्त कर प्रजातंत्र की स्थापना करने की भी घोषणा की।

इस क्रान्ति के सम्बन्ध में इंग्लैण्ड में दो प्रकार की विचारधारायें थीं– प्रथम विचारधारा क्रान्ति समर्थकों की थी। इनमें प्रधानमंत्री पिट, फाक्स, मेकनटोस, थामसपेन थे। इनका प्रमुख तर्क था कि, 'यदि किसी देश की जनता को अपना पूर्व से चला आ रहा शासन पसन्द नहीं है तो उसे अपने लिये दूसरा शासन चुनने का अधिकार है।' यह विचारधारा इंग्लैण्ड से मिलती-जुलती थी। इससे इंग्लैण्ड और फ्रांस के राजनैतिक सम्बन्ध मधुर होने की और परम्परागत शत्रुता समाप्त होने की संभावना थी। अतः यह क्रान्ति उसके सिद्धान्तों के समर्थक तथा पोषक थे। बल्कि चाहते थे कि इन सिद्धान्तों को इंग्लैण्ड में भी अपनाया जाये। इनसे प्रभावित होकर 1822 के पश्चात् पील, हसकिसन, केनिंग, ग्रे, ग्लेडस्टन आदि ने अनेक उदारवादी सुधार किये। चार्टिस्ट आन्दोलन भी उग्रता से बढ़ा। दूसरी विचार धारा क्रान्ति विरोधियों की थी। इनमें निरंकुश प्रतिक्रियावादियों का प्रभाव था परन्तु इनका प्रभाव 1815 के बाद घटता गया अथवा समय की धारा के अनुसार इन्हें भी उदारवादी बनना पड़ा। जैसे डिजरैली, पामरस्टर्न आदि।

4. **फ्रांस से संघर्ष और उदारता का आरम्भ–** प्रधानमंत्री विलियम पिट यद्यपि सुधारवादी था, परन्तु इंग्लैण्ड और फ्रांस में निरन्तर क्रान्तिकारी सेनाओं और नेपोलियन से संघर्ष चलते रहे। इसमें इंग्लैण्ड की अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न सर्वोपरि था। इन संघर्षों में इंग्लैण्ड की सेना, राजनीतिज्ञ, संसद सदस्य और जनता के धैर्य, एकता, सहिष्णुता की परीक्षा हो गई। इन्होंने परस्पर मतभेदों को अलग रखकर राष्ट्रीय संघर्ष में भाग लिया। प्रथम बार इंग्लैण्ड के संकीर्ण और उदार राजनीतिज्ञों को सामान्य जनता के योगदान के महत्व का पता चला तथा उनके असन्तोषों को दूर करने के लिये अनेक अधिनियम बने। यहीं से इंग्लैण्ड की 'लार्ड्स सरकार' ने 'राष्ट्रीय सरकार' का रूप धारण किया।

5. **इंग्लैण्ड में सुधारों की माँग–** संघर्ष काल में जब क्रान्ति ने उग्र रूप धारण किया तो पिट ने सभी सुधार कार्यक्रम समाप्त कर दिये और दमनकारी कानून बनाये। परन्तु नेपोलियन की पराजय के बाद सैनिक और आपात अवस्था भी समाप्त हो गई तथा इंग्लैण्ड के विचारकों ने सुधारों की माँग की, बेन्थम, एडवर्ड ग्रे, ग्लेडस्टन, पील थैलवैल आदि ने इंग्लैण्ड की जनता को संगठित और जाग्रत कर संसदीय सुधारों की माँग की। पील, हसकिसन ने निर्धन जनता को सस्ती वस्तुयें उपलब्ध करवाई। ग्रे और ग्लेडस्टन ने शिक्षा, धर्म तथा मानवीय न्याय से सम्बन्धित उदार और सहिष्णु कानून बनाये। 1832, 1867, 1869 के सुधार विल पारित कर दिये। वयस्क मताधिकार दिया गया तथा स्थानीय स्वराज्य भी इंग्लैण्ड में क्रमशः आरम्भ हुआ।

6. **आयरलैण्ड की समस्या और उदारता–** इंग्लैण्ड की स्वार्थपूर्ण, पक्षपातपूर्ण तथा धार्मिक कट्टरपन की नीतियों के कारण आयरलैण्ड में फ्रांस की क्रान्ति से प्रभावित होकर जबरदस्त क्रान्तिकारी आन्दोलन चले। आयरलैण्ड के क्रान्तिकारियों को फ्रांस ने मदद भी पहुँचाई। संघर्ष के लिये आंग्ल-आयरिश-यूनियन की भी स्थापना हुई। आयरलैण्ड इंग्लैण्ड का अत्यन्त निकटवर्ती राज्य था तथा उसके साथ यदि उदार नीति अपनाई गई होती तो वह इंग्लैण्ड

आयरलैण्ड का सयुक्त अथवा एकीकृत राज्य होता। आयरलैण्ड की जनता की आकांक्षा, धर्म, उनकी स्वतंत्रता के लिये संघर्षशीलता और फ्रांस की मदद ने इंग्लैण्ड के संसद सदस्यों को उदार नीति अपनाने को प्रेरित किया तथा संसद में आयरलैण्ड के प्रतिनिधि (पार्नेल) भी चुनाव जीतकर आने लगे। बहुसख्यक कैथोलिक आयरलैण्ड के साथ धर्म सहिष्णुता क्रमशः अपनाई गई।

7. **चार्टिस्ट आन्दोलन**– चार्टिस्ट आन्दोलन की उत्पत्ति यद्यपि प्रथम सुधार बिल के बाद 1840 में हुई। यह आन्दोलन यद्यपि निर्धन श्रमिकों का उग्र आन्दोलन था। इस आन्दोलन के सचालकों का विचार श्रमिकों को कुछ आर्थिक लाभ या सुविधा दिलाने का नहीं बल्कि श्रमिकों में राज्य शासन में, राज्य की नीति-निर्धारण में भाग दिलाना था। वास्तव में वह श्रमिक सरकार स्थापित करना चाहते थे। अतः लॉवेट, फिअरगस, ओकोनर आदि ने अपनी 6 माँगों पर देश की जनता के लाखों की सख्या में हस्ताक्षर करवाकर सरकार को चार्टर भेजे। इसके अनुसार (i) वयस्क मताधिकार दिया जाये। (ii) प्रतिवर्ष संसद के चुनाव हों। (iii) मतदान गुप्त हो। (iv) मताधिकार सम्पत्ति के आधार पर न हो। (v) संसद सदस्यों को वेतन मिलना चाहिये। (vi) समान जनसंख्या वाले निर्वाचन क्षेत्र बनाये जायें।

यह आन्दोलन 1848 तक चला। यद्यपि सरकार ने इस आन्दोलन को नैतिक-अनैतिक तरीकों से कुचल दिया। परन्तु उसने माँगों की सत्यता को जाना तथा अधिकांश माँगों को स्वीकार कर लिया गया। वयस्क मताधिकार की माँग पहले-पहले कॉरपोरेशन में फिर ससदीय चुनाव में, गुप्त मतदान की माँग 1872 में, समान चुनाव क्षेत्र की माँग 1885 में मान ली गई। सन् 1858 में सम्पत्ति की योग्यता समाप्त कर दी गई। संसद सदस्यों को वेतन भी दिया जाने लगा। चुनाव प्रतिवर्ष करवाने की माँग नहीं स्वीकार हुई। इस प्रकार चार्टिस्टों के बलिदान से उदार संसदीय सुधार हुये।

8. **प्रतिक्रियावाद की विदाई और उदार युग का आगमन**– इंग्लैण्ड 181 तक तो नेपोलियन से युद्धों में जूझता रहा तथा 1822 तक उसने अपने आपको स्थिर और संभालना आरम्भ किया। इसी समय 1822 में इंग्लैण्ड को पुनः शक्तिशाली, सम्पन्न तथा आन्तरिक विद्रोहों से छुटकारा दिलाने के लिये व्यापक बहस भी आरम्भ हुई। इसी कारण लिवरपूल के मंत्रि-मण्डल तीन अनुदार सदस्यों ने मतभेद के कारण त्यागपत्र दिया और उसके स्थान पर पील, हर्सकिशन और केनिंग मंत्रिमण्डल में आये और यहीं से उदारवादी कार्यों का तथा सामान्य जनता के हितो की पूर्ति के कार्य आरम्भ हुये। अतः इस घटना को ही 'प्रतिक्रियावाद की विदाई और उदारवादी युग का स्वागत कहा जाता है।'

निष्कर्ष– इंग्लैण्ड में ससदीय सुधार और स्वार्थपूर्ण उदारता का आरम्भ तो सामंतीय पतन और राष्ट्रीय राजतंत्रों के उदय से ही हो गया था। राजा और संसद के संघर्ष में संसद की विजय फिर शासनदार क्रान्ति ने संसद की सर्वोच्चता को स्थापित कर दिया। इंग्लैण्ड में श्रमिक आन्दोलन, संगठन, दंगे तथा इंग्लैण्ड सरकार की अनुदार नीतियों, अमेरिकी क्रान्ति, नेपोलियन की पराजय तथा मंत्रिमण्डल में तीन उदार मंत्रियों के आगमन तथा प्रबुद्ध लेखकों तथा विचारकों ने उदार युग को लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसमें राष्ट्रीय चेतना का भी सर्वाधिक दायित्व था।

प्रश्न–2. 1832 के सुधार अधिनियम की विवेचना कीजिये।

अथवा

1832 के सुधार अधिनियम के प्रावधानों तथा उसके महत्व का वर्णन कीजिये।

अथवा

1832 के सुधार अधिनियम की मुख्य धाराओं एवं उसके महत्व का वर्णन कीजिये।

अथवा

इंग्लैण्ड के राजनैतिक और संसदीय जीवन में 1832 के सुधार एक्ट के द्वारा कौन-कौन से महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये? समझाइये।

अथवा

सन् 1832 ई. के सुधार अधिनियम की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

अथवा

1832 के सुधार अधिनियम की प्रमुख व्यवस्थाओं एवं महत्व का वर्णन कीजिये।

उत्तर– इंग्लैण्ड में 1822 में सुधार युग का आरम्भ हो चुका था और चार्टिस्ट ससदीय सुधारों के लिये आन्दोलन कर रहे थे। 1830 में सुधार विरोधी टोरी पार्टी चुनाव में हार गई तथा ह्विगदल विजयी रहा दूसरी ओर उदारवादी विलियम चतुर्थ राजा बना। यूरोप में 1830 में पुनः प्रतिक्रियावाद के खिलाफ क्रांति की लहर चलने लगी। 1832 में उदारवादी लार्ड एडवर्ड ग्रे प्रधानमंत्री बना। इस प्रकार सुधार विधेयक के लिये उदारवादी प्रकृति के व्यक्ति राज्य के पदों पर आ चुके थे।

पूर्व दोष– 1832 के बिल के पूर्व इंग्लैण्ड की संसदीय-प्रणाली में प्रतिनिधित्व और मताधिकार सम्बन्धी अनेक दोष थे। प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में चुनाव क्षेत्रों का असमान विभाजन था। कहीं से एक तो कहीं से दो और तीन तक प्रतिनिधि भेजे जाते थे। कुछ स्थानों में जनसंख्या थी ही नहीं परन्तु वहां से प्रतिनिधि भेजे जाते थे। सामान्यतः प्रतिनिधि को भू-स्वामी भेजते थे। इसी प्रकार अनेक स्थानों में मताधिकार भू-स्वामी को थे जबकि कहीं सम्पत्ति-धारी नागरिकों को थे। मतदाताओं के लिये मतदान की योग्यतायें भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न थीं। अनेक भू-स्वामी मत को धन से खरीद लेते थे।

1830 के अधिनियम के प्रयास– संसदीय सुधारों के लिये बहुत पहले से मांगें उठती रहीं, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। एडवर्ड ग्रे ने एक मार्च, 1931 को एक बिल संसद में रखा जो सितम्बर में बहुमत से पारित हो गया परन्तु लार्ड सभा ने इसे अस्वीकार कर दिया। मार्च, 1832 में इसे पुनः पारित करवाया गया। अब लार्ड सभा की अस्वीकृति के कारण ग्रे ने त्यागपत्र देकर चुनाव लड़ा और 4 जून, 1832 को तीसरी बार लोकसभा ने इसे पुनः पारित कर दिया। अब राजा के हस्तक्षेप तथा ग्रे के द्वारा अनुशंसित व्यक्तियों को नवीन लार्ड्स बनाकर लार्ड् सभा में भी पारित करवा लिया।

सुधार बिल की धारायें– बिल की धाराओं में प्रतिनिधित्व सम्बन्धी धाराओं में 2,000 से कम जनसंख्या वाले निर्वाचन क्षेत्रों से 111 सदस्य भेजने का अधिकार समाप्त कर दिया गया। 4,000 से कम जनसंख्या वाले क्षेत्रों से एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया। काउन्टीज को 65, बड़े नगरों को 44, छोटे नगरों को 21 स्कॉटलैण्ड को 08 और आयरलैण्ड को 05 स्थान दिये गये।

मताधिकार सम्बन्धी धाराओं में सभी गृहस्वामी एवं किरायेदारों को मताधिकार दिया गया। काउन्टीज मे 2 पौण्ड लगान देने वालों को 10 पौण्ड लगान देने वाले काफी होल्डरों और पट्टेदारो को मताधिकार मिला। कुछ काउन्टीज में 50 पौण्ड प्रति वर्ष लगान देने वालों को और सभी क्षेत्रो मे केवल वयस्क पुरुषों को मताधिकार दिया गया। अन्य धाराओं में सूची बनाना, निर्वाचन क्षेत्रो का समान बंटवारा और निर्वाचन दो दिन में समाप्त करने की धारायें प्रमुख थी।

अधिनियम का महत्व और परिणाम– यद्यपि सुधार बिल क्रांतिकारी नहीं था, परन्तु वयस्क पुरुषों को मताधिकार, समान निर्वाचन क्षेत्रों का बंटवारा बहुत अधिक प्रतिनिधित्व और मताधिकारों में कमी महत्वपूर्ण सुधार थे। इससे भ्रष्टाचार कम हुआ, मताधिकार का विस्तार हुआ, मध्यम वर्ग का प्रभाव बढ़ा। इसका सबसे अधिक प्रभाव भावी सुधारों को आरम्भ करने के लिये था। सुधार बिल का अधिनियम बनाना जनता की लार्ड्स और राजा पर विजय थी तथा लोकतंत्र की ओर बढ़ने का एक अगला कदम था। इस दृष्टि से यह एक सफल अधिनियम था।

अधिनियम के दोष– इस अधिनियम को पारित करवाने में सामान्य जनता ने सहयोग दिया था परन्तु सम्पत्ति, लगान और किराये की योग्यताओं के कारण उन्हें मताधिकार नहीं मिला क्योंकि यह योग्यतायें मध्यम वर्ग में थीं। भू-स्वामियों का प्रभाव अभी भी था अतः किसान और श्रमिकों में भारी असन्तोष था तथा उन्होंने संसदीय सुधारों के लिये पुनः आन्दोलन और संघर्ष किये और इसके पश्चात् सुधार बिल संसद में रखे गये।

अधिनियम के कारण परिवर्तन– 1832 के निर्वाचन ने सरकार को विवश कर दिया कि वह जनता की मांगों को समझे। प्रथम बार लार्ड्स को विवश होकर इसे स्वीकार करना पड़ा। राजा ने भी समझ लिया कि इसे स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। अभी तक सम्पूर्ण शक्ति और अधिकार लार्ड्स, जमींदार या भू-स्वामियों को ही थे परन्तु अब यह मध्यम वर्गियों को भी मिले जिससे संसद में कानूनों का निर्माण सामान्य जनता और मध्यम वर्ग के हितों में होने लगा। लार्ड्स की आर्थिक दशाओं में भी परिवर्तन हुये। करारोपण में सामान्य जनता का ध्यान रखा जाने लगा। राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास हुआ तथा स्थानीय शासन, निर्वाचन और उत्तरदायित्व जनप्रतिनिधियों को देने के कार्य हुये। सामान्य जनता के अधिकारों तथा राज्य की शक्तियों के विभाजन का सिद्धान्त प्रकाश में आया जिससे संवैधानिक शासन को बल मिला।

निष्कर्ष– 1832 का सुधार बिल इंग्लैण्ड की जनता के स्वभाव के अनुकूल था। यद्यपि इसमें अनेक दोष थे फिर भी इसकी दिशा जनता के सार्वभौमत्व और पूर्ण प्रजातंत्र की ओर थी। इस बिल के कारण इंग्लैण्ड में हिंसक क्रांति नहीं हुई तथा क्रमशः सुधारों को बल मिला। संक्षेप में बिल उदारवाद की महत्वपूर्ण विजय थी।

प्रश्न–3. चार्टिस्ट आन्दोलन के कारण व परिणामों की समीक्षा कीजिये।

अथवा

चार्टिस्टों की क्या मांगें थीं? यह आन्दोलन इंग्लैण्ड में क्यों असफल रहा?

अथवा

चार्टिस्ट आन्दोलन के क्या कारण थे? इनकी प्रमुख मांगें क्या थीं? स्पष्ट कीजिये।

अथवा

इंग्लैण्ड में चार्टिस्ट आन्दोलन के कारणों, मांगों और उनके परिणामों की विवेचना कीजिये।

उत्तर– इंग्लैण्ड में संसदीय सुधारों की मांग ओवेन, टाम्सन और हसकिसन आदि करते चले आ रहे थे। अनेक ट्रेड-यूनियन आन्दोलनों के प्रत्यक्ष अनुभव और निराशाजनक परिणामों के कारण श्रमिकों में यह धारणा बनी कि जब तक संसदीय व्यवस्था में सुधार नहीं होगा तब तक श्रमिक और सामान्य नागरिकों का कल्याण नहीं होगा। क्योंकि देश के कानून, पुलिस, न्याय और प्रशासन पर लार्ड्स अमीरों का कब्जा था। अतः श्रमिक वर्ग ने एक आन्दोलन का आरम्भ किया। जिसे **'चार्टिस्ट आन्दोलन'** कहा जाता है।

चार्टिस्ट आन्दोलन का अर्थ– श्रमिक नेताओं ने राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक समानता के लिये अपनी मांगें लिखित रूप में संसद के सम्मुख रखीं तथा उन्हें स्वीकार करवाने के लिये एक उग्र आन्दोलन का भी आरम्भ किया। उनकी मांगें पूर्ण रूप से राजनैतिक और संसदीय सुधारों से सम्बन्धित थीं। जिसके द्वारा वह एक सामाजिक क्रांति करना चाहते थे।

चार्टिस्ट आन्दोलन की प्रमुख मांगें– इस आन्दोलन की प्रमुख 6 मांगें थीं। जिन्हें 1838 में लन्दन मजदूर संघ ने प्रकाशित किया–

(1) संसद का वार्षिक चुनाव (2) गुप्त मतदान के द्वारा निर्वाचन (3) वयस्क स्त्री-पुरुषों को मताधिकार (4) मताधिकार के लिये सम्पत्ति की योग्यता की समाप्ति (5) संसद सदस्यों को भत्ता और वेतन देना (6) समान चुनाव क्षेत्र बनाना।

चार्टिस्ट आन्दोलन के कारण– चार्टिस्ट आन्दोलन श्रमिकों की पुरानी असफलता और निराशा से उत्पन्न एक आन्दोलन था जिसे फ्रांस की 1830 की क्रांति ने प्रेरणा दी थी। इसके निम्नलिखित प्रमुख कारण थे–

चार्टिस्ट आन्दोलन के कारण
1. औद्योगिक क्रांति
2. श्रमिक आन्दोलन और समाजवाद
3. गरीब कानून
4. अनाज कानून
5. 1832 के अधिनियम से निराशा

1. **औद्योगिक क्रांति–** औद्योगिक क्रांति के कारण श्रमिकों का एकत्रीकरण, उनकी आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक समस्यायें, पूँजीपतियों के शोषण और उनसे संघर्ष, पूँजीपतियों के घमण्ड और हठधर्मी मशीनीकरण और बेकारी आदि बढ़ने लगे। अतः श्रमिकों में सामूहिक या वर्गीय चेतना जागी। उन्होंने अपनी शक्ति को पहचाना तथा अपने संख्या बल के आधार पर **'चार्टिस्ट आन्दोलन'** को आरम्भ किया।
2. **श्रमिक आन्दोलन और समाजवाद–** अनेक ट्रेड यूनियन आन्दोलनों ने श्रमिकों को संगठित किया उन्हें संघर्ष का रास्ता बताया तथा प्रशासन की शिक्षा दी और सफलता का पूर्ण आश्वासन दिलाया। समाजवाद ने पूँजीवाद का विकल्प प्रस्तुत कर नवीन राज्य-प्रणाली और उससे श्रमिकों के हितों की गारण्टी दी। अतः श्रमिकों ने **'चार्टिस्ट आन्दोलन'** के द्वारा राज्य की शक्ति पर अधिकार करके सार्वजनिक सुधार करने का प्रयत्न किया।
3. **गरीब कानून–** इंग्लैण्ड में बहुत अधिक भिखारी थे तथा इनकी दशा बहुत खराब थी। अतः आर्थिक तंगी में यह बहुत अपराध करते थे। इनके लिये एलिजाबेथ ने

'निर्धन कानून' बनाया। परन्तु यह उनकी भोजन, वस्त्र, आवास और शिक्षा एवं विकास की समस्या को हल करने में पूर्णरूप से असफल रहा। अतः यह निर्धन चार्टिस्टों के साथ मिलकर आन्दोलन करने लगे।

4. **अनाज कानून**– आयरलैण्ड और इंग्लैण्ड में अनाज उत्पादन पर जमींदारों का नियंत्रण था। वे सस्ते मजदूर रख कर भारी उत्पादन कर मुनाफा कमाते थे। अनाज उत्पन्न करने वाला किसान भूखा रहता था। अकाल होने पर भी यह जमींदार अनाज का भाव बढ़ा देते थे। अनाज का भाव गिरे नहीं इसलिये संसद से ऐसा कानून पारित कराया। उन्होंने कभी किसानों की गरीबी, भुखमरी, बेकारी और कम मजदूरी का ध्यान नहीं रखा। इनके साथ-साथ श्रमिक और मध्यम वर्ग भी इससे परेशान थे अतः उन्होंने चार्टिस्टों का साथ दिया।

5. **1832 के अधिनियम से निराशा**– 1832 में सुधार हुये परन्तु वे पूर्ण रूप से अपर्याप्त थे। इससे श्रमिकों, किसानों और गरीबों को कोई लाभ नहीं हुआ। अतः उन्होंने आन्दोलन आरम्भ किया।

चार्टिस्ट आन्दोलन की घटनायें– लन्दन मजदूर संघ ने प्रधानमंत्री रसल के काल में (1832 में) चार्टिस्ट मांगों को समाचार-पत्र में दिया। इसके लिये इंग्लैण्ड में नैतिक और हिंसक आन्दोलन हुये। थामस ऑटबुड ने प्रार्थना पत्र पर 10 लाख हस्ताक्षर करवा कर संसद को सौंपा। परन्तु सरकार ने इन्हें अस्वीकार कर इस पर अनेक आक्षेप लगाये।

चार्टर पर पुनः 30 लाख हस्ताक्षर करवाकर 1842 में संसद को दिया गया। अब इसके पक्ष में श्रमिकों ने हड़तालें एवं प्रदर्शन किये सरकार ने भी दमन-चक्र चलाया परन्तु इसका अंत नहीं हुआ। यूरोप में 1848 की क्रांति से प्रभावित होकर 1848 में 50 लाख हस्ताक्षरों के साथ चार्टर पुनः तीसरी बार संसद को दिया गया।

चार्टिस्टों का दमन– जब एडवर्ड ग्रे प्रधानमंत्री बना तो उसने चार्टिस्टों को बदनाम करके उनके आंदोलन को कुचलने का सफल प्रयास किया। उन्हें बदनाम करने के लिये (1) हस्ताक्षरों को दोहराने (2) मृत व्यक्तियों के हस्ताक्षर करने (3) बाहर गये व्यक्तियों के हस्ताक्षर करने (4) 20 हजार हस्ताक्षर जाली होने के आरोप लगाये तथा पुलिस और सैनिक बल से उनका दमन किया।

चार्टिस्टों की असफलता– इनका आन्दोलन 1848 में समाप्त हो गया। इसके दमन में उदारवादी रसल और ग्रे ने पूरी तरह निर्दयता तथा कठोरता का पालन किया परन्तु आन्दोलन अपने आन्तरिक कारणों से भी समाप्त हो गया। अतः इसकी असफलता के लिये (1) चार्टिस्टों में सुयोग्य नेताओं का अभाव (2) साधनों के अभाव (3) सरकार द्वारा इनका दमन और बदनामी करने (4) और अपेक्षित जनमत के अभाव आदि प्रमुख कारण उत्तरदायी थे।

प्रभाव, परिणाम और महत्व– चार्टिस्ट आन्दोलन को कूटनीति, हिंसा और पुलिस शक्ति से दबा दिया गया। परन्तु वह पतन के बाद भी अपने प्रभाव और महत्व को स्थापित कर गया। यह इंग्लैण्ड और यूरोप में अन्य राजनीतिक और सामाजिक सुधारों की प्रेरणा का आधार बन गया जो कि विभिन्न आन्दोलनों में वह प्रगट होने लगा।

सार्वजनिक मताधिकार, स्त्री-पुरुषों को मताधिकार, गुप्त मतदान, सम्पत्ति की योग्यता की समाप्ति, वयस्क मताधिकार, समान निर्वाचन क्षेत्र, संसद सदस्यों को वेतन आदि की मांग न केवल इंग्लैण्ड में बल्कि यूरोप में भी लागू की गईं। जहां इंग्लैण्ड में लार्ड्स का प्रभाव घटता गया वहीं यूरोप में भी कुलीनों का प्रभाव घट गया। सामान्य वर्ग और श्रमिक वर्ग संगठित हुये, राजनीति में उनका प्रभाव बढ़ा और राष्ट्रीय हितों में सरकार चलने लगी एवं प्रजातंत्र, स्वतंत्र संविधान और निष्पक्ष न्यायपालिका का महत्व बढ़ गया। लोक सभा का लार्ड सभा से अधिक महत्व हो गया। इसके कारण सरकार को कार्न लॉ 1839 में समाप्त करना पड़ा इसके कारण टोरी दल का पतन और ह्विग दल की उन्नति हुई। इंग्लैण्ड के सामाजिक जीवन, चिंतन, साहित्य और समस्याओं पर भी इसका प्रभाव हुआ तथा श्रमिक शक्ति को सम्पूर्ण यूरोप में मान्यता मिलने लगी।

निष्कर्ष– चार्टिस्टों की मांगें प्रजातंत्रवादी और निरंकुशता विरोधी थीं। जिन्होंने यूरोप पर राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक रूप में दूरगामी प्रभाव डाले। इनके पतन के बाद भी उनकी मांगों (एक छोड़ कर) को स्वीकार कर लिया गया।

प्रश्न–4. नेपोलियन तृतीय के कार्यों एवं उपलब्धियों का वर्णन कीजिये।

अथवा

नेपोलियन तृतीय की गृहनीति पर प्रकाश डालिये।

अथवा

नेपोलियन तृतीय का परिचय दीजिये। वह फ्रांस का सम्राट कैसे बना? उसके शासन काल का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

उत्तर– फ्रांस में क्रांतियों के द्वारा सत्ता परिवर्तन की परम्परा चल रही थी। 1789 में फ्रांस की क्रांति के परिणामस्वरूप विशेषाधिकारी वर्ग और निरंकुश राजतंत्र की समाप्ति हुई। परन्तु क्रांति के उद्देश्य पूरे नहीं हुये। नेपोलियन बोनापार्ट ने क्रांति के तत्वों को समाप्त कर दिया। फ्रांस में पुनः निरंकुश प्राचीन गणतंत्र स्थापित हुआ परन्तु 1830 में पुनः क्रांति हुई और लुई फिलिप शासक बना जिसे 1848 की क्रांति ने पदच्युत कर दिया। इस प्रकार क्रांतियों के द्वारा परिवर्तन फ्रांस की ऐतिहासिक घटनायें थीं। इसी क्रम में लुई नेपोलियन या नेपोलियन तृतीय भी फ्रांस का सम्राट 1848 की क्रांति के समय बना।

नेपोलियन तृतीय का परिचय– लुई नेपोलियन जो बाद में नेपोलियन तृतीय के नाम से सम्राट बना, लुई का पुत्र था। लुई, नेपोलियन बोनापार्ट का छोटा भाई था। इसको नेपोलियन बोनापार्ट ने हॉलैण्ड का राजा बनाया था। बोनापार्ट वंश का लुई नेपोलियन एकमात्र जीवित तथा याद दिलाने वाला व्यक्ति था। यही फ्रांस का सम्राट बनने का महत्वाकांक्षी था। लुई नेपोलियन 1815 में अपनी मां के साथ स्विट्जरलैण्ड में जीवन चलाते हुये अवसर की प्रतीक्षा में था।

उत्कर्ष– (1) **नेपोलियन बोनापार्ट की लोकप्रियता एक वरदान**– लुई नेपोलियन भलीभांति जानता था कि फ्रांस की जनता में नेपोलियन बोनापार्ट अभी भी प्रिय, गौरवशाली व्यक्ति था। वह बोनापार्ट को आतंक और विशेषाधिकारी वर्ग के शासन से मुक्ति दिलाने वाला, फ्रांस को विजय और प्रतिष्ठा दिलाने वाला तथा कुशल प्रशासक समझती थी तथा उसके दोष और पराजय को उसने गौण (महत्वहीन) मान लिया था। फ्रांस की जनता नेपोलियन बोनापार्ट को

एक नाम और एक व्यक्ति नहीं समझती थी बल्कि एक कार्यक्रम और संकटों में मुक्तिदाता तथा अविकल्पनीय मानती थी। प्रख्यात, कवि जैसे लामार्टिन, कवि और उपन्यासकार विक्टर ह्यूगो, इतिहासकार की रचनायें अभी भी फ्रांसीसी जनता और लुई को आन्दोलित करती थीं।

लुई नेपोलियन ने बोनापार्ट की लोकप्रियता तथा उसके प्रति जनभावनाओं का उपयोग अपने स्वार्थ और महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये करने का निश्चय किया। उसने स्वयं को बोनापार्ट वंश का रक्त सम्बन्धी बताया। उसने नेपोलियन बोनापार्ट पर एक पुस्तक लिखकर स्वयं को नेपोलियन बोनापार्ट के समान राष्ट्रीयता, धर्म, शान्ति तथा जनता की प्रभुसत्ता का संरक्षक बताया। लुई नेपोलियन ने सेन्टहेलना से बोनापार्ट के अवशेष मंगवाने के लिये सफल प्रयत्न किया। इससे जनता में उसकी लोकप्रियता बढ़ी।

(2) **अवसर प्राप्ति–** लुई नेपोलियन ने भी बोनापार्ट के समान क्रांति और विचारों का प्रतिपादन कर अवसर प्राप्ति के प्रयत्न किये। 1830 की क्रांति के समय उसे सफलता दिखाई दी। उसने इटली, जर्मनी, पोलैण्ड आदि देशों से सम्बन्ध स्थापित किये तथा चर्चायें कीं। बोनापार्ट के समर्थक व्यक्तियों, नेताओं और संगठनों से सम्बन्ध स्थापित किये। इटली में कार्बोनरी सम्मेलन में भाग लेने गया, जर्मनी के क्रांतिकारी भी उसके समर्थक बने। फ्रांस में भी धनी, श्रमिक, किसान आदि उसके समर्थक बन गये। परन्तु अभी भी परिस्थितियां उसके प्रतिकूल थीं। अतः 1830 में शांत रहा और योग्य अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। यह अवसर उसे 1848 की क्रांति के समय मिला।

(3) **1830 और 1848 की क्रांतियाँ–** फ्रांस 1789 की क्रांति, आतंक राज्य डायरेक्टरी शासन, संयुक्त व्यवस्था और पुनः बूर्बन वंश के कालों में अपने विकास, गौरव और शक्ति के पतन से गुजर रहा था। बीच में नेपोलियन युग में शक्ति, प्रतिष्ठा और सुव्यवस्था का काल जनता ने देखा था। परन्तु 1830 और 1848 की क्रांतियों के समय फ्रांस का आन्तरिक शासन, धनाभाव और शक्ति का खोखलापन अत्यधिक बढ़ गया। लुई फिलिप इसे सम्हालने में असफल रहा। औद्योगिक क्रांति की उत्पत्ति के कारण समाजवादियों का विरोध भी बढ़ रहा था। क्रांतिकाल में पुनः निरंकुशता और राजतंत्र के विरोध में आन्दोलन हुये। लुई नेपोलियन ने लुई फिलिप की गिरती साख और निर्बलता का उपयोग अपनी शक्ति बढ़ाने में किया।

लुई नेपोलियन के बन्दीकरण का लाभ– अपने प्रतिद्वन्दी नेपोलियन को बन्दी बनाया इसका पूरा लाभ उठाते हुये लुई ने अपने को एक हीरो के रूप में प्रस्तुत किया। इसका परिणाम यह हुआ कि जनता ने लुई फिलिप को पदच्युत करके लुई नेपोलियन को मुक्त करवा लिया।

लोकप्रिय सिद्धान्तों का अनुसरण– नेपोलियन बोनापार्ट ने अपने राज्यारोहण के समय जनता को आश्वासन दिया था कि वह क्रांति का रोमांस बन्द करेगा तथा जन–इच्छा के अनुसार शासन चला कर उसकी प्रभुसत्ता का आदर करेगा। उसने क्रांति के सिद्धान्तों का पालन करने का भी वचन दिया। लुई नेपोलियन ने भी सामान्य जनमत को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये नेपोलियन के सिद्धान्तों के साथ चार अपने भी सिद्धान्त जोड़ दिये। नेपोलियन बोनापार्ट के चार सिद्धान्त थे– (1) देश की व्यवस्था (2) शक्तिशाली सत्ता (3) धर्म और जनकल्याण (4) विदेशों में राष्ट्रीय गौरव। इसमें लुई नेपोलियन ने जोड़े (1) गरिमा

(2) कार्यकुशलता (3) सुधार (4) वियेना संधि का उत्तर। इसके साथ ही लुई नेपोलियन स्वयं को गणतंत्रवादी बताता था इस कारण गणतंत्र के समर्थकों का उसे समर्थन भी मिलने लगा।

राष्ट्रपति और सम्राट पद पर आसीन नेपोलियन तृतीय– लुई नेपोलियन ने फ्रांस में पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त कर ली तथा लुई फिलिप अत्यधिक बदनाम हो गया। लुई नेपोलियन ने फ्रांस की राजनीति पर ध्यान दिया। उसने नवीन संविधान के निर्माण का प्रस्ताव रखा जिसे भारी बहुमत से जनता ने पारित कर दिया। इससे उसकी शक्ति में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। कुछ प्रतीक्षा के बाद उसने 2 दिसम्बर, 1852 को गणतंत्र आवरण हटाकर वह नेपोलियन तृतीय के रूप में फ्रांस का निरंकुश सम्राट बन गया।

नेपोलियन तृतीय का राज्य– नेपोलियन बोनापार्ट का पुत्र नेपोलियन द्वितीय कभी भी फ्रांस का सम्राट नहीं बन पाया। परन्तु नेपोलियन बोनापार्ट की परम्परा को जीवित रखने के लिये और अपने साम्राज्य की स्थापना के लिये उसके नाम और प्रतिष्ठा का उपयोग कर उसने अपना शासन आरम्भ किया। राज्य और शासन के संचालन में नेपोलियन बोनापार्ट की प्रतिभा तथा योग्यता नेपोलियन तृतीय में नहीं थी। फिर भी उसने अपने लोकप्रिय शासक और यूरोप का महान पथ–दर्शक बनने के स्वप्नों को साकार करने का प्रयत्न किया।

गृहनीति और शासन– नेपोलियन तृतीय नेपोलियन बोनापार्ट के अधूरे कार्यों को पूरा करना चाहता था। वह समझता था कि गृहनीति और शासन सुधारों को कार्यान्वित करेगा तो जनता निरंकुशता और स्वतंत्रता हरण को भूल जायेगी। उसने जनता को वचन दिया कि जैसे ही फ्रांस की स्थिति में सुधार होगा वह उसे स्वतंत्रता प्रदान कर देगा। पर यह एक दिवास्वप्न था। ऐसा पहले किसी तानाशाह ने नहीं किया और न ही नेपोलियन बोनापार्ट ने किया। नेपोलियन तृतीय भी उसी दिशा में उसी राह पर चल रहा था।

आर्थिक सुधार की योजना– क्रांतियों और संघर्षों में फ्रांस की आर्थिक दशा बहुत खराब हो चुकी थी। अतः उसने राज्यकोष तथा जनता की समृद्धि के लिये अनेक आर्थिक सुधार कार्य आरम्भ किये। उसने व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिये आवागमन, लघु एवं विशाल उद्योगों की दशा को सुधारा। मार्गों के बनने, उनकी सुरक्षा और सुविधा के कारण औद्योगिक और व्यापारिक माल का आदान–प्रदान, क्रय–विक्रय बढ़ा। इसके फलस्वरूप उद्योगों की स्थापना, विस्तार उन्नत हुये। बेकारी दूर होने लगी। पूँजी निर्माण की ओर जनता का ध्यान गया अतः बैंकों की संख्या और साख में वृद्धि हुई। कृषि और वनक्षेत्रों को और अधिक उपयोगी तथा विस्तृत बनाया गया। वनों की वनस्पतियों की बिक्री से राज्य की आय बढ़ी। उद्यान, बगीचों का निर्माण हुआ। कृषि उत्पादन भी बढ़ने लगे। दलदली भूमि को सुधारा गया।

नेपोलियन तृतीय ने 1885 में एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी का आयोजन किया। इससे एक ओर बढ़ती समृद्धि का प्रदर्शन किया गया तथा इस समृद्धि के दाता नेपोलियन तृतीय के शासन की उपयोगिता भी सिद्ध हुई। इस प्रदर्शनी में फ्रांस की उन्नत वस्तुयें रखी गईं तथा विदेशों में उनकी मांग भी बढ़ी। राज्य और जनता की समृद्धि बढ़ने से पेरिस का सौन्दर्यीकरण किया गया। इसके कारण चित्रकारों, वास्तुकारों, टेक्नीशियनों और कारीगरों को रोजगार के साथ काम भी मिले।

जन–हितैषी कार्य– श्रमिकों की सुरक्षा, स्वास्थ और उन्नति के लिये अनेक कानून पारित किये। सहकारी समितियों और श्रम संघों का निर्माण किया। श्रमिकों के अधिकारों को अविछिन्न बनाने के लिये उन्हें हड़ताल और प्रदर्शन के अधिकार दिये। पूँजीपतियों के अत्याचारों को रोकने के लिये भी नियम बने। मुआवजे, बीमा और सरकारी अनुदान की व्यवस्था श्रमिकों के साथ घटी दुर्घटनाओं के लिये की गई। इन सुधारों से नेपोलियन तृतीय ने जोसेफ द्वितीय और फ्रेडरिक महान की याद को ताजा कर दिया। फ्रांस में 1789 की क्रांति से दासप्रथा का अन्त हुआ और नेपोलियन तृतीय की विजय से फ्रांस की निर्धनता दूर हुई। अतः फ्रांस में नेपोलियन तृतीय को श्रमिकों का सम्राट कहा जाने लगा।

सम्राट और संविधान में निरंकुशता– नेपोलियन बोनापार्ट का वंशज उसके समान ही निरंकुश, अधिकार सम्पन्न और सर्वशक्तिशाली सम्राट बनना चाहता था। उसने अपनी शक्ति वृद्धि का कोई भी अवसर व्यर्थ नहीं जाने दिया और संविधान का उपयोग और निर्माण भी अपनी सर्वोच्चता या संप्रभुता की वृद्धि के लिये किया। नेपोलियन तृतीय ने भी संविधान का निर्माण अपनी निरंकुशता को स्थापित करने के लिये किया। उसने 2 दिसम्बर, 1852 में ही व्यवस्थापिका को भंग कर समाजवादियों और गणतंत्रवादियों का दमन किया।

निष्कर्ष– नेपोलियन तृतीय का उत्कर्ष, उसकी शक्ति वृद्धि, लोकप्रियता, शासन के मूल सिद्धान्त नेपोलियन बोनापार्ट के ही थे। उसने उसी के मार्ग और तरीके अपनाकर सम्राट का पद पाया तथा गृहनीति में अनेक आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक सुधार करके अच्छी लोकप्रियता प्राप्त की तथा श्रमिक सम्राट कहलाया। परन्तु संविधान का निर्माण कर तथा व्यवस्थापिका को भंग कर और विरोधियों का दमन कर वह फ्रांस का बोनापार्ट के समान ही पूर्ण निरंकुश और दमन नीति से वह उतना ही बदनाम भी हो गया जितना सुधारों से लोकप्रिय हुआ था। वास्तव में नेपोलियन तृतीय में अपने समय की नवीन परिस्थिति को समझने की और उसके अनुरूप कार्य करने की बोनापार्ट के समान प्रतिभा और योग्यता नहीं थी। फिर भी इसकी गृहनीति फ्रांस के लिये अत्यन्त लाभप्रद थी।

प्रश्न–5. नेपोलियन की विदेशनीति की समीक्षा कीजिये।

अथवा

'नेपोलियन तृतीय का पतन उसकी विदेशनीति के कारण हुआ।' वर्णन कीजिये।

अथवा

'नेपोलियन तृतीय में नेपोलियन प्रथम के जैसी न तो सैनिक कुशलता थी और न यूरोप की राजनीति को समझने की प्रतिभा थी।' विदेशनीति के प्रकाश में इस कथन को स्पष्ट कीजिये।

अथवा

'नेपोलियन तृतीय की विदेशनीति अदूरदर्शी और अन्तर्विरोधी थी।' इस कथन की विवेचना कीजिये।

उत्तर– नेपोलियन तृतीय ने राष्ट्रपति और फिर 1852 में सम्राट बनने के बाद अपनी गृहनीति से जनता में अपनी लोकप्रियता और फ्रांस में समृद्धि की वृद्धि की। अब उसने नेपोलियन बोनापार्ट के समान विदेशों में विजय, गौरव और पूर्व की पराजयों के कलंक को धोकर यूरोप में अपनी प्रधानता स्थापित करने के प्रयत्न आरम्भ किये।

पोप की रक्षा– नेपोलियन तृतीय के सत्तारुढ़ होने के समय इटली में मैजनी के नेतृत्व में राष्ट्रवादी आन्दोलन विदेशी दासता को समाप्त करने के लिये तथा इटली के एकीकरण के लिये चल रहा था। यह आन्दोलन एकीकरण विरोधी पोप के राज्य रोम तक पहुँच गया तथा उसने उग्र रूप धारण कर लिया। पोप को अपनी जान बचाकर रोम से भागना पड़ा।

पोलैण्ड में अन्तर्विरोधी नीति– पोलैण्ड भी एक कैथोलिक देश था तथा कैथोलिक धर्म के नाम पर उसने इटली में हस्तक्षेप किया था। पोलैण्ड में 18वीं शताब्दी में पड़ौसी राज्यों ने उसकी भूमि पर अधिकार कर लिया था तथा पोलैण्ड के नागरिकों पर अत्याचार कर रहे थे। अतः उन्होंने 1863 ई. में उनके खिलाफ प्रतिक्रिया और संघर्ष किये। उन्हें आशा थी कि नेपोलियन तृतीय यहां कैथोलिकों राष्ट्रवादियों की मदद करेगा। उनका यह संघर्ष पोप के खिलाफ भी नहीं था। नेपोलियन तृतीय रूस विरोधी था तथा पोल नागरिक भी रूस के कट्टर विरोधी थे। अतः उन्हें नेपोलियन तृतीय की मदद की आशा थी। परन्तु नेपोलियन ने अपने ही विचार और सिद्धान्तों को तोड़ते हुये पोलैण्ड की आशा को भी तोड़ दिया और कोई सहायता नहीं दी। पोलैण्ड को सहायता इसलिये भी नहीं दी कि इससे प्रशा और आस्ट्रिया नाराज हो जाते क्योंकि उन्होंने भी उसकी भूमि को हथिया रखा था।

क्रीमिया में व्यर्थ युद्ध– यद्यपि फ्रांस या नेपोलियन तृतीय का यहां कोई हित सम्बन्ध या हितों को हानि नहीं थी फिर भी नेपोलियन तृतीय रूस को पराजित कर नेपोलियन बोनापार्ट की मास्को अभियान में पराजय का बदला लेना चाहता था तथा जनता को प्रभावित करना चाहता था। अतः फ्रांस ने इंग्लैण्ड, इटली और टर्की के साथ क्रीमिया में रूस को पराजित किया तथा चारों में पेरिस में 1856 में संधि वार्ता हुई। इसमें किसी भी पक्ष को कोई बड़ा आर्थिक लाभ न मिलने से यह युद्ध व्यर्थ सिद्ध हुआ।

इटली में विश्वासघात– नेपोलियन तृतीय ने 1863 में इटली के राष्ट्रवादियों के विश्वास को तोड़कर पोप को पदासीन किया था। क्रीमिया युद्ध के बाद पेरिस सम्मेलन में इटली के प्रधानमंत्री कैबूर ने नेपोलियन तृतीय से वार्ता की थी। उसी से उत्साहित होकर आस्ट्रिया के हेप्सवर्ग वंश से घृणा करने वाले नेपोलियन तृतीय से आस्ट्रिया पर आक्रमण में मदद करने का आश्वासन मांगा। इसके लिये दोनों प्लॉम्बियर्स नामक स्थान पर मिले और समझौता किया। कैबूर के लिये यह समझौता एक विवशता थी। क्योंकि आस्ट्रिया के खिलाफ उसे बाहरी मदद चाहिये थी परन्तु नेपोलियन तृतीय के लिये यह एक सौदेबाजी थी। जब उसने समझौता किया तो ध्यान नहीं दिया कि पीडमाण्ट को पोप के राज्य के भाग भी मिलेंगे। अतः उसे यह समझौता करना ही नहीं चाहिये था। राष्ट्रवादियों की सहायता पोप के प्रति विश्वासघात होती और पोप का पक्ष लेना राष्ट्रवादियों के प्रति विश्वासघात होता।

परन्तु नेपोलियन तृतीय इस संधि, सहायता तथा युद्ध के द्वारा 1815 के वियेना के आदेश को कचरा पेटी में डालना चाहता था। राष्ट्रवादियों की सहायता का नाटक और पोप के सम्मान का भी प्रदर्शन इसके द्वारा करना चाहता था और जनता में इटली में अपनी विजय और प्राप्ति को प्रदर्शित कर लोकप्रियता भी प्राप्त करना चाहता था। दोनों ने मिलकर आस्ट्रिया को पराजित कर दिया। उसकी पराजय के साथ ही अस्थिर, अदूरदर्शी नेपोलियन तृतीय को पता चला कि इटली के एकीकरण से शक्तिशाली राष्ट्र का जन्म होगा। इससे पोप भी असंतुष्ट

होगा और प्रदेश भी छिन जायेगा। फ्रांस में भी कैथोलिकों का विरोध सहना पड़ेगा। अतः उसने कैवूर (इटली) का साथ छोड़ कर आस्ट्रिया से विलाफ्रेंका की संधि कर ली। इस विश्वासघात के बाद भी नेपोलियन तृतीय ने प्लॉम्बियर्स में निर्धारित नीस और सेवाय पर कब्जा कर लिया।

इससे इटली की जनता, कैवूर और देशभक्त नेपोलियन तृतीय से अत्यधिक असंतुष्ट हुये। तथा अवसर मिलते ही बदला लेने का विचार करने लगे। फ्रांस के कैथोलिक और पोप इटली को मदद देने से पहले से ही असंतुष्ट थे। उधर क्रोधित गैराबाल्डी ने रोम पर आक्रमण कर दिया तब फ्रांस ने पोप की रक्षा की और अपनी सेना रोम में रखनी पड़ी। परन्तु प्रशा-फ्रांस युद्ध के समय सेना वापिस बुलाना पड़ी।

मैक्सिको से अपमानजनक निवर्तन– मैक्सिको एक स्वतंत्र राज्य था जो स्पेन की दासता से मुक्त हुआ था। उसकी आर्थिक दशा सुधारने के लिये इंग्लैण्ड, फ्रांस और स्पेन ने उसे कर्ज दे रखा था। 1861 ई. में मैक्सिको के नवीन शासक वेनितो ज्वारेज ने कर्ज भुगतान से मना कर दिया। अतः तीनों ने उस पर आक्रमण कर दिया तथा बेनितो ने उन्हें ब्याज सहित कर्ज भुगतान का आश्वासन दिया। इसके पश्चात् इंग्लैण्ड और स्पेन की सेनायें वापिस चली गईं। परन्तु नेपोलियन तृतीय ने अपनी सेनायें वापिस नहीं बुलाईं। उसने संघर्ष किया और 1863 ई. में विजय प्राप्त कर आस्ट्रियन सम्राट फ्रांसिस जोसेफ के भाई मैक्सिमिलियन को मैक्सिको का राजा बनाया। इससे वह फ्रांस के साथ-साथ यूरोप के कैथोलिकों को प्रसन्न करना चाहता था परन्तु परिणाम उसके विचारों के बिल्कुल विपरीत हुआ और मैक्सिमिलियन की हत्या कर दी गई।

जर्मनी में आत्म विनाश– नेपोलियन तृतीय जब फ्रांस का सम्राट था उसी समय प्रशा में बिस्मार्क और फ्रेडरिक विलियम प्रशा के नेतृत्व में सम्पूर्ण जर्मनी के एकीकरण की योजना को कार्यान्वित करने में लगे थे। जर्मनी की कुछ दक्षिणी रियासतें फ्रांस के आधीन थीं। अतः बिस्मार्क फ्रांस से युद्ध करके इन्हें प्राप्त करना चाहता था। अतः युद्ध का अवसर खोज रहा था। दूसरी ओर नेपोलियन की दृष्टि जर्मनी के राईन तट पर लगी थी। इसी समय फ्रांस की सेनायें मैक्सिको से असफल होकर फ्रांस लौटी थीं। बिस्मार्क ने नेपोलियन तृतीय की इन दोनों कमजोरियों को समझ कर आस्ट्रिया प्रशिया युद्ध के समय तटस्थ रहने का आश्वासन उससे प्राप्त कर लिया।

अदूरदर्शी नेपोलियन तृतीय बिस्मार्क की इस कूटनीतिक चाल को समझ नहीं पाया। वास्तव में वह आस्ट्रो-फ्रांस मित्रता नहीं होने देना चाहता था तथा भविष्य में फ्रेन्को-प्रशा युद्ध में फ्रांस को मित्रहीन करके तथा आस्ट्रिया इटली को उसका शत्रु बना कर लाभ उठाना चाहता था। आस्ट्रो-प्रशा युद्ध में फ्रांस की मदद आस्ट्रिया को न मिलने से उसने इसका बदला फ्रांस- प्रशा युद्ध के समय लिया। जब सेडेरवा में आस्ट्रिया की पराजय हो गई तब नेपोलियन तृतीय को बिस्मार्क के रहस्यपूर्ण उद्देश्यों का पता चला। बल्कि नेपोलियन तृतीय को बदनाम करने लगा। जब उसने बिस्मार्क पर कभी लक्षेमवर्ग, कभी पेलेटिनेट और कभी बेल्जियम देने व लिये दबाव डाला तो बिस्मार्क ने इनसे सम्बन्ध रखने वाले देशों को इस दबाव की सूचना

देकर नेपोलियन तृतीय का शत्रु बना दिया। मांग से सम्बन्धित राज्य भी प्रशा की निकटता के लिये तत्पर हो गये। रूस को भी तटस्थ कर दिया गया था।

सीडान का यह युद्ध इतना भयंकर था कि इसमें नेपोलियन तृतीय को बन्दी बनाकर प्रशा भेज दिया गया। अल्सेस और लॉरेन के साथ मेट्स, टूल्स भी प्रशा ने छीन लिये। भारी क्षतिपूर्ति राशि भी वसूल की तथा फ्रांस में सत्ता परिवर्तन होकर तृतीय गणतंत्र की स्थापना हो गई। नेपोलियन तृतीय जेल से भाग कर 1878 में इंग्लैण्ड पहुँचा जहां उसकी मृत्यु हो गई।

नेपोलियन तृतीय की पराजय के कारण– नेपोलियन तृतीय का उत्थान और पतन नेपोलियन बोनापार्ट के इतिहास को दोहराता-सा प्रतीत होता है। बोनापार्ट 1789 की क्रांति में से उत्पन्न हुआ था। नेपोलियन तृतीय को 1848 की क्रांति से अवसर मिला। दोनों ने ही अपनी शक्ति वृद्धि और छद्म निरंकुशता की वृद्धि के लिये शत्रुओं का दमन, संविधान का सहारा तथा जनता को झूँठे आश्वासनों का रास्ता चुना। सुधारों के द्वारा दोनों ने ही जनता का मन जीता और विदेश नीति में दोनों ही अन्त में असफल रहे तथा दोनों का पतन वास्तव में विदेशनीति के कारण हुआ। इसके कारणों की समीक्षा निम्नलिखित है-

नेपोलियन तृतीय की पराजय के कारण
1. बोनापार्ट जैसी प्रतिभा का अभाव
2. अस्थिरता और विश्वासघात्
3. खर्चीले अदूरदर्शी सैनिक अभियान
4. बिस्मार्क की कूटनीति को न समझना

(1) **बोनापार्ट जैसी प्रतिभा का अभाव**– वास्तव में नेपोलियन तृतीय में न तो बोनापार्ट जैसी सैनिक प्रतिभा, युद्ध कुशलता तथा कूटनीतिज्ञता थी। वह न तो स्वयं एक अच्छा जनरल था और न ही उसके पास कोई योग्य युद्ध यन्त्री था। उसे तेलरां जैसे कोई मन्त्री का सहयोग भी नहीं मिला। न अपने समय की शक्तियों और वातावरण का ही उसे ज्ञान था।

(2) **अस्थिरता और विश्वासघात**– नेपोलियन तृतीय ने न केवल फ्रांस में बल्कि यूरोप में पहले जनमत को अपने पक्ष में जगाया, उसके पंख लगाकर सम्राट पद की ऊंचाई पर पहुँचा और फिर उसी जनमत के साथ उसने विश्वासघात किया। उसने फ्रांस की जनता को समझाया था कि साम्राज्य का अर्थ शांति, उदारता, स्वतंत्रता और सुधार थे और उसने एक सीमा तक यह किया था। परन्तु उसने पूर्ण निरंकुशता धारण करके फ्रांस के नागरिकों की स्वतंत्रता का अपहरण कर, दमनचक्र चलाया।

(3) **खर्चीले अदूरदर्शी सैनिक अभियान**– नेपोलियन तृतीय के पोप की रक्षा के लिये प्रथम अभियान को ही कुछ सफल और प्रतिष्ठादायक कहा जा सकता है। परन्तु इस सफलता को इटली के राष्ट्रवादियों को सैनिक मदद देकर स्वयं ही व्यर्थ बना दिया। इटली के राष्ट्रवादियों को सैनिक मदद, क्रीमिया में युद्ध, इटली में युद्ध के बीच में आस्ट्रिया से संधि, मेक्सिको अभियान, प्रशा से युद्ध में नेपोलियन को भारी मात्रा में धन और सैनिकों का बलिदान करना पड़ा परन्तु कहीं विजय, धन, प्रतिष्ठा और शक्ति नहीं मिली। मिली तो केवल बदनामी, अभाव तथा अपमान। इस सबका परिणाम फ्रांस की जनता पर भी पड़ा तथा उसने नेपोलियन तृतीय को पदच्युत कर दिया।

4. **बिस्मार्क की कूटनीति को न समझना**– नेपोलियन ने यूरोपीय वातावरण को समझने में भारी भूल की। इस समय यूरोप में सर्वाधिक कूटनीतिक व्यक्ति बिस्मार्क था जिसने बड़ी कुशलता से नेपोलियन तृतीय के व्यक्तिगत दोषों और सैनिक अनुभवहीनता का उपयोग अपने पक्ष में जब जैसा चाहा वैसा किया। बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के विरुद्ध नेपोलियन तृतीय से संधि करके उसे तटस्थ किया और फिर यूरोप में सभी देशों को उसे अलग करके मित्रहीन बना कर पराजित किया।

निष्कर्ष– नेपोलियन तृतीय का उत्कर्ष उसकी गृहनीति अवसरवादिता से हुआ था। वह जनता में लोकप्रिय था। यूरोप में भी राष्ट्रवादी उसके समर्थक थे। परन्तु उसने अपनी विदेशनीति में अस्थिरता, अदूरदर्शिता, विश्वासघात, खर्चीले सैनिक अभियान तथा बिस्मार्क की कूटनीतिक चालों को न समझने के कारण उसकी पराजय हो गई और उसका पतन हो गया।

प्रश्न–6. इटली के एकीकरण पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

अथवा

इटली के एकीकरण में मैजिनी की भूमिका का मूल्यांकन कीजिये।

अथवा

इटली के एकीकरण में काउंट कैवूर की भूमिका पर प्रकाश डालिये।

अथवा

इटली के एकीकरण में गैरीबाल्डी तथा कैवूर की सेवाओं का वर्णन कीजिये।

अथवा

इटली के एकीकरण का वर्णन कीजिये।

उत्तर– इटली पर आस्ट्रिया और नेपोलियन के आक्रमण के कारण राष्ट्रीय भावनायें उत्पन्न हुईं तथा इटली के एकीकरण के लिये प्रयत्न आरम्भ हुये।

एकीकरण की बाधायें– इटली में प्रमुख राज्यों की संख्या 8 थी और प्रत्येक राज्य की प्रणाली, आदर्श, झण्डे, कानून, परम्परायें थीं तथा उन पर आस्ट्रिया का अधिकार था। आपसी फूट और आस्ट्रिया के हस्तक्षेप और दमन ने राष्ट्रीय भावनाओं का दमन किया।

एकीकरण के सोपान और महापुरुष– विभिन्न देशों के आक्रमण, उनकी दासता और क्रांतियों के प्रभाव एवं प्रेरणा से अनेक संस्थाओं और महापुरुषों का उदय हुआ।

प्रथम सोपान (चरण)– आरम्भ में देशभक्ति की भावनायें और संघर्ष की प्रेरणा जागी तथा उन्होंने प्रयत्न आरम्भ किये–

कार्बोनरी संस्थायें– इटली में क्रांतिकारियों की संस्थाओं और उनके सशस्त्र संघर्षों को कार्बोनरी संघर्ष कहा जाता था। इनका प्रमुख उद्देश्य हिंसा के द्वारा विदेशियों को इटली से निकालना और इटली को स्वतंत्र करना था।

मैजिनी और यंग इटली– मैजिनी इटली का सर्वमान्य नेता था। आरम्भ में वह कार्बोनरी का सदस्य था परन्तु बाद में इसने यंग इटली का निर्माण करके अहिंसक आन्दोलन और राष्ट्रीय जागरण किया। मैजिनी इतना अधिक लोकप्रिय और प्रभावी था कि इटली की प्रत्येक संस्था, प्रत्येक व्यक्ति और नेता उससे प्रेरणा लेता था। अनेक वर्षों तक उसे आस्ट्रिया ने बन्दी भी बनाया और इटली से भी निर्वासित किया परन्तु इससे वह और अधिक लोकप्रिय हो गया।

आस्ट्रो–सार्डीनिया युद्ध– इटली में 1830 और 1848 की क्रांतियां हुईं तथा सार्डीनिया के राजा ने आस्ट्रिया से युद्ध किया परन्तु मेटरनिख और नेपोलियन तृतीय के कारण सार्डीनिया की पराजय हुई। इस युद्ध में गैरीबाल्डी ने भी सहयोग किया था।

कैवूर– कैवूर एक महान राजनैतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ तथा बहुमुखी प्रतिभा का धनी था। वह 1852 में प्रधानमंत्री बनाया गया। इसने अपनी नीतियों, सुधारों, गृहनीति और विदेशनीति के द्वारा एकीकरण के लक्ष्य को पूरा किया।

विक्टर इमैनुअल– आस्ट्रो-प्रशिया युद्ध के बाद और एल्बर्ट के त्यागपत्र के बाद विक्टर इमैनुअल पीडमाण्ट का राजा बना। इसने कैवूर को प्रधानमंत्री नियुक्त किया तथा स्वयं को संवैधानिक राजा बनाया। इसने अनेक सुधार कर अपने तथा इटली के अन्य राज्यों की जनता को अपनी ओर आकर्षित कर एकीकरण की प्रेरणा दी। इमैनुअल महान देशभक्त और राष्ट्र के प्रति समर्पित व्यक्ति था।

द्वितीय सोपान (चरण)– कैवूर ने सर्वप्रथम अपने गृह-सुधारों से राजा की लोकप्रियता बढ़ाई तथा अन्य राज्यों की जनता में पीडमाण्ट से मिलने की प्रेरणा उत्पन्न की। उसने राष्ट्रीय भावनाओं का पूर्ण लाभ उठाया तथा गैरीबाल्डी की सेवाओं का उपयोग किया। उसने पेरिस सम्मेलन में नेपोलियन तृतीय, बिस्मार्क और इंग्लैण्ड की सहानुभूति प्राप्त की और आस्ट्रिया को बदनाम किया तथा फ्रांस से प्लाम्बियर्स समझौता करके आस्ट्रिया के आधीन राज्यों पर रक्षात्मक हमला किया। परन्तु फ्रांस के नेपोलियन तृतीय ने बीच में ही धोखा दिया। अतः द्वितीय आस्ट्रो सार्डीनिया युद्ध व्यर्थ हो गया।

तृतीय सोपान (चरण)– कैवूर ने नेपोलियन तृतीय के धोखे के कारण त्यागपत्र दे दिया परन्तु शीघ्र ही वह पुनः प्रधानमंत्री बना और जुलाई, 1858 में लोम्बार्डी, वेनेशिया और वेनेशिया में उग्र आन्दोलन हुये। सिसली और रोम भी पीछे नहीं रहे। अब कैवूर ने गैरीबाल्डी की मदद से रोम पर आक्रमण की योजना बनाई।

गैरीबाल्डी– गैरीबाल्डी का एक व्यापारी परिवार था। उसके पिता उसे पादरी बनाना चाहते थे। परन्तु वह मैजनी की प्रेरणा से स्वतंत्रता का सैनिक बन गया। गैरीबाल्डी ने कैवूर से पेट के पूर्व इटली में जितने भी संघर्ष हुये और 1830 एवं 1848 की क्रांतियां हुईं उन सभी में भाग लिया। उसे बन्दी बनाया और मृत्युदण्ड सुनाया गया, परन्तु वह जेल से भाग गया तथा अमेरिका में धन कमाकर पुनः इटली में आकर उसने सैनिक संघर्ष आरम्भ किये। उसे प्रत्येक बार असफलता मिली परन्तु वह कभी निराश नहीं हुआ।

कैवूर–गैरीबाल्डी के संयुक्त प्रयास– दोनों ने एक योजना बनाकर गैरीबाल्डी सिसली को जीतकर नेपाल की ओर बढ़े तथा रोम उनका लक्ष्य था। दूसरी ओर विक्टर इमैनुअल उत्तरी राज्यों को जीतता हुआ रोम पहुँचा। यहां गैरीबाल्डी ने नेपाल और सिसली को विक्टर इमैनुअल को सौंप दिया। अब केवल वैनेशिया और रोम शेष बचे थे।

चतुर्थ सोपान (चरण)– कैवूर की मृत्यु जून, 1861 में हो गई। परन्तु उसने मृत्यु के पूर्व विक्टर इमैनुअल का राज्याभिषेक इटली के सम्राट के रूप में कर दिया। अब चतुर्थ सोपान में विक्टर इमैनुअल ने कैवूर की कूटनीति अपना कर प्रशिया की मदद से आस्ट्रिया को पराजित कर दिया और रोम तथा वैनेशिया पर उसका अधिकार हो गया और अब फ्रांस और प्रशिया

में युद्ध हुआ तो फ्रांस को हटाने में उसने विस्मार्क का साथ दिया। फ्रांस को जो प्रदेश दिये उन्हें प्राप्त कर इटली का पूर्ण एकीकरण कर लिया और अपने अपमान का भी बदला ले लिया।

निष्कर्ष– इटली के एकीकरण में इटली के अदूरदर्शी, स्वार्थी राज्यों, फूट, दमन तथा मेटरनिख का भय आदि कठिनाईयां थीं। फिर भी कार्बोनरी, यंग इटली मैजिनी, विक्टर इमेनुअल, कैवूर और गैराबाल्डी ने सभी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर कुशलता, कूटनीति और दूरदर्शिता से इटली का राष्ट्रीय एकीकरण करने में सफलता प्राप्त की। इस एकीकरण का प्रभाव एशिया तथा यूरोप पर विशेष रूप से पड़ा।

प्रश्न– 7. जर्मनी के एकीकरण के विभिन्न सोपानों का विवरण दीजिये। या (विवेचना कीजिये)

अथवा

जर्मनी के एकीकरण का वर्णन कीजिये।

अथवा

जर्मनी के एकीकरण में बिस्मार्क के योगदान का वर्णन कीजिये (या समझाइये)। (या मूल्यांकन कीजिये)

अथवा

बिस्मार्क की 'लोह और रक्त' की नीति से आप क्या समझते हैं? जर्मनी के एकीकरण के सम्बन्ध में इसका वर्णन कीजिये।

अथवा

जर्मनी के एकीकरण में बिस्मार्क का क्या योगदान था? संक्षेप में लिखिये।

उत्तर– मेटरनिख आस्ट्रिया छोड़कर भाग गया तब उसके पश्चात् प्रशा में क्रांति हुई परन्तु क्रांतिकारी असफल रहे। जब फ्रेडरिक विलियम प्रशा का राजा बना तो उसे एकीकरण में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा तब उसने पेरिस में प्रशा के राजदूत विस्मार्क को बुलाकर अपना प्रधानमंत्री बनाया। इसने राजा का साथ न छोड़ने की कसम खाई और प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी के एकीकरण का दृढ़–निश्चय किया।

बिस्मार्क का परिचय और नीति– बिस्मार्क का जन्म एक कुलीन घराने में हुआ था तथा 1851 में वह जर्मन डाइट का सदस्य चुना गया। उसने कुछ देशों में राजदूत के रूप में भी कार्य किया तथा 1862 में वह प्रधानमंत्री बना। बिस्मार्क जब प्रधानमंत्री बना तो फ्रेडरिक विलियम का संसद के उदारवादियों से संघर्ष चल रहा था। अतः उसने इस संघर्ष को समाप्त करने का निश्चय किया। उसने प्रशा को यूरोप का सर्वश्रेष्ठ देश और सम्पूर्ण जर्मन राज्यों का उसके नेतृत्व में एकीकरण का उद्देश्य अपनाया। परन्तु इस कार्य में जन समर्थन के लिये उसने आन्तरिक सुधार करके फ्रेडरिक और स्वयं की लोकप्रियता को बढ़ाने का भी लक्ष्य रखा। यह कार्य विदेशी शक्तियों से संघर्ष और उनको पराजित किये बिना नहीं हो सकता था अतः उसने युद्ध और विजय अथवा रक्त और लोह की नीति अपनाई।

एकीकरण का प्रथम सोपान– एकीकरण का प्रथम सोपान विस्मार्क के आगमन पूर्व प्रशा में आरम्भ हो चुका था। मेटरनिख के काल में प्रशा में राष्ट्रवादी गुप्त रूप से आस्ट्रिया के खिलाफ और राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार–प्रसार कर रहे थे। परिणामस्वरूप लिपाजिग जयंती, रूसी लेखक की पुस्तक जलाना आदि कार्यक्रम हुये। दमन के लिये मेटरनिख ने कार्ल्सवाद के दमन का आदेश दिया। अतः प्रशा ने उनके दमन का प्रत्यक्ष में प्रदर्शन किया परन्तु परोक्ष में समर्थन और सहायता की। 1848 की क्रांति में जब मेटरनिख का पतन हो

गया और फ्रेंकफर्ट के जनता सम्मेलन में जब कुछ निश्चय नहीं हो सका तब प्रशा के राजा ने एकीकरण के लिये कूटनीतिक प्रयास किया।

द्वितीय सोपान (एकीकरण की तैयारी)– 1863 में आस्ट्रियन सम्राट ने जर्मन संघ की बैठक बुलाई जिसमें विस्मार्क ने जाने और उसके निर्णयों को स्वीकार करने से मना कर दिया। अब आस्ट्रिया को प्रथम चुनौती थी जो प्रशा ने दी थी। इससे यूरोप का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ।

श्लेस्विंग–होलसटाइन की समस्या– यह दोनों डचियां डेनमार्क के राजा के आधीन थीं परन्तु श्लेषविग में डेन संख्या और होलसटाइन में जर्मन जनसंख्या अधिक थी। दोनों में राष्ट्रीय आन्दोलन भी चल रहे थे। विस्मार्क इन दोनों को प्रशा के राज्य में मिलाना चाहता था। डेनमार्क लन्दन संधि की उपेक्षा कर दोनों को अपने राज्य में मिलाने का प्रयत्न कर रहा था। अतः विस्मार्क ने आस्ट्रिया को होलसटाइन पर अधिकार करने की शर्त रखकर उससे संधि कर ली और श्लेस्विंग पर स्वयं अधिकार कर लिया। परन्तु जब आस्ट्रिया ने होलसटाइन पर अधिकार करने का प्रयत्न किया तो जर्मनों को भड़काकर विस्मार्क ने स्वयं कब्जा कर लिया। इस प्रकार आस्ट्रिया और प्रशा में गेस्टीन का समझौता टूट गया।

एकीकरण का द्वितीय सोपान– इस घटना के पश्चात् विस्मार्क ने रूस, फ्रांस और इंग्लैण्ड की कमजोरियों का लाभ उठाया तथा उनसे संधि और समझौते करके उन्हें युद्ध में तटस्थ रहने के लिये तैयार कर लिया। इटली के विक्टर इमेनुअल को सक्रिय मित्र बनाकर आस्ट्रिया पर आक्रमण किया और अपने एकीकरण की प्रेरणा दी। इस प्रकार आस्ट्रिया को अकेला बना कर जून, 1866 में सेडोवा के युद्ध में पराजित किया।

प्रागसंधि और सेडोवा युद्ध– सेडोवा में पराजित आस्ट्रिया संधि के लिये विवश हो गया। अतः दोनों में प्राग की संधि हो गई। इस पराजय से यूरोप का सबसे शक्तिशाली राज्य पराजित हो गया तथा प्रशा और विस्मार्क नवीन सर्वोच्च शक्ति के रूप में प्रगट हुये तथा यूरोप से आस्ट्रिया का भय समाप्त हो गया।

एकीकरण का तृतीय सोपान फ्रेंको–प्रशा युद्ध– विस्मार्क ने जब दक्षिण राज्यों पर अधिकार का निश्चय किया तो फ्रांस पर आक्रमण भी आवश्यक हो गया क्योंकि फ्रांस स्वयं इन पर कब्जा करना चाहता था, इसलिये उसने सदैव एकीकरण का विरोध किया था। अतः विस्मार्क ने आस्ट्रिया और इटली को सक्रिय आक्रमण के लिये तैयार कर लिया एवं रूस और इंग्लैण्ड को निष्क्रिय बने रहने के लिये मना लिया। अब विस्मार्क ने स्पेन के उत्तराधिकार के बहाने फ्रांस को छेड़ा जिससे वह आकस्मिक रूप से युद्ध के लिये तत्पर हो जाये। इस प्रकार दोनों में जुलाई, 1870 को सीडोन में युद्ध हुआ तथा नेपोलियन तृतीय पराजित हुआ और विस्मार्क ने उसे बन्दी बना लिया।

फ्रेंकफर्ट संधि और एकीकरण की पूर्णता– 1871 में विस्मार्क ने फ्रेंकफर्ट में फ्रांस के प्रतिनिधियों को बुलाया और उनके साथ कठोर व्यवहार करते हुये उसे फ्रेंकफर्ट संधि के लिये विवश कर दिया। जिसमें फ्रांस ने निम्नलिखित शर्तें स्वीकार की–

1. विस्मार्क ने 20 करोड़ पौण्ड क्षतिपूर्ति में वसूल किये।

2. वसूली तीन वर्ष में करना थी तब तक प्रशा की सेनाओं का फ्रांस के खर्च पर फ्रांस में रहना तय हुआ।

3. मेट्स स्ट्रासबर्ग, अल्सेस-लॉरेन और टूल्स पर प्रशा का अधिकार मान्य किया गया।

इस संधि के परिणामस्वरूप जर्मनी का एकीकरण पूर्ण हो गया। फ्रांस में नेपोलियन तृतीय को हटा दिया गया। फ्रांस के आधीन इटली के राज्य विक्टर इमेनुअल को मिल गया तथा फ्रांस मे तृतीय गणतंत्र की स्थापना हुई।

निष्कर्ष– प्रशा में 1815 से ही राष्ट्रीय भावनायें उत्पन्न होने लगी थीं। इन्हें सफलता का विश्वास जॉलवरीन ने दिलाया। परन्तु फ्रेडरिक विलियम और विस्मार्क की जर्मनी के एकीकरण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिकायें थीं। उसने कूटनीति से आस्ट्रिया और फ्रांस को पराजित कर एकीकरण में सफलता प्राप्त की।

लघुउत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न–(1) नवीन साम्राज्यवाद से आप क्या समझते हैं?

उत्तर– 1820 से 1870 ई. तक यूरोप में स्वतंत्र व्यापार की नीति के फलस्वरूप औपनिवेशिक उदासीनता का युग रहा। 1870 ई. के बाद यूरोप में उपनिवेशवाद फिर से शक्तिशाली होने लगा जिसे नवीन साम्राज्यवाद के नाम से जाना जाता है। इसे साम्राज्यवाद इसलिये कहा गया क्योंकि इसका उद्देश्य उपनिवेशों पर व्यापारिक अधिकार के साथ-साथ राजनीतिक अधिकार स्थापित करना भी था। इस समय अनेक राजनेताओं तथा विशेषज्ञों ने अधिकाधिक उपनिवेश स्थापित करने की सलाह अपने-अपने देशों को दी। इससे प्रेरित होकर उपनिवेशवाद का जो प्रसार आरम्भ हुआ उसे नवीन साम्राज्यवाद की संज्ञा दी जाती है। एशिया और अफ्रीका में यूरोप के देशों ने अनेक उपनिवेश स्थापित किये।

प्रश्न–(2) 'चार्टिस्ट आंदोलन' को संक्षेप में समझाइये।

उत्तर– चार्टिस्ट आन्दोलन की मांगें– चार्टिस्ट आन्दोलन का नेतृत्व रॉबर्ट ओवेन के हाथ में था जिसने 1834 ई. में एक ट्रेड यूनियन की स्थापना की। इसने इस यूनियन के उद्देश्य स्पष्ट करते हुये कहा कि यह उद्योग-धन्धों को नियन्त्रित करेगी तथा सरकार पर अधिकार करके राष्ट्रीय कम्पनियों की स्थापना की जायेगी और यह उद्योगों का संचालन करेगी तथा व्यावसायिक प्रतियोगिता को पूरी तरह समाप्त कर दिया जायेगा व श्रम के आधार पर विनिमय किया जायेगा। इस आन्दोलन के कारण कारखानों में हड़तालें हुईं परन्तु उद्देश्यों की पूर्ति नही हुई और यह आन्दोलन असफल हो गया, अतः अब राजनीतिक उपायों की खोज के साथ नवीन आन्दोलन चलने लगे।

राजनीतिक मांगें– इसकी छः प्रमुख मांगें थीं जो विलियम लावेट ने लन्दन श्रमिक संघ की स्थापना के समय रखीं तथा इसे 'पीपुल्स चार्टर' का नाम दिया। ये मांगें थीं– (1) संसद का वार्षिक निर्वाचन हो, (2) संसद के सदस्यों को वेतन दिया जाये, (3) निर्वाचन में सम्पत्ति की योग्यता समाप्त हो, (4) वयस्क मताधिकार दिया जाये, (5) समान निर्वाचन क्षेत्रों का निर्माण हो, (6) गुप्त मतदान प्रथा आरम्भ हो।

सन् 1839 ई. में चार्टिस्टों ने अपनी मांगें 10 लाख नागरिकों के हस्ताक्षर से संसद को सौंपी। संसद ने इसे अस्वीकार कर दिया। इससे सारे देश में उग्र और हिंसक आन्दोलन भड़क गये। अनेक नेता गिरफ्तार हुये तथा अनेक मारे गये। दूसरी बार 1840 ई. में चार्टिस्टों ने पुनः 30 लाख नागरिकों के हस्ताक्षर करवाकर 1842 को प्रस्तुत किया। आम हड़ताल रखी गई। इसे भी सरकार ने अस्वीकार कर दिया और दमन-चक्र चलाया।

इसके साथ ही सरकार ने इस आन्दोलन को यह कहकर कि माँगों पर– (1) एक ही व्यक्ति ने अनेक बार हस्ताक्षर किये थे, (2) मृत व्यक्तियों के भी हस्ताक्षर थे, तथा (3) बाहर गये व्यक्तियों के भी हस्ताक्षर करवाये गये थे, बदनाम किया। सरकार के अनुसार 20 लाख हस्ताक्षर जाली थे, आरोप लगाये।

परिणाम– कार्लाइल ने माँगों को मौलिक और व्यापक बताया है और कहा कि इसकी एक मांग को छोड़कर सभी मांगें मान ली गईं। इससे मांगों का महत्व स्पष्ट है। सन् 1867, 1884 और 1918 ई. में क्रमशः बालिग मताधिकार स्थानीय संस्थाओं के निर्वाचन से संसद के निर्वाचन तक दिये गये। 1872 ई. में वेलेक्ट एक्ट ग्लेडस्टन ने स्वीकार कर लिया। 1858 ई. में सम्पत्ति योग्यता समाप्त कर दी गई और 1911 ई. में संसद सदस्यों को वेतन दिया जाने लगा।

प्रश्न–(3) 'तरुण इटली' पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

अथवा

'यंग इटली' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

उत्तर– 'यंग इटली'– इटली में कार्बोनरी संस्था गुप्त रूप से क्रांतिकारी कार्यों में संलग्न थी। इटली का महान् नेता ग्वीसेप जोसेफ मैजिनी भी इस दल का सदस्य था। परन्तु मैजिनी ने सन् 1830 ई. तक इसमें भाग लिया फिर नवीन संगठन का निर्माण किया। इसके कुछ कारण थे। मैजिनी को व्यक्तिगत हिंसा से राष्ट्रीय स्वतंत्रता मिलने की कोई आशा नहीं थी। जनता का लोकप्रिय समर्थन भी नहीं था। जब तक गुलामी की व्यवस्था को ही समाप्त नहीं किया जाता, स्वतंत्रता नहीं मिलती। मैजिनी की राष्ट्रीयता की विचारधारा मानवतावादी आध्यात्मिकता से प्रेरित थी। अतः मर्सेल्ज की जेल में 6 माह रहने के बाद सन् 1831 में मैजिनी ने 'यंग इटली' का निर्माण किया। यह संस्था और संगठन विशेषकर छात्रों में बहुत लोकप्रिय बन गया। इसकी विचारधारा और मैजिनी के त्याग, कष्ट और परिश्रम के कारण यह एक शक्तिशाली संस्था बन गई और अन्य देशों में इसकी शाखायें खुलीं तथा इसकी विचारधारा और शैली पर आयरलैण्ड में 'यंग आयरलैण्ड', भारत में 'यंग इण्डिया' आदि संस्थाओं का निर्माण हुआ। इसी की अनुकृति स्वातंत्र्य-संघर्ष करने वाले देशों ने भी की।

प्रश्न–(4) इटली के एकीकरण में 'कैवूर' की भूमिका पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

अथवा

इटली के एकीकरण में कैवूर के उद्देश्यों का वर्णन कीजिये।

उत्तर– काउन्ट कैवूर का जन्म एक कुलीन परिवार में सन् 1810 में हुआ था। उसने इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त की। फिर वह सैनिक-सेवा में रहा तथा 1831 के बाद 15 वर्ष तक अपनी जमींदारी की देखभाल की। फ्रांस, जर्मनी और इंग्लैण्ड की यात्रा के बाद वह निरंकुश शासन-प्रणाली का विरोधी और इंग्लैण्ड की प्रणाली का समर्थक बना। 1842 में कृषि-उन्नयन समिति का अध्यक्ष रहा। सन् 1847 में 'इल रिसर्जीमेन्ट' समाचार-पत्र निकाला।

1848 में वह प्रथम बार संसद का सदस्य बना तथा तीन बार चुनावों में निरन्तर विजयी रहा और आठ मंत्रिमण्डलों में रहा। 1850 में वाणिज्य और कृषि मंत्री बना तथा 1854 में प्रधानमंत्री बनाया गया। कैवूर निरंकुश राजतंत्र का विरोधी था तथा वह इटली में उदार संवैधानिक राजतंत्र स्थापित करना चाहता था। संसद, जन-प्रतिनिधित्व तथा धार्मिक उदारता में उसका विश्वास था। पीडमान्ट के नेतृत्व में सम्पूर्ण इटली का एकीकरण करना चाहता था। इसके लिये उसने आन्तरिक आर्थिक, कृषि और औद्योगिक तथा सैनिक-सुधार किये। कैवूर में यह गुण था कि वह प्रत्येक राष्ट्रवादी शक्ति को अपने पक्ष में कर लेता था।

गैरीबाल्डी इसका उदाहरण है। उसने क्रीमिया (1854) पेरिस सम्मेलन और प्लान्नियर्स समझौते से इटली की समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय बनाकर आस्ट्रिया पर 1858, 1859 को आक्रमण किये, परन्तु नेपोलियन तृतीय के विश्वासघात से सफलता नहीं मिली तथा कैवूर ने अपमानजनक ज्यूरिच संधि के कारण त्याग-पत्र दे दिया। परन्तु विक्टर इमेनुअल ने पुनः प्रधानमंत्री बनाया। अब उसने आस्ट्रो-प्रशिया युद्ध में आस्ट्रिया को पराजित करने की योजना बनाई परन्तु फरवरी, 1861 में विक्टर इमेनुअल का राज्याभिषेक कर 5 जून, 1861 में इटली से सदैव के लिये विदा ले गया। उसका अधूरा कार्य विक्टर इमेनुअल ने पूरा किया और सम्पूर्ण इटली का एकीकरण किया।

प्रश्न-(5) 'श्लेस्विंग- होलस्टाइन' समस्या पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

उत्तर- श्लेस्विंग-होलसटाइन समस्या- श्लेस्विंग होलसटाइन नामक दो डचियाँ थीं तथा प्रशासनिक रूप में इनकी स्थिति विचित्र थी। यह डेनमार्क राज्य में नहीं थीं। परन्तु इनका सम्बन्ध डेनमार्क के राजा से थे। श्लेस्विंग में डेन संख्या और होलसटाइन में जर्मन जनसंख्या अधिक थी तथा दोनों में ही राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहे थे। डेनमार्क का 1848 से 1863 तक राजा सप्तम फ्रेडरिक था जो दोनों ड्यूक का ड्यूक भी था।

अतः उसका उत्तराधिकारी न होने से 1852 में लन्दन में यह निश्चित किया गया कि दोनों डचियों को डेनमार्क में नहीं मिलाया जाये और नवम् क्रिश्चियन राजा बने। इस संधि में ब्रिटेन, फ्रांस, आस्ट्रिया, प्रशा, रूस शामिल थे। फिर भी सप्तम फ्रेडरिक, नवम क्रिश्चियन ने दोनों डचियों को डेनमार्क में मिलाने के अनेक बार असफल प्रयत्न किये। यद्यपि आस्ट्रियन विरोध के कारण होलसटाइन का बिस्मार्क ने सप्तम फ्रेडरिक को 1863 में शासक बनवा दिया था। इस पर भी क्रिश्चियन ने पुनः दोनों पर पूर्ण अधिकार का प्रयत्न किया। अतः आस्ट्रिया, प्रशा ने मिलकर 30 अक्टूबर, 1864 को दोनों प्रदेशों पर अधिकार कर लिया।

❑❑❑

वस्तुनिष्ठ प्रश्नोत्तर

इकाई-1

(1) सामन्तवाद की निम्न तीन प्रमुख विशेषताओं में कौन-सी एक नहीं है?
(अ) जागीर (ब) संरक्षण
(स) धन (द) सम्प्रभुता।
उत्तर- (स) धन।

(2) सामन्तवाद का पूर्ण विकास किस सदी में हुआ?
(अ) पांचवीं (ब) छठी
(स) आठवीं (द) नौवीं।
उत्तर- (द) नौवीं।

(3) आधुनिक युग का प्रारम्भ माना जाता है-
(अ) 1485 ई. में (ब) 1453 ई. में
(स) 1603 ई. में (द) 1688 ई. में।
उत्तर- (ब) 1453 ई. में।

(4) निम्नलिखित में से कौन विश्व का प्रथम नाविक था, जो सर्वप्रथम विश्व का चक्कर लगाकर जीवित अपने देश लौटा था?

(अ) कोलम्बस (ब) वास्कोडिगामा
(स) ड्रेक (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर- (स) ड्रेक।

(5) प्रोटेस्टेण्ट धर्म के अनुयायियों को इंग्लैण्ड में कहते थे-
(अ) एंग्लिकन (ब) ह्यूगनाट
(स) काल्विनवादी (द) प्योरिटन।
उत्तर- (अ) एंग्लिकन।

(6) 'प्रेस्बिटर्स' कहते थे-
(अ) राजा को (ब) वृद्ध पादरियों को
(स) मंत्री को (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर- (ब) वृद्ध पादरियों को।

(7) जैसुइट संगठन की स्थापना किसने की?
(अ) हेनरी अष्टम ने (ब) एलिजाबेथ ने
(स) इग्नेशियम लायला ने (द) मार्टिन लूथर ने।
उत्तर- (स) इग्नेशियम लायला ने।

(8) निम्नलिखित में कौन-सा कारण राष्ट्रीय राज्यों के उत्थान का कारण नहीं था?
(अ) सामन्तवाद का पतन (ब) मध्यम वर्ग का उत्थान
(स) नवीन आविष्कार (द) पोप की शक्ति का सुदृढ़ होना।
उत्तर- (द) पोप की शक्ति का सुदृढ़ होना।

(9) निम्नलिखित में किसे एलेक्जेण्डर षष्टम ने 'कैथोलिक सम्राट' की उपाधि प्रदान की थी?
(अ) फर्डीनेण्ड एवं ईसाबेला (ब) हेनरी सप्तम
(स) मैक्सिमिलियन (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर- (अ) फर्डीनेण्ड एवं ईसाबेला।

(10) किस भक्त संत को भगवान कृष्ण के अवतार के रूप में जाना जाता है?
(अ) शंकरदेव को (ब) चैतन्य को
(स) सूरदास को (द) तुलसीदास को।
उत्तर- (ब) चैतन्य को।

(11) 'गीत शैली की कविता की देवी' किसे कहा जाता है?
(अ) दयाबाई को (ब) फूलबाई को
(स) सहजोबाई को (द) मीराबाई को।
उत्तर- (द) मीराबाई को।

(12) 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होई' ये किसने कहा था?
(अ) रामानन्द ने (ब) दादू ने
(स) नानक ने (द) कबीर ने।
उत्तर- (द) कबीर ने।

(13) मध्ययुग में सम्पूर्ण ईसाई जगत की राजनीतिक शक्ति किसमें निहित थी?
(अ) राजाओं में (ब) रोम के पोप में
(स) पवित्र रोमन सम्राट में (द) सामन्तों के हाथ में।
उत्तर- (स) पवित्र रोमन सम्राट में।

(14) पुनर्जागरण के लिए सबसे अनुकूल वातावरण किस देश में था?
(अ) इंग्लैण्ड में (ब) फ्रांस में

(स) जर्मनी में (द) इटली में

उत्तर– (द) इटली में

(15) कोलम्बस ने नई दुनिया की खोज कब की?

(अ) 1488 में (ब) 1486 में

(स) 1492 में (द) 1490 में।

उत्तर– (स) 1492 में।

इकाई-2

(1) 'दि प्रिन्स' की रचना की–

(अ) एडम स्मिथ ने (ब) मैकियावली ने

(स) सर टॉमस मन ने (द) इनमें से कोई नहीं।

उत्तर– (ब) मैकियावली ने।

(2) 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' नामक पुस्तक का रचयिता कौन था?

(अ) एडम स्मिथ (ब) सर टॉमस मन

(स) मैकियावली (द) कोलबर्ट।

उत्तर– (अ) एडम स्मिथ।

(3) कोलम्बस ने किस देश की खोज की?

(अ) भारत (ब) उत्तरी अमेरिका

(स) इंग्लैण्ड (द) फ्रांस।

उत्तर– (ब) उत्तरी अमेरिका।

(4) जॉन कैबट ने खोज की थी–

(अ) न्यू इंग्लैण्ड की (ब) भारत की

(स) न्यूफाउन्डलैण्ड की (द) रोहड़ द्वीप की।

उत्तर– (स) न्यूफाउन्डलैण्ड की।

(5) 'स्पिनिंग जैनी' का आविष्कारक था–

(अ) जॉन के (ब) हारग्रीब्ज

(स) राइट (द) कार्टराइट।

उत्तर– (ब) हारग्रीब्ज।

(6) 'विद्युत तार' का आविष्कारक था–

(अ) वीट स्टोन (ब) जॉन मैकडम

(स) हर्थ (द) न्यूकॉमन।

उत्तर– (अ) वीट स्टोन।

(7) 'खूनी मेरी' के नाम से किसे जाना जाता है?

(अ) महारानी एलिजाबेथ (ब) मेरी ट्यूडर

(स) राजकुमारी क्लीब्ज (द) इनमें से कोई नहीं।

उत्तर– (ब) मेरी ट्यूडर।

(8) 'वाणिज्यवाद' शब्द का उपयोग प्रथम बार किस अर्थशास्त्री ने किया?

(अ) हेमण्ड ने (ब) कालबर्ट ने

(स) थॉमस मून ने (द) एडम स्मिथ ने।

उत्तर– (द) एडम स्मिथ ने।

(9) मध्ययुगीन आर्थिक ढाँचा किस पर आधारित था?

(अ) कृषि पर (ब) व्यापार पर

(स) वाणिज्यवाद पर (द) उद्योगों पर।

उत्तर– (अ) कृषि पर।

(10) 'ए काउण्टरब्लास्ट टू टोबेटो' किसकी रचना है?

(अ) हेनरी सप्तम (ब) जेम्स प्रथम

(स) हेनरी अष्टम (द) एडवर्ड षष्टम।

उत्तर– (ब) जेम्स प्रथम।

(11) चार्ल्स प्रथम इंग्लैण्ड के राजसिंहासन पर कब आसीन हुए?

(अ) 1603 ई. में (ब) 1625 ई. में

(स) 1649 ई. में (द) 1644 ई. में।

उत्तर– (ब) 1625 ई. में।

(12) अंग्रेजी साहित्य का प्रसिद्ध कवि चौसर किस देश का था?

(अ) जर्मनी (ब) इटली

(स) फ्रांस (द) इंग्लैण्ड।

उत्तर– (द) इंग्लैण्ड।

(13) यूरोप में आधुनिक युग का आरम्भ कब से हुआ माना जाता है?

(अ) 1453 ई. (ब) 1517 ई.

(स) 1492 ई. (द) 1450 ई.।

उत्तर– (अ) 1453 ई.।

(14) पोप ने 'धर्म रक्षक' की उपाधि किस शासक को दी थी?

(अ) हेनरी अष्टम को (ब) जेम्स प्रथम को

(स) चार्ल्स पंचम को (द)रानी एलिजाबेथ को।

उत्तर– (द) हेनरी अष्टम को।

(15) प्रोटेस्टेंटो को फ्रांस में क्या कहा जाता था?

(अ) ह्यूगेनाटस (ब) प्यूरिटन

(स) ऑग्लिकन (द) प्रेसब्रिटेरियन।

उत्तर– (अ) ह्यूगेनाटस।

(16) फ्रांस में वाणिज्यवादी विचारधारा का समर्थन किसने किया?

(अ) थॉमस मून ने (ब) कालबर्ट ने

(स) एडम स्मिथ ने (द) एन्टोनिया सिरा ने।

उत्तर– (ब) कालबर्ट ने।

इकाई-3

(1) इंग्लैण्ड में वैभवपूर्ण क्रान्ति के समय शासक कौन था?

(अ) जेम्स प्रथम (ब) जेम्स द्वितीय

(स) चाल्स प्रथम (द) चार्ल्स द्वितीय।

उत्तर– (ब) जेम्स द्वितीय।

(2) अमरीका के आन्दोलन के समय इंग्लैण्ड का प्रधानमंत्री कौन था?

(अ) ग्रेनविल (ब) पिट

(स) डिजरैली (द) इनमें से कोई नहीं।

उत्तर– (अ) ग्रेनविल।

(3) 'विश्वकोश' का लेखक था–

(अ) माण्टेस्क्यू (ब) रूसो

(स) वाल्टेयर (द) दिदरो।
उत्तर– (द) दिदरो।

(4) 'फ्रांसीसी विचारों का पूर्ण दर्पण' किसके लिए कहा गया है?
(अ) रूसो (ब) माण्टेस्क्यू
(स) वाल्टेयर (द) दिदरो।
उत्तर– (स) वाल्टेयर।

(5) टेनिस कोर्ट की शपथ किसके नेतृत्व में ली गई थी?
(अ) राब्सपीयर (ब) रूसो
(स) बेली (द) दिदरो।
उत्तर– (स) बेली।

(6) 'वाटरलू' किस देश में है?
(अ) फ्रांस (ब) प्रशा
(स) इंग्लैण्ड (द) हॉलेण्ड।
उत्तर– (अ) फ्रांस।

(7) गृह–युद्ध के समय अमेरिका के राष्ट्रपति थे–
(अ) वाशिंगटन (ब) जैफर्सन
(स) लिंकन (द) कनैडी।
उत्तर– (स) लिंकन।

इकाई-4

(1) नेपोलियन का जन्म हुआ था–
(अ) कार्सिका (ब) पेरिस
(स) अल्सेस (द) लारेन।
उत्तर– (अ) कार्सिका।

(2) महाद्वीपीय व्यवस्था के द्वारा नेपोलियन किस देश को हानि पहुँचाना चाहता था?
(अ) प्रशा को (ब) इंग्लैण्ड को
(स) स्पेन को (द) इटली को।
उत्तर– (ब) इंग्लैण्ड को।

(3) वियना कांग्रेस द्वारा हॉलेण्ड में किस देश को मिलाया गया?
(अ) फ्रांस को (ब) बेल्जियम को
(स) प्रशा को (द) इंग्लैण्ड को।
उत्तर– (ब) बेल्जियम को।

(4) 'लालकुर्ती' से सम्बन्धित था–
(अ) मैजिनी (ब) कैवूर
(स) गैरीबाल्डी (द) नेपोलियन।
उत्तर– (स) गैरीबाल्डी।

(5) अमेरिका के गृह–युद्ध का प्रमुख कारण था–
(अ) जाति प्रथा (ब) दास–प्रथा
(स) धर्म (द) राजनीति।
उत्तर– (ब) दास–प्रथा।

(6) कार्ल्सबाद नियमों को पारित कराने वाला व्यक्ति था–
(अ) मैटरनिख (ब) बिस्मार्क

(स) विलियम कैसर II (द) नेपोलियन।
उत्तर– (अ) मैटरनिख।

(7) ड्यूक बोदो की शिक्षा के लिए कट्टर कैथोलिक व्यक्ति नियुक्त किया गया। उसका नाम था–
(अ) थेरे (ब) लुई फिलिप
(स) चार्ल्स (द) हेनरी।
उत्तर– (अ) थेरे।

(8) लामार्तिन नेता था–
(अ) प्रजातन्त्रवादी (ब) श्रमजीवी
(स) गणतन्त्रवादी (द) समाजवादी।
उत्तर– (स) गणतन्त्रवादी।

(9) 'क्रेडिट मोबिलियर बैंक' की स्थापना किसने की?
(अ) पेरियर बन्धु (ब) लामार्तिन
(स) नेपोलियन III (द) उपरोक्त में कोई नहीं।
उत्तर– (अ) पेरियर बन्धु।

(10) 'कटीपुर्नम' संस्था की स्थापना किस देश में की गई थी?
(अ) भारत (ब) फिलीपीन
(स) बर्मा (द) इण्डोनेशिया।
उत्तर– (ब) फिलीपीन।

(11) 'रक्त एवं लौह नीति' का प्रतिपादक था–
(अ) मैटरनिख (ब) बिस्मार्क
(स) रॉब्सपीयर (द) नेपोलियन।
उत्तर– (ब) बिस्मार्क।

(12) आधुनिक ''मेग्नाकार्टा'' किस अधिनियम को कहा जाता है?
(अ) 1832 ई. (ब) 1867 ई.
(स) 1884 ई. (द) 1911 ई.
उत्तर– (अ) 1832 ई.

इकाई-5

(1) सन् 1832 के सुधार अधिनियम पारित होते समय इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री कौन थे?
(अ) लॉर्ड डर्बी (ब) जॉन रसेल
(स) अर्ल ग्रे (द) ड्यूक ऑफ वेलिंगटन।
उत्तर– (स) अर्ल ग्रे।

(2) 'लंदन श्रमिक संघ' की स्थापना किसने की थी?
(अ) विलियम लावेट ने (ब) थॉम्पसन ने
(स) रॉबर्ट ओवेन ने (द) एटवुड ने।
उत्तर– (अ) विलियम लावेट ने।

(3) 'राष्ट्रीय चार्टिस्ट संघ' की स्थापना कब हुई थी?
(अ) 1844 ई. में (ब) 1849 ई. में
(स) 1840 ई. में (द) 1848 ई. में।
उत्तर– (अ) 1840 ई. में।

(4) नेपोलियन तृतीय को 'लघु नेपोलियन' कसने कहा था?

(अ) कैटलबी ने (ब) हेज ने
(स) फिशर ने (द) विक्टर ह्यूगो ने।
उत्तर– (द) विक्टर ह्यूगो ने।

(5) नेपोलियन तृतीय मैक्सिको का राजा किसे बनाना चाहता था?
(अ) ज्वारेज को (ब) मैक्सीमिलियन को
(स) स्वयं को (द) जेरोम को।
उत्तर– (ब) मैक्सीमिलियन को।

(6) किसने 'यंग इटली' नामक संस्था की स्थापना की थी?
(अ) नेपोलियन ने (ब) गैरीबाल्डी ने
(स) कावूर ने (द) मेजिनी ने।
उत्तर– (द) मेजिनी ने।

(7) मेजनी किस प्रकार के शासन का समर्थक था?
(अ) गणतंत्र (ब) संवैधानिक राजतंत्र
(स) बोनापार्टवादी (द) निरंकुश राजतंत्र।
उत्तर– (अ) गणतंत्र।

(8) प्लाम्बियर्स का समझौता कावूर ने किससे किया?
(अ) फ्रांस से (ब) इंग्लैण्ड से
(स) रूस से (द) जर्मनी से।
उत्तर– (अ) फ्रांस से।

(9) निम्नलिखित में से कौनसा राज्य पोप के प्रदेश में आता था?
(अ) रोमाग्ना (ब) टस्कनी
(स) पारमा (द) मोडेना।
उत्तर– (अ) रोमाग्ना।

(10) सन् 1848 की क्रान्ति के समय प्रशा का शासक कौन था?
(अ) विलियम प्रथम (ब) फ्रेडरिक विलियम तृतीय
(स) मेटरनिख (द) फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ।
उत्तर– (द) फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ।

(11) बिस्मार्क जर्मनी के चांसलर पद पर कब नियुक्त हुआ?
(अ) 1865 में (ब) 1864 में
(स) 1863 में (द) 1862 में।
उत्तर– (द) 1862 में।

(12) प्राग की संधि किसके बीच हुई थी?
(अ) प्रशा–फ्रांस (ब) आस्ट्रिया–फ्रांस
(स) प्रशा–डेनमार्क। (द) आस्ट्रिया–प्रशा।
उत्तर– (द) आस्ट्रिया–प्रशा।

(13) फ्रांस–प्रशा के बीच निर्णायक युद्ध कहाँ पर हुआ था?
(अ) सीडान (ब) वाटरलू
(स) सेडोवा (द) कोनिग्रेट्ज।
उत्तर– (अ) सीडान।

❑❑❑